—:o:—

दाहरोगनिदान १९

—:o:—

उन्मादनिदान २०

—:o:—

मृगीरोगनिदान २१

—:o:—

वातव्याधिनिदान २२

विषयानुक्रमणिका।

—:o:—

वातरक्तनिदान २३

—:o:—

ऊरुस्तंभनिदान २४

—:o:—

आमवातनिदान २५

—:o:—

शूलनिदान २६

विषय — पृष्ठ

—:o:—

उदावर्तनिदान २७

—:o:—

गुल्मनिदान २८

विषय — पृष्ठ

—:o:—

हृद्रोगनिदान २९

—:o:—

मूत्रकृच्छ्रनिदान ३०

—:o:—

मूत्राघातनिदान ३१

विषय — पृष्ठ

सद्योव्रणनिदान ४३

भग्ननिदान ४४

नाड़ीव्रणनिदान ४५

भगन्दरनिदान ४६

उपदंशनिदान ४७

शूकदोषनिदान ४८

इति ।

श्रीहरिः ।

मञ्जुलाख्यभाषाटीकासहितं-

माधवनिदानम् ।

पञ्चनिदानलक्षणम् ।

मंगल तथा ग्रन्थका प्रयोजन ।

प्रणम्य जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम् ।
स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं त्रैलोक्यशरणं शिवम् ॥ १ ॥
नानामुनीनां वचनैरिदानीं समासतः सद्भिषजां नियोगात् ।
सोपद्रवारिष्टनिदानलिङ्गो निबध्यते रोगविनिश्चयोऽयम् ॥ २ ॥

यन्नामस्मृतिमात्रेण निःशेषक्लेशसंक्षयः ।
जायते तत्क्षणादेव तं श्रीकृष्णं नमाम्यहम् ॥ १ ॥
यत्कृपादृष्टिसंसिक्ताः स्नेहपल्लविताः सदा ।
रमयन्तिस्म गोपीशं तं श्रीवल्लभमाश्रये ॥ २ ॥

इस संसार की उत्पत्ति पालन तथा संहारके मूलकारण, स्वर्ग अर्थात् सांसारिक सुख और अपवर्ग यानी मोक्षके देनेवाले, मर्त्य, स्वर्ग तथा पाताल इन तीनों लोकोंके रक्षक श्रीशंकरजी को प्रणाम करके मैं (माधवार्य) अनेक मुनियों की आज्ञासे और कितनेही अच्छे वैद्यों की प्रेरणानुसार रोगोंके निश्चय करनेवाले इस (माधवनिदान) ग्रन्थ की रचना करता हूँ । इस ग्रन्थ में उपद्रव-अरिष्ट-निदान एवं लिंग इनका अच्छी तरह निर्णय किया गया है* ॥ १ ॥ २ ॥

---

* अब यहाँ यह सन्देह होता है कि इस निदानका सच्चा भेद केवल तत्त्वज्ञानी ऋषिही जान सकते हैं और उन्होंने चरक सुश्रुतादि ग्रन्थों में लिखा भी है फिर तुम्हारे इस ग्रन्थसे मनुष्यों का कौन सा उपकार होगा और वे कैसे इसको जानेंगे? इस बातको विचार कर ही माधवाचार्यने नानामुनीनां वचनैः यह पद रक्खा है जिसके मानी यह है कि मैं इस समय जो भी लिखूंगा वह उन ऋषियों के वचनानुसार ही, अपनी निज की कल्पनासे नहीं । आगे इदानीं पद दिया है

नानातन्त्रविहीनानां भिषजामल्पमेधसाम् ।

सुखं विज्ञातुमातङ्कमयमेव भविष्यति ॥ २ ॥

ऋषियों के बनाए बड़े बड़े ग्रन्थों को पढ़ने में असमर्थ तथा स्वल्प बुद्धिवाले छात्रों को सहज में रोग का निदान जानने के लिये यह ग्रन्थ बड़ा ही सहायक होगा। यद्यपि यह बातें और जगह भी लिखी हैं किन्तु उन्हें मन्दबुद्धिवाले लोग नहीं समझ सकते पर इसके अध्ययन करने से वे बहुत जल्दी समझ जायँगे। यही इस ग्रन्थ में उत्तमता है ॥ ३ ॥

रोगजानने के ५ उपाय ।

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।

संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम् ॥ ४ ॥

मुनियोंने रोगों को जानने के लिए पांच उपाय बतलाये हैं वे इस प्रकार जानने चाहिएँ-निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और संप्राप्ति। ये पाँचो पृथक् पृथक् या मिलजुलकर समस्त रोगों के बोधक हुआ करते हैं*॥४॥

जिसका मतलब यह है कि इस समय एक ऐसे ग्रन्थकी आवश्यकता थी जिसमें हों तो उन्हीं प्राचीन मुनियोंकी बातें लेकिन सरल रूपमें हों इसी लिए यह ग्रन्थ बना रहा हूं।

* सन्निकृष्ट और विप्रकृष्ट इन दो भेदोंसे रोगों का निदान दो प्रकारका होता है। सन्निकृष्ट का मतलब यह है कि जैसे-वात पित्तादिक कुपित होकर ज्वरादि रोगोंको उत्पन्न करते हैं। विप्रकृष्ट उसे कहते हैं जैसे कफ हेमन्त ऋतुमें संचित होता एवं वसन्तमें कुपित हुआ करता है।

पूर्वरूप—उसे कहते हैं जैसे ज्वर उत्पन्न होनेके पहले आलस्यादि हुआ करते हैं और विना मिहनत किए थकान मालूम होना, शरीर का लड़खड़ाना, किसी काममें चित्तका न लगना बेचैनी सी मालूम होना शरीरका रंग बदल जाना आदि लक्षण हुआ करते हैं इनकी पूर्वरूप संज्ञा है।

रूप—जैसे ज्वरके सन्तापसे रक्तपित्त प्रकट होता है रक्तपित्तसे ज्वर और रक्तपित्तज्वरसे श्वासकी उत्पत्ति होती है। प्लीहासे उदर रोग और उदर रोगसे सूजन आदि हुआ करते हैं।

उपशय—जैसे तैल के मर्दन करने पर वायुप्रकृतिसे जायमान रोग शान्त होजाया करता है।

निमित्त तथा पूर्व०

निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ।
निदानमाहुः पर्यायैः प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥ ५ ॥

पूर्वोक्त पांचों निदानोंके ये पर्यायवाचक शब्द हैं-निमित्त-हेतु-आयतन-प्रत्यय-उत्थान और कारण । आयुर्वेद ग्रन्थों में जहां कहीं इनमें से किसी का नाम लिखा मिले वह निदान का पर्यायवाचक ही शब्द माना जाय ॥ ५ ॥

उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः ।

सम्प्राप्ति---कुपित दोषों के आमाशय में प्रविष्ट होजानेसे या किसी दूसरे स्थानमें चले जानेसे अमुक रोग उत्पन्न हुआ है इसी निश्चयको सम्प्राप्ति कहते हैं।

यहाँ एक शंका यह भी होतीहै कि ये जो व्याधि जाननेके लिए उपाय बतलाये गए हैं इनमें किसी एकसे ही काम चलजाता फिर पाँच उपाय बतलाने की क्या आवश्यकता थी ?

समाधान—ऐसा नहीं है केवल एकसे काम नहीं चल सकता पाँचों की जरूरत है। निदानसे सिर्फ इतना ही काम निकल सकता है कि अमुक वस्तु खानेसे यह रोग उत्पन्न हुआ है और वह वस्तु फिर यदि न खाई जाय तो रोग बढ़ेगा नहीं प्रत्युत शान्त होगा। पूर्वरूप जानने की आवश्यकता यों है जैसे वातज्वरके विषयमें सुश्रुतकारने लिखा है कि "यदि वातज्वरवालेको घृत-पान कराया जाय तो वातज्वर नहीं हो सकता।" रूपसे रोगका साध्यासाध्य अथवा कष्टसाध्यत्व आदि बातें मालूमको जाती हैं। यानी जिस रोगका अल्परूप है वह सुखसाध्य, मध्यरूप कष्टसाध्य एवं सम्पूर्ण रूपवाला रोग असाध्य माना जाता है। इसके जाननेसे यह लाभ होता है कि वैद्य असाध्य रोगका परित्याग करता एवं सुखसाध्य तथा कष्टसाध्यकी औषधि करता है। जब रोगकी बारबार परीक्षा की जाती है फिर भी रोगका लक्षण ठीकसे नहीं ज्ञात होता तब उपशयसे काम लेना पड़ता है। चरकमें भी लिखा है कि "जिस रोगके लक्षण और उपायों द्वारा न जाने जासकें उसकी उपशय और अनुशयके द्वारा परीक्षा करनी चाहिए।" यद्यपि पूर्वरूपादिकोंसे रोगका लक्षण जान कर भी चिकित्सा की जासकती है फिर भी रोगके हर एक अंशको जाननेके लिए संप्राप्ति की आवश्यकता होती है। इन बातोंसे यह सिद्ध होगया वैद्यों को एक दो नहीं पाँचों निदान जानने चाहिएँ। इनको अच्छी तरह जान कर ही लोग कुशल वैद्य बन सकेंगे।

लिङ्गमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम् ॥ ६ ॥

जिससे रोगके प्रथम रूप मालूम हों उसे पूर्वरूप व प्राग्रूप कहते हैं वह भी दो प्रकारका होता है एक सामान्य पूर्वरूप दूसरा विशिष्ट पूर्वरूप। इससे उत्पन्न होनेवाले रोगोंका लक्षण जानाजाता है। जिससे उत्पन्न होनेवाले रोग का सामान्य रीतिके ज्ञानसे कुछ अधिकता न जान पड़े वह सामान्यपूर्वरूप कहा जाता है अथवा जिसमें रोगके प्रारम्भमें दोपादि प्रकट विदित होजावें उसे विशिष्ट पूर्वरूप कहते है ॥ ६ ॥

रूप का लक्षण।

तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते ।
संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥ ७ ॥

वही पूर्वरूप जब व्यक्त होजाता है तब रूप कहलाने लगता है और संस्थान, व्यञ्जन, लिङ्ग, लक्षण, चिह्न एवं आकृति इतने उसके पर्याय-वाचक नाम हैं ॥ ७ ॥

उपशयका लक्षण।

हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् ।
औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥ ८ ॥

हेतु—व्याधिविपर्यस्त–विपर्यस्तार्थ इनके विपरीत करनेवाले औषध, अन्न और विहारके सुख देनेवाली युक्तिको व्याधिका उपशय कहते हैं ॥८॥

विद्यादुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः ।
विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्याभिसंज्ञितः ॥ ९ ॥

उस उपशयको ही सात्म्य भी कहा करते हैं। औषध अन्न विहारके ही दुष्कृत योगको अनुपशय कहते हैं। उसी अनुपशयकी व्याध्यसात्म्य संज्ञा भी है ॥ ९ ॥

सम्प्राप्तिलक्षण।

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ।
निर्वृत्तिरामयस्यासौ संप्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ १० ॥

वातादि दोषोंके विकारसे अपने स्थानको छोड़कर जो इधर उधर फैलती और रोगोंको उत्पन्न करती है उसको सम्प्राप्ति कहते हैं । उसीकी जाति तथा आगति संज्ञा भी है ॥ १० ॥

सम्प्राप्ति के भेद ।

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः ।
सा भिद्यते यथाऽत्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥ ११ ॥

संख्या विकल्प प्राधान्य बल और काल ये सम्प्राप्तिके भेद गिनाए गए हैं । संख्या लिखनेका तात्पर्य यह कि जिस प्रकार आगे चलकर इसी ग्रन्थमें आठ प्रकारके ज्वर कहे जानेवाले हैं उसको संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं ॥ ११ ॥

दोषाणां समवेतानां विकल्पोंऽशांशकल्पना ।
स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत्॥१२॥

जब कि वात पित्त और कफ इन तीनोंके दोष एक साथ होवें चाहे बराबर अंशवाले या न्यूनाधिक हों तो वह विकल्प सम्प्राप्ति कहा जाती है और जहां कि रोग अपने अधीन हो वह प्राधान्यसम्प्राप्ति कहलाती है । जहां रोग अपनी अधीनतासे बिल्कुल ही बाहर हो उसकी संज्ञा है अप्राधान्य संप्राप्ति ॥ १२ ॥

व्याधिकाल ।

हेत्वादिकात्स्न्यावयवैर्बलाबलविशेषणम् ।
नक्तंदिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम् ॥ १३ ॥

जब कि हेतु आदि सम्पूर्ण अंशोंसे मौजूद हों तब रोगको बलवान् समझना चाहिए और यदि समस्त अङ्ग न मिल सकें तो रोगको निर्बल समझे इसीको बलरूप संप्राप्ति कहते हैं। रात, दिन, ऋतु और आहार इनके अंश यानी एक देशसे रोगका काल समझना चाहिए अर्थात् रोग घटने बढ़नेसे उसका समय निश्चित करे इसीको कालरूप सम्प्राप्ति कहते हैं । उसी तरह रात्रि और दिनके तीन भाग करे तो पूर्वाह्न कफका, मध्याह्न पित्तका और

अन्त्य भाग वातका हुआ करता है । उसी प्रकार वसन्त ऋतुमें कफ, शरद ऋतुमें वात तथा वर्षामें पित्तका आधिपत्य रहता है ॥ १३ ॥

निदान के विशेष हेतु ।

इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्यासेनोपदेक्ष्यते ।
सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ॥ १४ ॥
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ।
निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते ॥ १५ ॥

यहां तक मैंने निदान का अर्थ संक्षिप्तरूपसे बतलाया आगे विस्तृत रीतिसे कहेंगे । जितने भी रोग हैं वे सब वात पित्त और कफ इन तीनों के कुपित होने पर ही जायमान होते हैं। और उनके कुपित होने का कारण विविध प्रकार का अपथ्य सेवन करना है । प्रत्येक रोगके अर्थका निदान रोगही हुआ करता है मतलब यह कि रोगसे ही रोग पैदा होता है ॥१४॥१५

रोग से रोग की उत्पत्तिके उदाहरण ।

तद्यथा ज्वरसन्तापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते ।
रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां शोषश्चाप्युपजायते ॥ १६ ॥
प्लीहाभिवृद्ध्या जठरं जठराच्छोथ एव च ।
अर्शोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ॥ १७ ॥
(दिवास्वापादिदोषैश्च प्रतिश्यायश्च जायते ।)

जिस तरह ज्वरके सन्तापसे रक्तपित्त उत्पन्न होता है उस रक्तपित्त से ज्वर और रक्तपित्तज्वरसे श्वास उत्पन्न हुआ करता है । उसी तरह प्लीहा बढ़नेसे उदररोग और उदररोगसे सूजन होती है । बवासीरसे उदर रोग और उदर रोगसे वायुगोला उत्पन्न होजाता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

प्रतिश्यायादथो कासः कासात्संजायते क्षयः ।
क्षयो रोगस्य हेतुत्वे शोषस्याप्युपजायते ॥ १८ ॥

दिनमें सोने आदि दोषसे जुकाम होता जुकामसे खांसी खांसीसे क्षय

रोग होजाता है। यह रोग सब रोगों का हेतु एवं राजरोग कहलाता है इसके होने पर शरीर सूखने लगता है ॥१८॥

रोग को उत्पन्न करनेवाली व्याधिकी विचित्रता ।

ते पूर्वं केवला रोगाः पश्चाद्धेत्वर्थकारिणः ।
कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति ॥ १९ ॥
न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेतुत्वं कुरुतेऽपि च ।
एवं कृच्छ्रतमा नॄणां दृश्यन्ते व्याधिसंकराः ॥ २० ॥

पूर्वोक्त रोग पहले तो अकेले ही रहते है किन्तु पीछेसे अपथ्यादि करने पर वे ही अन्य रोगो के भी उत्पादक बन जाया करते है । उनमे कुछ रोग तो ऐसे है जो किसी दूसरी व्याधिको उत्पन्न करके स्वयं शान्त होजाते है और कितने ऐसे भी है जो स्वयं बढे रहते तथा और रोगों को भी उत्पन्न किया करते हैं । इस तरह रोगसमुदाय एक दूसरे से मिलकर प्राणियो को बहुत तकलीफ पहुँचाते है ॥१९॥२०॥

निदानकी आवश्यकता ।

तस्माद्यत्नेन सद्वैद्यैरिच्छद्भिः सिद्धिमुत्तमाम् ।
ज्ञातव्यो वक्ष्यते योऽयं ज्वरादीनां विनिश्चयः ॥ २१ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने पञ्चनिदानलक्षण समाप्तम् ॥ १ ॥

अतएव उत्तम सिद्धि प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले सद्वैद्यों को चाहिए कि इन ज्वरादि रोगो के निश्चयों को—जो आगे कहनेवाले है—उन्हें अच्छी तरह समझे ॥ २१ ॥

इति श्रीरामतेजपाण्डेयकृतमञ्जुलाख्यटीकासमन्विते
माधवनिदाने पञ्चलक्षणनिदानम् ॥ १ ॥

ज्वरनिदानम् ।

ज्वर की उत्पत्ति ।

दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिःश्वाससंभवः ।
ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वन्द्वसंघातागन्तुजः स्मृतः ॥ १ ॥

प्रजापति दक्ष के अपमानसे क्रुद्ध शिवजी के निःश्वाससे उत्पन्न ज्वर आठ प्रकार का कहा गया है। वात, पित्त, कफ इन तीनोंसे उत्पन्न तीन, और तीन ही द्वन्द्वज यानी इन तीनों के दो दो दोषों के मिलनेसे, इन तीनों के मिलने से एक (सन्निपातज्वर), सब मिलाकर सात हुए और एक आगन्तुक ज्वर ये ही आठों प्रकार हैं ॥ १ ॥

ज्वर की संप्राप्ति ।

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥ २ ॥

व्यर्थ आहार एवं विहार के कारण वात पित्त और कफ ये तीनों दोष उत्पन्न हुआ करते हैं। वे ही दोष आमाशय में पहुँच कर कोठे की आग बाहर निकालते तथा धातु और रसमें मिलकर ज्वर को उत्पन्न किया करते हैं ॥ २ ॥

ज्वर के साधारण लक्षण ।

स्वेदावरोधः संतापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा ।
युगपद्यत्र रोगे च स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥ ३ ॥

जिस में शरीर से पसीना निकलना बन्द होजाय, देह भरमें सन्ताप मालूम पड़ने लगे, प्रत्येक अंग में पीड़ा होने लगे यह सब उपद्रव एक साथ जिसमें उत्पन्न होजावें उसी की ज्वर संज्ञा है ॥ ३ ॥

पूर्वरूप ।

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः ।
इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ ४ ॥

जृम्भाऽङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ।
अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पत्स्यति ज्वरे ॥ ५ ॥

शरीर में थकावट मालूम पडने लगे, कुछ खाने पीने की इच्छा न रहे, चेहरे की कान्ति बिगड जाय, मुंह नीरस तथा फीका मालूम पड़ने लगे, आंखो में आंसू बहने लगे, क्षण क्षण भरमे कभी धाम की इच्छा हो कभी शीत की, शरीर भारी जान पड़े, बार २ जंभाई आवे, शरीर में मर्दन करवाने की इच्छा होवे, शरीर भारी होजाय, रोगटे खड़े होजायँ, सब वस्तुओ से इच्छा हट जाय, आंखो के सामने अंधेरा मालूम पडने लगे, चित्त खिन्न होजाय, देह मे जाड़ा लगने लगे, जब ज्वर उत्पन्न होनेवाला होता है तब ये ही सब लक्षण हुआ करते है ॥ ४ ॥ ५ ॥

विशेष पूर्वरूप ।

सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भाऽत्यर्थं समीरणात् ।
पित्तान्नयनयोर्दाहः कफादन्नारुचिर्भवेत् ॥ ६ ॥

ऊपर जो लक्षण कहे गए है वे सब ज्वर के सामान्य पूर्वरूप है । अब विशेष लक्षण बतलाते है । वात से उत्पन्न ज्वर मे बार बार जंभाई आती है । पित्तज्वर मे आंखो मे जलन सी मालूम पड़ने लग जाती है और कफ से जा मान ज्वर मे अन्न की रुचि नही रह जाती ॥ ६ ॥

वातज्वर के लक्षण ।

वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठोष्ठपरिशोषणम् ।
निद्रानाशः क्षवस्तम्भो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ ७ ॥
शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं गाढविट्कता ।
शूलाध्माने जृम्भणं च भवन्त्यनिलजे ज्वरे ॥ ८ ॥

देह मे कँपकँपाहट उत्पन्न होना, शरीरमे कभी अधिक ताप कभी ठंडापन मालूम होना, गले, ओष्ठ तथा मुंह का सूखना, नींद का रुक जाना, अंगो में रूखापन मालूम होना, माथा, हृदय तथा शरीर भर मे दर्द होना, मुंह का फीका सा मालूम पडना, बड़ी कठिनाई से दस्त होना, पेट मे शूल या

कुभना एवं फूलना, बार बार जँभाई आना ये समस्त उत्पात वात से आक्रान्त ज्वर में हुआ करते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

पित्तज्वर के लक्षण ।

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमिः ।
कण्ठौष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ ९ ॥
प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा ।
पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पैत्तिके भ्रम एव च ॥ १० ॥

ज्वर का बड़े वेग से आना, बार बार दस्त होना, बहुत थोड़ी नींद आना, कै होना, गला, होंठ, मुख तथा नासिका का पक जाना, खूब पसीना होना । अनाप सनाप बकना, मुख में कडुआपन मालूम होना, जब तब बेहोश होजाना, शरीरमें हमेशा जलन मौजूद रहना, पागलपन रहना, अधिक प्यास लगना, मल, मूत्र, आँख तथा शरीर की त्वचा का पीला पड़ जाना, चक्कर आना ये सब उपद्रव पित्तज्वर में हुआ करते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

कफज्वर के लक्षण ।

स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता ।
शुक्लमूत्रपुरीषत्वं स्तम्भस्तृप्तिरथापि च ॥ ११ ॥
गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता ।
(नात्युष्णगात्रता छर्दिर्लालास्रावोऽविपाकता)
प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च शुक्लता ॥१२॥

शरीरका भीगा सा मालूम पड़ना, ज्वरका मन्द वेगसे आना, आलस्य मालूम होना, मुँहमें मीठापन मालूम होना, मल, मूत्र तथा शरीर के चमड़े का रंग सफेद होजाना, शरीरका जकड़ना, खानेकी इच्छा न रहना, शरीरका भारी रहना, जाड़ा ज्यादा लगना, बार बार उबकाई आना, रोंगटोंका खड़ा होजाना, नींद ज्यादा आना, नसोंका रुकजाना, अंगोंमें थोड़ा थोड़ा पीड़ा होना, पसीना का बन्द न होना, पेशाब ज्यादा

होना, शरीरसे थोड़ी थोड़ी गर्मीका रहना, कै करना, लार टपकना, देह का पकासा मालूम पड़ना, नाक बहना, किसी चीजमे तबीयत न लगना, खॉसी आना, ऑखोमे सफेदी मालूम होना ये लक्षण कफज्वर के होते है ॥ ११ ॥ १२ ॥

वातपित्तज्वर के लक्षण ।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा ।
कण्ठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ॥ १३ ॥
पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ।

बार बार प्यास लगना, बेहोशी आना, मनमे भ्रम होना, जलन होना, नींद का न आना, मस्तकमे दर्द रहना, गला और मुंहका सूखजाना, कै होना, रोमाञ्च होना, अरुचि रहना, आंखोके आगे अन्धकार सा मालूम पड़ना, शरीरके प्रत्येक जोड़ोमे पीड़ा होना, जंभाई आना ये समस्त लक्षण वात-पित्तज्वरके कहे गए हैं ॥ १३ ॥

वातकफज्वर के लक्षण ।

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रागौरवमेव च ॥ १४ ॥
शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्तनम् ।
संतापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ १५ ॥

शरीर का पानीसे भीगा सा मालूम हो, शरीरकी सन्धियोमे पीड़ा मालूम पड़े, नींद ज्यादा आवे, शरीर भारी मालूम हो, सिरमे दर्द रहे, सरदीके कारण नाक बहती रहे, खांसी आवे, थोड़ा थोड़ा पसीना आवे, देहमे दाह बनी रहे, ज्वर का वेग मध्यम हो ये सब लक्षण वात-कफ-ज्वरमे होते है ॥ १४ ॥ १५ ॥

कफपित्तज्वर के लक्षण ।

लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा ।
मुहुर्दाहो मुहुः शीतं श्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ॥ १६ ॥

मुंहमें लबारके साथ साथ कडुवापन मालूम हो, आलस्य मालूम पड़े, मूर्च्छा आवे, खांसी भी आती रहे, सब चीजोंमें अरुचि हो, प्यास लगे, शरीरमें दाह हो, कभी गर्मी और कभी ठण्डक मालूम पड़े ये लक्षण कफ-पित्तज्वरके हैं ॥ १६ ॥

सन्निपातज्वर के लक्षण ।

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्धिशिरोरुजा ।
सास्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने ॥ १७ ॥
सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवावृतः ।
तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥ १८ ॥
परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्ताङ्गता परम् ।
ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ १९ ॥
शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा ।
स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः ॥ २० ॥
कृशत्वं नातिगात्राणां प्रततं कण्ठकूजनम् ।
कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम् ॥ २१ ॥
मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च ।
चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥ २२ ॥

थोड़ी थोड़ी देरमें कभी बड़ी गर्मी मालूम पड़े और कभी जाड़ा, हड्डी, शरीरकी जोड़ों तथा सिरमें पीड़ा होवे, आंखोंमें आँसू भरे रहें, नेत्र मलीन, लाल तथा तिरछे बने रहें, कानमें कुछ पीड़ाके साथ साथ सन-सनाहट मालूम पड़े, गलेमें कांटेकी तरह कुछ खरके, बार बार आलस्य आवे, मूर्च्छा भी आजाया करे, रोगी अनापशनाप बकने लगे, खांसी आवे, लम्बी सांस आया करे, किसी वस्तुमें रुचि न रहे, चित्तमें भ्रम हो, जीभ जली सी तथा खुरखुरी होजाय, साधारणतया छूने परभी शरीरमें पीड़ा मालूम पड़े, रक्त, पित्त और कफ [illegible] मिला हुआ थूक निकले, बार बार

से घृणा करे, प्यास ज्यादा लगे, नींद न आवे, हृदयमें व्यथा हो, पसीना, मूत्र तथा दस्त कभी कभी थोड़ा सा आजाय, देह दुबली पतली होजाय, गला जला करे और कण्ठमें घुरघुराहट मालूम हो, शरीर में काले और लाल चकत्ते पड़ जायँ, बोल न सके, कान, नाक, जीभ तथा गला पकजाय, पेट भारी बना रहे, वात पित्त और कफादि दोष बहुत दिनमें पकें ये सन्निपातज्वरके लक्षण है ॥ १७—२२ ॥

असाध्य सन्निपातज्वर ।

दोषे विबद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः ।
सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥ २३ ॥
सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेऽपि वा ।
पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हन्ति वा ॥ २४ ॥

जब वात पित्त और कफ ये तीनों दोष बहुत बढ़ जायँ और अग्नि बिल्कुल मन्द होजाय तथा ऊपर कहे हुए लक्षण दिखाई दे तो वह सन्निपातज्वर असाध्य कहा जाता है । इसके अतिरिक्त जब विपरीत लक्षण दिखाई दे या सब लक्षण इकट्ठे न मिले यानी कुछ लक्षण मिलें और कुछ न मिले, मन्दाग्निकी भी शिकायत न रहे तो वह सन्निपातज्वर कष्टसाध्य मानाजाता है वह सातवें, दशवें व बारहवे दिन फिर बढ़ कर या तो शान्त हो जाता अथवा मार डालता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

उपद्रव ।

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः ।
शोथः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ २५ ॥

सन्निपातज्वरके अन्तमें कानोंकी जड़के समीप अतिशय भयंकर सूजन होती है । उस अवस्थामें कहीं कोई ही प्राणी बचता है नहीं तो अधिकांश रोगी मरही जाया करते है ॥ २५ ॥

आगन्तुकज्वर के लक्षण ।

अभिघाताभिचाराभ्यामभिशापाभिषङ्गतः ।
आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत् ॥ २६ ॥

भाषेऽभिदाने—

किसी अस्त्र शस्त्रकी चोट लगनेसे, किसी तरहके यन्त्र मन्त्र सिद्ध [illegible], निषिद्ध ग्रहादि [illegible], भूत वेतालादि की बाधासे अथवा किसीपसी [illegible] आगन्तुक ज्वर हुआ करता है उक्त कारणोंमें से जो कारण [illegible] मालूम हो वही उसका लक्षण होगा ॥

उपद्रव ।

श्यावास्यता विषकृते दाहोऽतीसार एव च ।
भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥ ॥
ओषधिगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुः क्षवः ।
कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्राऽऽलस्यमभोजनम् ॥ २
भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः ।
अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥ २
भूताभिषङ्गादुद्वेगो हास्यरोदनकम्पनम् ।
कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः ॥३०॥
भूताभिषङ्गात्कुप्यन्ति भूतसाम्यान्यलक्षणाः ।

किसी प्रकारके विषसे उत्पन्न आगन्तुकज्वरमें मुँह पर कालापन आजाता है, देहमें दाह होने लगती है, दस्त होते हैं, कुछ खाने पीनेकी इच्छा नहीं रहती, बार बार प्यास लगती है, शरीर में सुईके समान कुछ चुभा सा करता है और बेहोशी आजाती है । कोई विषैला औषध सेवन करनेसे उत्पन्न ज्वरमें मूर्च्छा आती है, मस्तकमें पीड़ा होने लगती है । बार बार उबकाई आती है, छींक भी आती रहती है । कामसे जायमान आगंतुक ज्वरमें चित्त भ्रमित होजाता है, शरीरमें दाह होती है, आलस्य आया करती है, किसी चीजमें रुचि नहीं रहती, हृदयमें पीड़ा होती एवं अंग प्रत्यंग सूख जाया करते हैं । भयसे जायमान ज्वरमें रोगी ऊटपटांग बकने लगता है । शोकसे उत्पन्न ज्वर में भी उसी तरह बकता है और क्रोधसे उत्पन्न ज्वरमें कांपता अधिक है । किसी प्रकारके अभिचार तथा अभिघात

से जायमान ज्वरमें रोगी बेहोश होजाता है और प्यास ज्यादा लगती है। भूत वैताल आदिकोंसे उत्पन्न ज्वरमें मनमें घबड़ाहट होती है और रोगी हँसने रोने तथा कांपने लगता है॥ २७–२९॥ काम और शोकमें वायु, क्रोधमें पित्त तथा भूतज्वरमें वात, पित्त और कफ ये तीनों कुपित होते हैं। प्रतज्वरमें भूतज्वरके लक्षण तथा वातज्वर के भी लक्षण संघटित होते हैं॥ ३०॥

विषमज्वर की सम्प्राप्ति।

दोषोऽल्पोऽहितसंभूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः॥३१॥
धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम्।

ज्वर छूटनेके बाद किसी प्रकारके कुपथ्य करनेसे यदि थोड़ा सा भी दोष रह जाता है तो वह अन्य किसी धातुमें मिलकर विषमज्वर को उत्पन्न कर देता है। (उसका कोई समय नियत नहीं रहता, वह समय बदल कर तीसरे चौथे दिन बड़े वेगके साथ आता रहता तथा समय पाकर नित्यज्वर को भी उत्पन्न कर देता है। जिसका कोई समय नियत न हो शीत उष्ण इन दोनोंके साथ साथ आवे आनेके समय जिसका प्रबल वेग हो ऐसे ज्वर को विषमज्वर कहा जाता है)॥ ३१॥

विषमज्वर के भेद और लक्षण।

सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ।
सन्ततं रसरक्तस्थः सोऽन्येद्युः पिशिताश्रितः॥३२॥
मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि त्वस्थिमज्जगतः पुनः।
कुर्याच्चतुर्थकं घोरमन्तकं रोगसंकरम्॥ ३३॥

सन्तत, सतत, अन्येद्यु, तृतीयक तथा चतुर्थक ये पांच तरहके विषम-ज्वर कहे गए हैं। इनमेंसे जिसका वेग हमेशा एक तरहका बना रहे वह सन्तत कहलाता है, जो कभी चढता और कभी उतरता रहता है, वह ही सतत है, जो बीचमें एक या दो दिनका अन्तर देकर आता है उसे अन्येद्यु कहते हैं। जो ज्वर तीसरे रोज आया करता है, उसको तिजरा तथा

तृतीयक कहते हैं और जो चौथे दिन आता उसे चौथिया तथा चतुर्थक कहते हैं। जब दोष रसमें पहुंचता है तब सन्तत ज्वरको उत्पन्न करता है, रक्तमें पहुँचकर सततज्वरको तथा मांसमें दोषके पहुँचने पर अन्येद्यु ज्वर होता है। जब दोष मेदेमें पहुँचता है तब तिजरा, हड्डी और मज्जामें दोष के पहुंच जाने पर चौथिया होता है। यह बड़ा भयानक ज्वर है इससे ग्रस्त होकर अधिकांश रोगी मरजाया करते हैं और भी इसमें कई रोग मिले जुले रहते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

संततज्वर के लक्षण।

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा।
सन्तत्या योऽविसर्गी स्यात्सन्ततः स निगद्यते ॥ ३४ ॥

जो ज्वर सात दिन, दस दिन अथवा बारह रोज तक बराबर चढ़ा रहे, उसीका नाम सन्तत ज्वर है। वातसे उत्पन्न सन्तत ज्वर सात दिन, पित्तसे जायमान सन्तत ज्वर दस दिन तथा कफज सन्तत ज्वर बारह दिनतक रहता है ॥ ३४ ॥

सतत के लक्षण।

अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्तते।
अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्र एककालं प्रवर्तते ॥ ३५ ॥
तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः।
केचिद्भूताभिषङ्गोत्थं ब्रुवते विषमज्वरम् ॥ ३६ ॥

जो केवल रातमें या केवल दिनमें अथवा रातदिन दोनोंमें दो बार आया करता हो उसकी सततज्वर संज्ञा है। जो रात या दिनमें केवल एक बार आये उसे अन्येद्यु ज्वर कहते हैं। जो ज्वर तीसरे दिन आता है उसे तिजरा या तृतीयक कहते हैं उसी तरह जो चौथे दिन आता है उसका चौथिया नाम है। ये तिजरा तथा चौथिया भी दिन रातमें केवल एक बार आते हैं। कुछ विद्वानोंका कहना है कि तिजरा और चौथिया भी एक तरहका विषमज्वर ही है जो भूत बैताल आदिकोंके कारण उत्पन्न होता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

तृतीयक के लक्षण

कफपित्तात्त्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः ।
वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥ ३७ ॥

जो तृतीयकज्वर कफ तथा पित्तके दोषसे उत्पन्न होता है उसमें पीठ और पीठकी रीढ़ तथा कमर में दर्द होने लगता है । इसी तरह वात और कफ के दोष से जायमान तृतीयकज्वर में पीठही में पीड़ा होती है और कहीं नहीं । वात और पित्तसे उत्पन्न तृतीयक में सिर में पीड़ा होती है । इस तरह तृतीयकज्वरके तीन भेद होते हैं ॥ ३७ ॥

चतुर्थको दर्शयति प्रभावं द्विविधं ज्वरः ।
जङ्घाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिरस्तोऽनिलसंभवः ॥ ३८ ॥

चौथिया ज्वर अपना दो प्रकारका प्रभाव दिखलाता है । जो कफसे उत्पन्न होता है उससे जंघामें पीड़ा होनेलगती है और वातसे जायमान चौथिया में पहले सिर दुखता है फिर धीरे धीरे सारे शरीरमें पीड़ा होने लगती है ॥ ३८ ॥

चतुर्थकसे विषमज्वर की उत्पत्ति ।

विषमज्वर एवान्यश्चतुर्थकविपर्ययः ।
स मध्ये ज्वरयत्यह्नी ह्यादावन्ते च मुञ्चति ॥ ३९ ॥

जब चौथिया ज्वर पहले और चौथे दिनों को छोड़कर दूसरे तीसरे रोज़ आने लगता है तब उसी को एक प्रकार का विषम ज्वर कहने लगते हैं । वह मध्यकाल में ज्यादा ताप देता है किंतु आदि अन्त में छोड़ दिया करता है । वैसे ही तृतीयक ज्वर भी यदि पहले या तीसरे दिन को छोड़ कर दूसरे रोज आने लगे तो वह भी विषम ज्वर कहलाने लगता है ॥ ३९ ॥

वातबलासकज्वर के लक्षण ।

नित्यं मन्दज्वरो रूक्षः शूनकस्तेन सीदति ।
स्तब्धाङ्गः श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातबलासकी ॥ ४० ॥

जिस ज्वर में थोड़ा मामूली ज्वर बना रहे, देहमें रूखापन हो, शोथ रहे, हृदयमें ग्लानि रहे, अङ्ग टूटते रहें, कफ अधिक बढ़ जाय ऐसे ज्वर को वातबलासक ज्वर कहते है ॥ ४० ॥

प्रलेपक ज्वर के लक्षण ।

प्रलिम्पन्निव गात्राणि घर्मेण गौरवेण च ।
मन्दज्वरविलेपी च सशीतः स्यात्प्रलेपकः ॥ ४१ ॥

जिसमें पसीने अथवा शरीरके भारीपनसे देहमें चटचटी मालूम हो, थोड़ा थोड़ा ज्वर रहा करे, सरदी भी मालूम हो, ऐसे ज्वर को प्रलेपकज्वर कहते है ॥ ४१ ॥

विषम ज्वर के विशेष लक्षण ।

विदग्धेऽन्नरसे देहे श्लेष्मपित्ते व्यवस्थिते ।
तेनार्धं शीतलं देहे चार्धं चोष्णं प्रजायते ॥ ४२ ॥
काये दुष्टं यदा पित्तं श्लेष्मा चान्ते व्यवस्थितः ।
तेनोष्णत्वं शरीरस्य शीतत्वं हस्तपादयोः ॥ ४३ ॥
काये श्लेष्मा यदा दुष्टः पित्तं चान्ते व्यवस्थितम् ।
शीतत्वं तेन गात्राणामुष्णत्वं हस्तपादयोः ॥ ४४ ॥
त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरे ।
तयोः प्रशान्तयोः पित्तमन्ते दाहं करोति च ॥ ४५ ॥
करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च ।
तस्मिन् प्रशान्ते त्वितरौ कुरुतः शीतमन्ततः ॥ ४६ ॥
द्वावेतौ दाहशीतादिज्वरौ संसर्गजौ स्मृतौ ।
दाहपूर्वस्तयोः कष्टः कृच्छ्रसाध्यतमश्च सः ॥ ४७ ॥

जब अन्न का रस और कफ पित्त दूषित होता है तब कफके कारण आधा शरीर ठंढा तथा आधा पित्तके कारण बिल्कुल उष्ण रहता है ।

उसी प्रकार जब पित्त दूषित होता है और कफ दूषित होकर हाथ पैरोंमें रहता है उस समय पित्तके दोषसे और अङ्गोंमें गर्मी रहती तथा कफ की दुष्टतासे हाथ पैर ठंढे रहते हैं। इसके बिपरीत जब कफ दुष्ट होकर कोठेमें रहता और पित्त दूषित होकर हाथ में पैरों रहता है तो कफके दूषित रहनेसे और अङ्गोंमें ठंडक तथा हाथ पैर में गर्मी रहता है । इसी को अर्द्धगौरी ज्वर भी कहते हैं। जिसमें पहले जाड़ा लगकर ज्वर आवे तो उसे शीत पूर्वज्वर कहते हैं। कफ तथा वात खालमें रुककर प्रथम शीतज्वर को उत्पन्न करते हैं और जब कफ तथा वात शान्त हो जाते हैं तब पित्त शरीर को जलाने लग जाता है । जिसमें पहले तो गर्मी होती बादमें जाड़ा लगता है उसको दाहपूर्वज्वर कहते हैं। इसमें पहले चमड़ेमें रुका हुआ पित्त शरीर को जलाता है तदनन्तर कफ तथा वात मिलकर समस्त अङ्गोंको ठंडा कर देते हैं। उपरोक्त दाहपूर्वक तथा शीतपूर्वक ये दोनों ज्वर त्रिदोषके बिगड़ने परही होते हैं उसमें भी दाहपूर्वक ज्वर बड़ाही भयानक होता है और उसे अच्छा करनेंमें बड़ी कठिनाई पड़ती है ॥ ४२-४७ ॥

ज्वर के रस, मांस रक्त, आदि धातुओं में पहुँचने के लक्षण ।

गुरुता हृदयोत्क्लेशः सदनं छर्द्यरोचकौ ।
रसस्थे तु ज्वरे लिङ्गं दैन्यं चास्योपजायते ॥ ४८ ॥

जब ज्वर रसस्थ होता है तो शरीरमें भारीपन, हृदयमें क्लेश तथा शरीर टूटने लगता है, वारवार जी मिचलाता है, खाने पीनेकी इच्छा नहीं रहती, किसीको पहचाननेकी शक्ति नहीं रह जाती, मनमें ग्लानि उत्पन्नहो जाया करती है ॥ ४८ ॥

रक्तनिष्ठीवनं दाहो मोहश्छर्दनविभ्रमौ ।
प्रलापः पिडका तृष्णा रक्तप्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ ४९ ॥

रक्तका वमन होना, शरीरमें दाह, मोहहो जाना, जी मिचलाना, किसीको न पहचान सकना, ऊटपटांग बकना, देहमें जगह जगह फुन्सियोंका निकलना, ज्यादा प्यास लगना ये समस्त उपद्रव ज्वरके रक्त स्थानमें पहुंचने पर होते हैं ॥ ४९ ॥

पिण्डिकोद्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपुरीषता ।
ऊष्मान्तर्दाहविक्षेपौ ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे ॥ ५० ॥

शरीर में फुन्सियोंका निकलना, प्यास ज्यादा लगना, मलमूत्र अधिक होना, भीतरही भीतर जलनहोना, हाथ पैर फेंकना, हृदयमें ग्लानि होना ये सब उपद्रव ज्वरके मांसमें पहुँच जाने पर होते हैं ॥ ५० ॥

स्वेदस्तृष्णा मूर्च्छा प्रलापश्छर्दिरेव च ।
दौर्गन्ध्यारोचकौ ग्लानिर्मेदःस्थे चासहिष्णुता ॥ ५१ ॥

पसीनेका ज्यादा आना, अधिक प्यास लगना, वेहोश हो जाना, अनाप सनाप बकने लगना, कै करना, मुँह आदि से दुर्गन्ध निकलने लगना, खाने पीनेकी रुचि न रहना, मनमें ग्लानि होना, देहमें असह्य पीड़ा होना ये सब उपद्रव तब दीखने लगते हैं कि जब ज्वर मेदेमें पहुँच जाता है ॥ ५१ ॥

भेदोऽस्थ्नां कूजनं श्वासो विरेकश्छर्दिरेव च ।
विक्षेपणं च गात्राणामेतदस्थिगते ज्वरे ॥ ५२ ॥

हड्डियोंका फटी जानेके समान मालूम होना, बारबार काँखना, रुकरुक कर स्वास आना, मल अधिक आना, कै करना, देहके अङ्गोंको पटकना ये उपद्रव ज्वरके हड्डीमें पहुँच जाने पर होते हैं ॥ ५२ ॥

तमःप्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वमिस्तथा ।
अन्तर्दाहो महाश्वासो मर्मच्छेदश्च मज्जगे ॥ ५३ ॥

चारों ओर अन्धकार दिखाई पड़ना, हिचकी आना, खांसी आती रहना, जाड़ालगना, कैहोना, भीतरही भीतर दाह होना, स्वासका वेग अधिक होना, मर्म स्थानोंमें सुईकी तरह चुभना, ये लक्षण मज्जा तक ज्वरके पहुँचने पर होते हैं ॥ ५३ ॥

मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे ।
शेफसः स्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य तु विशेषतः ॥ ५४ ॥

इसी तरह बढ़ते बढ़ते जब ज्वर वीर्यस्थान तक पहुँचजाता है तब रोगीकी मृत्यु होजाया करती है क्योंकि ज्वरके पहुँचने पर लिंग ढीला पड़जाता और वीर्य पानी बन कर उसमें से निकलने लगता है ॥ ५४ ॥

प्राकृत वैकृत ज्वर के लक्षण।

वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात् ।
वैकृतोऽन्यः स दुःसाध्यः प्राकृतश्चानिलोद्भवः ॥ ५५ ॥

वर्षा शरद्‌ और वसन्त इन तीनों ऋतुओंमें क्रमशः वात, पित्त और कफात्मक ज्वर हुआ करते हैं यानी वर्षा ऋतुमें वातज्वर, शरद्‌ ऋतुमें पित्तज्वर एवं वसन्त ऋतुमें कफज्वर हुआ करता है । इसके अतिरिक्त जो ज्वर होता है वह वैकृत कहलाता है लेकिन वैकृत ज्वर दुःसाध्य माना गया है साथही प्राकृतिक ज्वर भी जो वायु दुष्ट होने पर उत्पन्न होता है वह भी वैकृतके समान दुःसाध्य होता है ॥ ५५ ॥

उत्पत्ति क्रम ।

वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम् ।
कुर्यात्पित्तं च शरदि तस्य चानुबलः कफः ॥ ५६ ॥
तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम् ।
कफो वसन्ते तमपि वातपित्तं भवेदनु ॥ ५७ ॥

वर्षाऋतुमें वायु दूषित होकर पित्तश्लेष्मात्मक ज्वरको उत्पन्न करता है । उसी तरह शरद्‌ ऋतुमें पित्त दूषित होकर पित्तकफात्मक ज्वरको उत्पन्न करता है । शरद्‌ ऋतुवाले पित्तकफात्मक ज्वरमें यदि जुलाब दे या लंघन करावे तो कुछ डर नहीं रहता । और शरत् कालका एकत्रित वातपित्त और कफ वसन्तमें त्रिदोषात्मक ज्वरको उत्पन्न करता है ॥५६॥५७॥

काले यथास्वं सर्वेषां प्रवृत्तिर्वृद्धिरेव वा ।
निदानोक्तानुपशयो विपरीतोपशायिता ॥ ५८ ॥

अपने अपने समयमें उपरोक्त दोषों की प्रवृत्ति एवं वृद्धि होती रहती उनमें निदानोक्तरीतिके अनुसार आहार विहारादि न करनेसे

अनुपशय यानी कष्ट होता है और यदि अनुकूल आहारादिका सेवन किया जावतो उपशय अर्थात् आनन्द हुआ करता है ॥ ५८ ॥

अंतर्वेग बहिर्वेग ज्वर के लक्षण ।

अन्तर्दाहोऽधिकस्तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः ।
सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदो दोषवर्चोविनिग्रहः ॥ ५९ ॥
अन्तर्वेगस्य लिङ्गानि ज्वरस्यैतानि लक्षयेत् ।
सन्तापो ह्यधिको बाह्यस्तृष्णादीनां च मार्दवम् ॥ ६० ॥
बहिर्वेगस्य लिङ्गानि सुखसाध्यत्वमेव च ।

अन्तर्दाह होना, ज्यादा प्यास लगना, व्यर्थकी बातें बकना, श्वासका अधिक आना, मनमें घबराहट होना, शरीरकी सन्धियों तथा हड्डियोंमें पीड़ा होना, पसीनेका रुकजाना, साफ दस्त न होना ये सब अन्तर्वेग-वाले ज्वरके लक्षण बतलाये गए हैं। शरीरमें अधिक ताप होना, प्यास कम लगना, ये बहिर्वेगवाले ज्वरके लक्षण कहे गए हैं। साथही बहिर्वेगके ज्वर सुखसाध्य होते हैं यानी यदि सावधानीके साथ चिकित्साकी जाय तो यह ज्वर शीघ्र शान्त किया जा सकता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥

आमज्वर के लक्षण ।

लालाप्रसेकहृल्लासहृदयाशुद्ध्यरोचकाः ॥ ६१ ॥
तन्द्रालस्याविपाकास्यवैरस्यं गुरुगात्रता ।
क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवान् ज्वरः ॥ ६२ ॥
आमज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ।
भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो ज्वलयति ज्वरम् ॥ ६३ ॥
शोधनं शमनीयं च करोति विषमं ज्वरम् ।
श्वासो मूर्च्छा रुचिस्तृष्णा छर्द्यतीसारविड्ग्रहः ॥
हिक्का श्वासोऽङ्गदाहश्च ज्वरस्योपद्रवा दश ॥ ६४ ॥

पच्यमान ज्वर के लक्षण

ज्वरवेगोऽधिकस्तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः।

मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशः पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ६५ ॥

लारका टपकना, बारबार उबकाई आना, हृदय पर बोझा सा मालूम पड़ना, किसी चीजकी रुचि न होना, नेत्रोंमें झपकी आना, आलस्य लगना, जो कुछ खाय उसका न पचना, मुंहका फीका लगना, शरीर भारी मालूम होना, भूख न लगना, पेशाब ज्यादा होना, देहमें जकड़न होना, ज्वरके वेगका प्रबल होना ये सब आम (कच्चे) ज्वरके लक्षण हैं इनमें कोई औषध न देना चाहिए । कारण कि इस ज्वरमें औषध देनेसे ज्वर शान्त नहीं होता बल्के और भी बढ़ता है। यदि इसमें शोधन या शमन (शान्त) करनेकी दवा दीजाती है तो वह ज्वर बिगड़ कर विषम ज्वरका रूप धारण कर लेता है। प्रबल वेगसे ज्वरका आना, प्यास ज्यादा लगना, व्यर्थकी बातें बकना, श्वास ज्यादा आना, चक्कर आना, दस्त ज्यादा होना, बार बार उबकाई आना ये ज्वरके पचनेके लक्षण कहे गए हैं ॥ ६१-६५ ॥

पक्वज्वर के लक्षण।

क्षुत्क्षामता लघुत्वं च गात्राणां ज्वरमार्दवम्।

दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरामज्वरलक्षणम् ॥ ६६ ॥

भूख लगना, शरीरमें कमजोरी मालूम होना, अंगोंमें दुर्बलता होना; शरीरमें हल्कापन आना, ज्वरके वेगका घट जाना, अपान वायुका छूटना, चित्त प्रसन्न रहना ये सब पचे हुए ज्वरके लक्षण हैं ॥ ६६ ॥

साध्यज्वर के लक्षण।

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः।

किसी बलवान् प्राणीके थोड़े दोष हों और ज्वरके साथ कोई दूसरा उपद्रव न हो इस प्रकारका ज्वर साध्य कहाजाता है।

असाध्यज्वर के लक्षण।

हेतुभिर्बहुभिर्जातो बलिभिर्बहुलक्षणः ॥ ६७ ॥

ज्वरः प्राणान्तकृद्यश्च शीघ्रमिन्द्रियनाशनः।

ज्वरः क्षीणस्य शूनस्य गम्भीरो दैर्घरात्रिकः ॥६८॥
असाध्यो बलवान् यश्च केशसीमन्तकृज्ज्वरः ।

अनेक प्रबल कारणोंसे जो ज्वर उत्पन्न हो जिसमें कई लक्षण एक साथ घट जायँ ऐसा ज्वर प्राणान्त करने वाला हुआ करता है और जिस ज्वरके आतेही इन्द्रियोंकी शक्तियां नष्ट होजायँ यानी कानसे सुननेकी, आंखसे देखने आदि की सामर्थ्य न रहजाय वह ज्वर भी प्राणान्त करने वाला होता है। दुर्बल प्राणी तथा फूले हुए मनुष्यके जो ज्वर होता है वह भी असाध्य है। जो ज्वर धातुओंमें पैठकर गुप्तर होजाता तथा ज्यादा दिनतक पिण्ड नहीं छोड़ता और जो ज्वर अतिशय बलवान् हो, जिसके होनेसे केश चिकने होजायँ वह ज्वर भी असाध्य कहाजाता है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

गम्भीरस्तु ज्वरो ज्ञेयो ह्यन्तर्दाहेन तृष्णया ॥ ६९ ॥
आनद्धत्वेन चात्यर्थं श्वासकासोद्गमेन च ।
आरम्भाद्विषमो यस्तु यश्च वा दैर्घरात्रिकः ॥ ७० ॥
क्षीणस्य चातिरूक्षस्य गम्भीरो यस्य हन्ति तम् ।
विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपतितोऽपि वा ॥ ७१ ॥
शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ।
यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि संघातशूलवान् ॥ ७२ ॥
वक्त्रेण चैवोच्छ्वसिति तं ज्वरो हन्ति मानवम् ।
हिक्काश्वासतृषायुक्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम् ॥ ७३ ॥
सन्ततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः ।
हतप्रभेन्द्रियं क्षीणमरोचकनिपीडितम् ॥ ७४ ॥

भीतरी जलन तथा ज्यादा प्यास जिस ज्वरमें लगे वह गम्भीर ज्वर कहलाता है। जिसमें पेटफूल जाय साथही खाँसी आवे और दमभी फूलने लगे वह अतिगम्भीर ज्वर होता है, जो ज्वर पहले ही से विषम हो यानी

उसके आनेका कोई नियत समय न रहे अथवा जो ज्यादा दिनों तक लगा रहे या रोगी निर्बल हो और जिसके शरीर में रूखापन ज्यादा हो ऐसे मनुष्य को वह ज्वर मारकर ही छोड़ता है। जो रोगी बेहोश होकर बिछौने पर पड़ा पड़ा सोयाही करे, बिना किसी के सहारे न उठ पावे, ऊपरसे जाड़ा ज्यादा लगे और भीतर जलन बनी रहे इस प्रकारके ज्वरवाला प्राणी भी नहीं बच सकता। जिस ज्वरवाले रोगीके रोएं हमेशा खड़े रहें, आंखें लाल बनीं रहें, हृदयमें एक गोला सा बनकर दुखा करे, श्वास ज्यादा आवे, ऐसे रोगीको ज्वर मारके ही दम लेता है। जिस रोगीको बार २ हिचकी आती रहे, श्वास का वेग प्रबल हो, प्यास ज्यादा लगे, बेहोशी बनीरहे, आंखें नचाता रहे, सदा लम्बी लम्बी साँस खींचता रहे, रोगीका शरीर बिल्कुल क्षीण होगया हो इस प्रकारका भी रोगी नहीं बचता। जिस रोगीकी इन्द्रियाँ शक्तिहीन होगई हों, शरीरमें दुर्बलता ज्यादा आगई हो, किसी वस्तुकी इच्छा न रहे, प्रत्येक अङ्ग दुखते हों—॥ ६६–७४ ॥

गम्भीरतीक्ष्णवेगार्तं ज्वरितं परिवर्जयेत् ।

गम्भीर तथा तीक्ष्ण वेगके कारण जो रोगी अतिशय दुखीहो वैद्यको उचित है कि वह ऐसे रोगीकी चिकित्सा न करे ॥

ज्वरविमुक्ति के पूर्वरूप ।

दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णाकम्पविड्भिदसंज्ञिता ।
कूजनं चास्यवैगन्ध्यमाकृतिर्ज्वरमोक्षणे ॥ ७५ ॥

देहमें दाह होना, पसीनेका आना, चक्कर आना, बार बार प्यास लगना, शरीरमें थोड़ी कँपकँपी रहना, दस्त होना, बराबर कराहते रहना, शरीरमें किसी प्रकारके गन्धका न रहना ये सब ज्वर छूटनेके लक्षण कहे गए हैं ॥ ७५ ॥

ज्वरमुक्ति के लक्षण ।

स्वेदो लघुत्वं शिरसः कण्डूः पाको मुखस्य च ।
क्षवथुश्चान्नलिप्सा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम् ॥ ७६ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने ज्वरनिदानं समाप्तम् ॥ २ ॥

पसीना होना, शरीर का हल्का मालूम पड़ना, सिरमें खुजली होना, मुखका पक जाना, छींकोंका आना, अन्न खानेकी इच्छा होना, ये ज्वर छोड़ देनेके लक्षण बताए गए हैं ॥ ७६ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने ज्वरनिदानम् ॥ २ ॥

अथातीसारनिदानम् ।

अतीसार का प्रादुर्भाव ।

गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः ।
विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चापि भोजनैः ॥ १ ॥
स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषैर्भयैः ।
शोकाद्दुष्टाम्बुमद्यातिपानैः सात्म्यर्तुपर्ययैः ॥ २ ॥
जलाभिरमणैर्वेगविघातैः क्रिमिदोषतः ।
नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥ ३ ॥

गुरुतर पदार्थोंका भोजन जिसके पचनेमें विलम्ब हो, बहुत चिकनी चीजों का खाना, ज्यादा रूखी चीजोंका खाना, बहुत गर्म चीजें खाना, बहुत पतली चीजें खाना, बहुत गाढ़ी चीजें खाना, बहुत ठण्ढी एवं प्रकृतिविरुद्ध चीजें खाना, पहलेका खाया हुआ खाना न पचे तिसपर और भोजन कर लेना, अजीर्णावस्थामें भोजन करना, ठीक समय पर भोजन न करना, ज्यादा भोजन करलेना, तेल घी आदि स्निग्ध पदार्थों का ज्यादा सेवन करना, या बिल्कुल कम सेवन करने से, किसी प्रकारका विष उपयोगमें लानेसे, भय और शोकसे, दूषित जलके पीनेसे, शराब ज्यादा पीनेसे, जिस ऋतुमें जो चीज खाना निषिद्ध है वह वस्तु खानेसे, जलमें ज्यादा देरतक खेलने कूदनेसे, पेशाब पाखाना रोकनेसे या उदरस्थ कृमियोंके दोषसे मनुष्योंके अतिसार रोग होजाया करता है जिसका लक्षण आगे बतलायेंगे ॥ १-३ ॥

अतीसार की सम्प्राप्ति ।

संशम्याऽपां धातुरग्निं प्रवृद्धः शकृन्मिश्रो वायुनाऽधः प्रणुन्नः ।
सरत्यतीवातिसारं तमाहुर्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्ति ॥
एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः ॥४॥

जिस समय धातु शान्त होकर दूषित होजाता तथा अग्निको मन्द करके मलसे मिलजाता तो वह जोरोसे गुदाके द्वारा मल गिराता है, उसीको अतिसार रोग कहते हैं । यह बड़ा भयानक रोग है । इसके ६ भेद हैं । वात पित्त कफ इन तीनो दोषोसे तीन प्रकारका, जैसे—वातातीसार, पित्तातिसार, कफातीसार और चौथा त्रिदोषजातीसार पाँचवां शोकातीसार छठां आमातीसार ये छ भेद हुए ॥ ४ ॥

अतीसार का पूर्वरूप ।

हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधाः ।
विट्सङ्ग आध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥५॥

हृदय, नाभी, गुदा, उदर और कोखमें दर्द होना या शूल सा चुभना, शरीरका पीडित रहना, अपान वायुका न निकलना, दस्त न होना, पेट फूलना, अन्नका न पचना, अतीसार रोगके ये पूर्वरूप बतलाये गए हैं यानी जब अतिसार होनेवाला होता है उसके पहले ये लक्षण दीखते है ॥५॥

वातज अतीसार का लक्षण ।

अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः ।
शकृदामं सरुक्शब्दं मारुतेनातिसार्यते ॥ ६ ॥

जिसमे लाल रंगका कुछ फेनेके साथ रूखा एवं थोड़ा थोड़ा मल बार २ निकले, मल कच्चा ही आवे और उसके साथ बीच बीचमे पीड़ा होने लगे तथा अपान वायु निकले तो शब्द हो अथवा मरोड़के साथ मल निकले ये सब वातसे जायमान अतीसारके लक्षण कहे गए है ॥ ६ ॥

पैत्तिक और कफज अतीसार के लक्षण ।

पित्तात्पीतं नीलमालोहितं वा तृष्णामूर्च्छादाहपाकोपपन्नम् ।
शुक्लं सान्द्रं श्लेष्मणा श्लेष्मयुक्तं विस्रं शीतं हृष्टरोमा मनुष्यः ॥७॥

यदि दस्त पीला, नीला एवं कुछ ललाईके साथ हो, प्यास ज्यादा लगे, कभी कभी बेहोशी आजाया करे, गुदामें कुछ पका सा मालूम हो वह पित्तज है। सफेद, चिकना, कफयुक्त हो और सड़े मांसकी तरह जिसमेंसे दुर्गन्धि निकलती हो ऐसा मल निकले तथा रोंगटे खड़े होजांय वहीं ये कफातीसारके लक्षण हैं॥ ७॥

सान्निपातिक अतीसार के लक्षण।

वराहस्नेहमांसाम्बुसदृशं सर्वरूपिणम्।
कृच्छ्रसाध्यमतीसारं विद्याद्दोषत्रयोद्भवम्॥ ८॥

सुअरकी चर्वीके समान चिकना, मांसके धोवनकी तरह झालदार कई रंगका और सफेद दस्त हो तो वह सन्निपातातीसार कहाजाता एवं कष्टसाध्य हुआ करताहै॥ ८॥

शोकजातीसार के लक्षण।

तैस्तैर्भावैः शोचतोऽल्पाशनस्य
बाष्पोष्मा वै वह्निमाविश्य जन्तोः।
कोष्ठं गत्वा क्षोभयेत्तस्य रक्तं
तच्चाधस्तात्काकणन्तीप्रकाशम्॥ ९॥
निर्गच्छेद्वै विड्विमिश्रं ह्यविड्वा
निर्गन्धं वा गन्धवद्वाऽतिसारः।
शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं
रोगो वैद्यैः कष्ट एष प्रदिष्टः॥ १०॥

अपने किसी मित्रके वियोग तथा धन आदि खोजानेके कारण जो शोक होता है उससे खाया हुआ अन्न नहीं पचता, उस हालतमें वायु गरम होकर उदराग्नि में प्रवेश करता और खून को चञ्चल कर के गुदा के मार्ग से गिराने लगता है। गिरनेके समय उसमें कुछ दस्त मिला रहता अथवा बिना दस्तके मिले रहने पर भी उसमें से बड़ी दुर्गन्धि निकलती है। यह शोकातीसार कहलाता एवं कष्टसाध्य हुआ करता है, वैद्य को

इसकी चिकित्सामे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है लेकिन अच्छा वह तभी होता है जब उसका वह भी दूरहो जाय जिसके कारण रोग की उत्पत्ति हुई है ॥ ६ ॥ १० ॥

आमातीसार ।

अन्नैरजीर्णात्प्रद्रुताः क्षोभयन्तः
कोष्ठं दोषा धातुसंघान्मलांश्च ।
नानावर्णं नैकशः सारयन्ति
शूलोपेतं षष्ठमेनं वदन्ति ॥ ११ ॥

जिस अतिसारमे अन्न नहीं पचता और वात पित्त तथा कफके दोषसे उदरमे इधर उधर टकराता फिरता है और वातादि दोष, धातुओ तथा मलको घुमाते हुए विविध रंगके मलों को बाहर निकालता है । इसमें दर्द बहुत होता है, इसीको आमातीसार कहते है ॥ ११ ॥

पक्कातीसार के लक्षण ।

संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति ।
पुरीषं भृशदुर्गन्धि पिच्छिलं चामसंज्ञितम् ॥ १२ ॥
एतान्येव तु लिङ्गानि विपरीतानि यस्य वै ।
लाघवं च विशेषेण तस्य पक्वं विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

उपरोक्त दोषो से युक्त मल यदि पानीमे डालनेसे डूबजाय और बदबू ज्यादा हो साथही चिकनापन भी रहे तो वह अपरिपक्व यानी कच्चा आम कहलाता है । इसके विपरीत पानी मे डालनेसे मल यदि न डूबे उस मे चिकनापन न हो न दुर्गन्धी हो, शरीर भारी न मालूम पड़े तो उसे परिपक्व आम समझना चाहिए ॥ १२ ॥ १३ ॥

असाध्य अतीसार के लक्षण ।

पक्वजाम्बवसंकाशं यकृत्खण्डनिभं तनु ।
घृततैलवसामज्जवेशवारपयोदधि- ॥ १४ ॥

मांसधावनतोयाभं कृष्णं नीलारुणप्रभम् ।
मेचकं स्निग्धकर्बूरं चन्द्रकोपगतं घनम् ॥ १५ ॥
कुणपं मस्तुलुङ्गाभं सुगन्धि कुथितं बहु ।
तृष्णादाहतमःश्वासहिक्कापार्श्वास्थिशूलिनम् ॥ १६ ॥
संमूर्च्छारतिसंमोहयुक्तं पक्वबलीगुदम् ।
प्रलापयुक्तं च भिषग्वर्जयेदतिसारिणम् ॥ १७ ॥

जिसरोगी का मल पकी जामुनके रंग का हो, शरीर जकड़ा सा मालूम पड़े और मल का रंग तेल, चरबी, मज्जा, दूध तथा दही की तरह या मांस के धोये हुए जलकी तरह हो, बिल्कुल काला, नीला, लाल या मयूरपंख की तरह चमकता हो, हरे रंग या चितकबुले रंग का हो, बहुत चिकना तेल मिलासा, बहुत गाढ़ा, बहुत सफेद, सड़े हुये मुरदे की तरह गन्धवाला, मस्तक की मज्जा के समान, मवादके रंगकी भाँति मलका रंग हो तथा रोगी को प्यास बहुत लगे, शरीरमें दाह हो, घुमनी आवे, श्वास की गति प्रबल हो, हिचकी आती रहे, बगल की पसलियोंमें पीड़ा हो, बेहोशी आजाया करे, किसी वस्तु में रुचि न हो, सब इन्द्रियाँ शिथिल हो जायँ, गुदामें पकने की तरह पीड़ा मालूम पड़े, व्यर्थ की बातें बके इस प्रकारके लक्षणवाले अतीसीरके रोगी की चिकित्सा वैद्यको न करनी चाहिए ॥ १४-१७ ॥

असंवृतगुदं क्षीणं दूराध्मातमुपद्रुतम् ।
गुदे पक्वे गतोष्माणमतिसारकिणं त्यजेत् ॥ १८ ॥
श्वासशूलपिपासार्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम् ।
विशेषेण नरं वृद्धमतीसारो विनाशयेत् ॥ १९ ॥

जिसकी गुदा हमेशा खुली रहे, शरीर क्षीण होगया हो, पेट फूला रहे, शरीरमें सूजन हो, पित्त के प्रकोपसे गुदा पक गयी हो तो वैद्यको चाहिए कि ऐसे रोगी की दवा न करे। श्वास जोरोंसे चले, पेटमें

शूलसा चुभता रहे । प्यास ज्यादा लगे, शरीर दुर्बल होगयाहो, ज्वर भी आजाया करे हो और रोगी वृद्धावस्था का हो तो समझना चाहिए कि यह रोगी चिकित्सा से नहीं वच सकेगा ॥ १९ ॥

बाले वृद्धे त्वसाध्योऽयं रूपैरेतैरुपद्रुतः ।
अपि यूनामसाध्यः स्यादतिदुष्टेषु धातुषु ॥ २० ॥

यदि बालक या वृद्धके यह अतीसार का रोग हो और उपर कहे हुए लक्षण स्पष्ट दीख पड़ें तो जान जाय कि रोग असाध्यहै । और ऊपर कहे समस्त उपद्रव दिखाई दें तथा दोष धातुओं तक पहुंच जाय तो युवावस्था वाले प्राणी के लिए भी यह रोग असाध्य होजाया करता है ॥ २० ॥

पित्तकृन्ति यदाऽत्यर्थं द्रव्याण्यश्नाति पैत्तिके ।
तदोपजायतेऽभीक्ष्णं रक्तातीसार उल्बणः ॥ २१ ॥

पित्तातीसार में रोगी यदि पित्तवर्द्धक चीजें ज्यादा खाले तो महान् भयंकर रक्तातीसार होजाया करता है ॥ २१ ॥

शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् ।
छर्दिमूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वातीसारिणं त्यजेत् ॥२२॥

शरीर में शोथ, उदर में शूल, ज्वर, ज्यादा प्यास लगना, खाँसी आना, श्वास अधिक चलना, कुछ खाने की इच्छा न रहना, कै होना, वेहोशी आना, हिचकियाँ आतेरहना ये अतीसार के उपद्रव जिस रोगी में दिखाई दें वैद्य को समझ लेना चाहिए कि रोग असाध्य है ॥ २२ ॥

प्रवाहिका की संप्राप्ति ।

वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं नुदत्यधस्तादहिताशनस्य ।
प्रवाहतोऽल्पं बहुशो मलाक्तं प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥२३॥

कुपथ्य भोजन करनेवाले मनुष्य का वायु विगड़ जाता एवं थोड़ा थोड़ा मल गिराकर रोगी को बहुत दुःख दिया करता है, मल का गिरना कभी नहीं रुकता इसी को कुशल वैद्य गण प्रवाहिका कहते हैं ॥ २३ ॥

प्रवाहिका का रूप ।

प्रवाहिका वातकृता सशूला पित्तात्सदाहा सकफा कफाच्च
सशोणिता शोणितसंभवा च ताः स्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु।
तासामतीसारवदादिशेच्च लिङ्गं क्रमं चामविपक्कतां च २४

वातसे जायमान प्रवाहिका शूलयुक्त, पित्तज दाहयुक्त तथा कफसे उत्पन्न कफसहित और रक्तज प्रवाहिका रक्तसहित हुआ करती है। अधिक स्निग्ध पदार्थ सेवन करनेसे कफज प्रवाहिका, रूखेपन से वातज तथा तीखे और खट्टे पदार्थ के खाने से पैत्तिक प्रवाहिका हुआ करती है ॥ २४ ॥

अतीसार के निवृत्ति का लक्षण ।

यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति ।
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः ॥ २५ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदानेऽतीसारनिदानं समाप्तम् ।

जिस रोगीको विना दस्तकेही पेशाब खुल कर होने लगे, अपान वायु भी विना दस्तके ही छूटने लगे, मन्दाग्नि न रहे, जो कुछ खाय वह पचता जाय, कोठा हल्का मालूम हो तो समझना चाहिए कि अब अतीसार नष्ट होगया ॥ २५ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने अतीसारनिदानम् ॥ ३ ॥
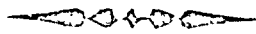
अथ ग्रहणीरोगनिदानम् ।

ग्रहणी की संप्राप्ति ।

अतीसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः ।
भूयः संदूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥ १ ॥

पूर्वोक्त अतीसारके निवृत्त होजाने पर भी यदि रोगी किसी प्रकार

का कुपथ्य करता है तो फिर उसका अग्नि बिगड़ जाता तथा ग्रहणी यानी ग्रहणशक्ति को दूषित कर देता है ॥ १ ॥

ग्रहणी का सामान्य लक्षण ।

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ।
सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुञ्चति ॥ २ ॥
पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् ।
ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥ ३ ॥

वात पित्त कफ इन तीनोंके एक बारगी बिगड़ने तथा एक एक करके बिगड़ने पर खाए हुए अन्नादिको ग्रहणी ग्रहण करनेमें असमर्थ होजाती है । उस समय अन्न पचता नहीं बल्के कच्चाका कच्चाही गिरने लगता है अथवा कुछ कच्चा और कुछ पक्का होकर निकलता है उसमें दुर्गन्धि अधिक होती है और मल ज्यादातर गाढ़ा होकर निकलता है, वैद्यगण ऐसे रोगको ग्रहणी रोग कहते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

पूर्वरूप ।

पूर्वरूपं तु तस्येदं तृष्णाऽऽलस्यं बलक्षयः ।
विदाहोऽन्नस्य पाकश्च चिरात्कायस्य गौरवम् ॥ ४ ॥

ज्यादा प्यास लगना, आलस्य आना, कमजोरी का होना, पेटमें दाह रहना, अन्नका देरीसे पचना, शरीरका भारी रहना ये सब ग्रहणीके पूर्वरूप कहे गए हैं ॥ ४ ॥

वातज ग्रहणी के लक्षण ।

कटुतिक्तकषायातिरूक्षसंदुष्टभोजनैः ।
प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः ॥ ५ ॥
मारुतः कुपितो वह्निं संछाद्य कुरुते गदान् ।
तस्यान्नं पच्यते दुःखं शुक्तपाकं खराङ्गता ॥ ६ ॥
कण्ठास्यशोषोऽक्षुत्तृष्णा तिमिरं कर्णयोः स्वनः ।

पार्श्वोरुवङ्क्षणग्रीवारुगभीक्ष्णं विसूचिका ॥ ७ ॥
हृत्पीडाकार्श्यदौर्बल्यं वैरस्यं परिकर्तिका ।
गृद्धिः सर्वरसानां च मनसः सदनं तथा ॥ ८ ॥
जीर्णे जीर्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्यमुपैति च ।
स वातगुल्महृद्रोगप्लीहाशङ्की च मानवः ॥ ९ ॥
चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत् ।
पुनः पुनः सृजेद्वर्चः कासश्वासार्दितोऽनिलात् ॥१०॥

ज्यादा तीखा, कसैला, बहुत रूखा, कुसमय भोजन करना, भूखसे ज्यादा खालेना, अधिक रास्ता चलना, पेशाब पाखानेके वेगको रोकना, अतिशय स्त्रीप्रसङ्ग करना, इन्हीं कारणोंसे वायु अग्निके वेगको ढांक कर ग्रहणी रोगको उत्पन्न करता है। अब ग्रहणीके उपद्रव बतलाते हैं—बड़ी कठिनाईसे अन्नका पचना, पाकका सूखा रहना, शरीरमें खुरखुरापन होजाना, गला और मुँहका सूखा रहना, भूख और प्यास ज्यादा लगना, आँखोंके आगे तितली सी नाचने लगना, कानोंमें सनसनाहट होना, पसलियों, जांघें, हड्डियोंकी सन्धियोंमें, गलेमें बराबर पीड़ा होना, दस्त एवं कैका जारी रहना, चित्तमें बेचैनी मालूम होना, शरीरका दुर्बल होना, मुँहमें फीकापन मालूम होना, गुदामें मालूम हो कि कोई कतर रहा है, खट्टा, मीठा तथा तीखी सब प्रकारकी चीजें खानेकी इच्छा हो, मनमें एक प्रकारका क्षोभ सा बना रहे, पेटका फूलना, भोजन करने पर तबीयत अच्छी मालूम होना, वायुगोला तथा पिलहीके समान लक्षण दिखाई देना, बड़ी देरमें कठिनाईसे खांसी तथा श्वाससे दुखी होने पर कभी थोड़ा कभी ज्यादा शब्द और फेन के साथ साथ गीला या सूखा मल गिरना ये सब ग्रहणीरोगके उत्पात हैं ॥ ५-१० ॥

पित्तज के लक्षण ।

कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैः पित्तमुल्बणम् ।
आप्लावयद्धन्त्यनलं जलं तप्तमिवानलम् ॥ ११ ॥

सोऽजीर्णं नीलपीताभं पीताभः सार्यते द्रवम् ।
पूत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृडर्दितः ॥ १२ ॥

किसी कड़ुई चीज़के खालेनेसे, अजीर्णके कारण, दाह उत्पन्न करने वाली वस्तुके भोजन करनेसे, खट्टी और नमकीन चीजें खानेसे पित्त गरम होकर औदर्य अग्निको उसी प्रकार बुझादेता है जैसे गरम पानी आगको ठंढी कर देता है । अग्निके बुझजाने पर रोगीका रंग पीला पड़ जाता, बिना पचा हुआ नीले पीले रंगका मल गिरने लगता, खट्टी डकारें आने लगतीं, हृदय तथा गला जलने लगता, कोई चीज खाने पीने की इच्छा नहीं रह जाती और प्यास ज्यादा लगती है, ये सब उपद्रव पित्तज ग्रहणीमें होते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

कफजग्रहणी के लक्षण ।

गुर्वतिस्निग्धशीतादिभोजनादतिभोजनात् ।
भुक्तमात्रस्य च स्वप्नाद्धन्त्यग्निं कुपितः कफः ॥ १३ ॥
तस्यान्नं पच्यते दुःखं हृल्लासच्छर्द्यरोचकाः ।
आस्योपदेहमाधुर्यं कासष्ठीवनपीनसाः ॥ १४ ॥
हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरु ।
दुष्टो मधुर उद्गारः सदनं स्त्रीष्वहर्षणम् ॥ १५ ॥
भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रवर्तनम् ।
अकृशस्यापि दौर्बल्यमालस्यं च कफात्मके ॥ १६ ॥

बहुत भारी, ज्यादा चिकनी, ज्यादा ठंढी चीज़ें खानेसे, दिनमें भोजन करनेके बाद सोनेसे कफ कुपित होकर उदरकी आगको बुझा देता है । अन्नका देरीमें पचना, दिलमें बेचैनी रहना, बार २ वमन होना, कुछ खाने पीनेकी इच्छा न रहना, मुँहमें एक तरहका चटपटापन तथा मिठास मालूम होना, खांसी आना, जी मिचलाना, पीनस रोग होजाना, नाक बहते रहना, हृदय पर बोझा सा लदा रहना, पेट फूला रहना,

खट्टी डकारें आते रहना, अग्निका मन्द पड़ जाना, स्त्रीप्रसंग करनेकी इच्छा न रह जाना, आँव तथा कफ मिला हुआ भारी और पतले मलका गिरना, हृष्ट पुष्ट मनुष्यका भी दुर्बल होजाना, आलस्य ज्यादा आना ये समस्त उपद्रव कफसे जायमान ग्रहणीसे हुआ करते हैं ॥ १३–१६ ॥

सन्निपातग्रहणी के लक्षण।

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिङ्गसमागमे।
त्रिदोषं निर्दिशेदेवं तेषां वक्ष्यामि भेषजम् ॥ १७ ॥

जैसे लक्षण ऊपर वात–पित्त और कफज ग्रहणीके कह आए हैं जिसमें वे तीनों दीख पड़ें उसे सन्निपातात्मक ग्रहणी कहते हैं। उसकी दवा आगे चल कर बतावेंगे ॥ १७ ॥

संग्रहणी के लक्षण।

"अन्त्रकूजनमालस्यं दौर्बल्यं सदनं तथा।
द्रवं शीतं घनं स्निग्धं सकटीवेदनं शकृत् ॥ १ ॥
आमं बहु सपैच्छिल्यं सशब्दं मन्दवेदनम्।
पक्षान्मासाद्दशाहाद्वा नित्यं वाऽप्यथ मुञ्चति ॥ २ ॥
दिवा प्रकोपो भवति रात्रौ शान्तिं व्रजेच्च सा।
दुर्विज्ञेया दुश्चिकित्स्या चिरकालानुबन्धिनी ॥ ३ ॥
सा सर्वेदामवातेन संग्रहग्रहणी मता।

जिस रोगमें ढीला, गाढ़ा, सफेद और चिकना मल गिरे, कमरमें दर्द हो, बहुतही चिकना आँव गिरे, पाखानेके समय शब्द ज्यादा हो, पेटमें थोड़ी थोड़ी पीड़ा रहे, उपरोक्त रीतिसे पक्ष भरमें महीने रोजमें या दस दिनमें मल गिरे अथवा रोजही गिरा करे, अँतड़ियां घुलघुलाने लगें, आलस्य लगी रहे, शरीर दुर्बल होता जाय, मन उदास रहे, दिनके समय दस्तका वेग ज्यादा रहे किन्तु रात्रिको शान्ति मिले उसे संग्रहणी कहते हैं। यह रोग बड़ी कठिनाईसे जाना जाता है, जान कर भी इसका निवारण करना सहल नहीं है। यदि यह रोग थोड़े दिनका हो तो उपाय करनेसे चाहे शान्त भी होजाय लेकिन ज्यादा दिनका होजाने पर अच्छा नहीं होने आता। यह

रोग आम वातसे उत्पन्न हुआ करता है, वह मलका सङ्ग्रह करके बहुत दिन तक रोके रहता है फिर छोड़ता है, इसी लिए लोग इसे संग्रहणी कहते हैं ॥ १-३ ॥

घटीयन्त्र संग्रहणी ।

स्वपतः पार्श्वयोः शूलं गलज्जलघटीध्वनिः ।
तं वदन्ति घटीयन्त्रमसाध्यं ग्रहणीगदम् ॥ ४ ॥"

खानेकी अधिक इच्छाहो, दोनों जांघोंमें पीड़ाहो, पाखानेके समय पानीमें डूबते हुए घड़ेकी तरह शब्द हो, खारे पानीके समान पानी गिरे, कोठोंमें जलघटीके समान ध्वनि हो ऐसे रोगको घटीयन्त्र नामक ग्रहणी रोग कहते है यह भी असाध्य माना गया है ॥ ४ ॥

ग्रहणी का आमपक्वलक्षण ।

दोषं सामं निरामं च विद्यादत्रातिसारवत् ॥ १८ ॥
लिङ्गैरसाध्यो ग्रहणीविकारो यैस्तैरतीसारगदो न सिध्येत् ।
वृद्धस्य नूनं ग्रहणीविकारो हत्वा तनूं नैव निवर्तते च ॥१९॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने ग्रहणीनिदानं समाप्तम् ॥ ४ ॥

यदि इसमें साम अथवा निरामकी मीमांसा करनी हो तो अतीसार-निदानमें बताए क्रमसे जल आदिमें डालकर परीक्षा कर लेनी चाहिए । जिन विकारोंसे अतीसार असाध्य होता है उन्हीं विकारोंके होने पर ग्रहणी भी असाध्य होजाया करती है। विशेष कर वृद्धको तो ग्रहणी मारही डालती है ॥ १८ ॥ १९ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने ग्रहणीनिदानम् ॥ ५ ॥

अथार्शरोगनिदानम् ।

अर्शरोग की संख्या तथा स्वरूप ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात्सहजानि च ।
अर्शांसि षट्प्रकाराणि विद्याद्गुदवलित्रये ॥ १ ॥

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन् ।
मांसाङ्कुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि तान् जगुः ॥ २॥

वातादिक तीनों दोषोंसे पृथक् पृथक् तीन प्रकारका अर्शरोग होता है और तीनोंको मिलाकर एक प्रकारका सन्निपातात्मक अर्श होता है । उसी तरह एक प्रकारका रक्तसे तथा एक प्रकार सहज यानी जन्मके साथही उत्पन्न होता है । सब मिल जुलकर अर्शरोग ६ प्रकारका होता है । यह रोग गुदा की त्रिवलीमें होता है और उन त्रिवलियोंके नाम इस प्रकार हैं:—प्रवाहिणी, सर्जनी तथा ग्रहणी । वात पित्त और कफ ये तीनों दोष त्वचा, मांस एवं मेदेको दूषित करके गुदामें अनेक प्रकार मांसके अंकुरोंको उत्पन्न कर दिया करते हैं और उन्हीं अंकुरोंकी अर्श (बवासीर) संज्ञा होती है । कभी कभी ऐसा भी देखा गया है कि ये अंकुर गुदाहीमें नहीं बल्के आंख, कान, नाक, लिंग तथा तोंदमें भी होते हैं । अंकुरके सिवा लोग इन्हें मसा भी कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

वातज अर्श के लक्षण ।

कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीतलघूनि च ।
प्रमिताल्पाशनं तीक्ष्णं मद्यं मैथुनसेवनम् ॥ ३ ॥
लङ्घनं देशकालौ च शीतौ व्यायामकर्म च ।
शोको वातातपस्पर्शो हेतुर्वातार्शसां मतः ॥ ४ ॥

कसैली, कड़वी, तीखी, रूखी, ठंढी एवं बहुत हलकी चीजें खानेसे, थोड़ा भोजन करने, ज्यादा गरम खाना खाने, बहुत तीखी मदिरा पीने, अधिक लंघन करने, ज्यादा मैथुन करने, ठंढे देशकाल में ज्यादा रहने, अधिक व्यायाम करने, किसी गम्भीर शोक के होने तथा ज्यादा ठंढी या गरमीके लगनेसे वातज अर्श रोग हुआ करता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

पित्तज के लक्षण ।

कट्वम्ललवणोष्णानि व्यायामाग्न्यातपप्रभाः ।
देशकालावशिशिरौ क्रोधो मद्यमसूयनम् ॥५॥

विदाहि तीक्ष्णमुष्णं च सर्वं पानान्नभेषजम् ।
पित्तोल्बणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुरर्शसाम् ॥ ६ ॥

कड़वी, खट्टी, नमकीन तथा बहुत गरम चीजें खाने पीनेके कारण, व्यायाम करने, घाममें या अग्निके समीप ज्यादा बैठने, अधिक परिश्रम करने, गरम प्रदेशमें अधिक रहने, अधिक क्रोध करने, शराब पीने, ईर्ष्या करने, जलन पैदा करनेवाली चीजें खाने, तीखे और गरम अन्न पान या दवा पीनेसे पित्त कुपित होकर अर्शरोग का उत्पादक होता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

कफज अर्शके लक्षण ।

मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च ।
अव्यायामो दिवास्वप्नः शय्यासनसुखे रतिः ॥ ७ ॥
प्राग्वातसेवाशीतौ च देशकालावचिन्तनम् ।
श्लैष्मिकाणां समुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम् ॥ ८ ॥

मीठी, चिकनी, ठंडी, नमकीन, खट्टा, तथा भारी चीजों के पीने या भोजन करने से, किसी प्रकार का व्यायाम न करनेसे, दिन में सोने से, ज्यादातर चरपाई पर पड़े रहने से, सवेरे के समय ठंडी हवाके सेवन करनेसे, अतिशय शीतवाले देशकालके सेवन करनेसे, कफ प्रकुपित होता और अर्शरोग को उत्पन्न करता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

द्वन्द्वज और सन्निपातात्मक अर्शके लक्षण ।

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वोल्बणानि च ।
सर्वो हेतुस्त्रिदोषाणां सहजैर्लक्षणं समम् ॥ ६ ॥

जिस रोगमें वात पित्त तथा पित्त कफके लक्षण दीखें उसको द्वन्द्वज अर्शरोग समझना चाहिए । जिसमें वात पित्त और कफ इन तीनोंके लक्षण पाये जायँ उसे सन्निपातात्मक अर्श समझे । उसी तरह जिसमें सहज अर्श रोगके समान लक्षण पाये जावें उसे भी सन्निपातात्मक अर्श जाने ॥ ६ ॥

वातज अर्श के लक्षण ।

गुदाङ्कुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमचिमान्विताः ।
म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विशदाः परुषाः खराः ॥१०॥
मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः ।
बिम्बीखर्जूरकर्कन्धूकार्पासीफलसन्निभाः ॥ ११ ॥
केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः ।
शिरःपार्श्वांसकट्यूरुवङ्क्षणाद्यधिकव्यथाः ॥ १२ ॥
क्षवथूद्गारविष्टम्भहृद्ग्रहारोचकप्रदाः ।
कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः ॥ १३ ॥
तैरार्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् ।
रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते ॥ १४ ॥
कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते ।
गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासंभवस्तत एव च ॥ १५ ॥

गुदामें निकले हुए अंकुर ज्यादा मोटे, सूखेहुए, चुनचुनाहटके साथ दर्दवाले, मुरझाये हुए, काले या लाल रंगवाले, कड़े मालूम होनेवाले, नुकीले, ऊपरकी ओर उठे हुए, खुरखुरे, छोटे बड़े, टेढ़े वेंढ़े, तीखे, मुँह खोले हुए, बिम्ब, बेर, खजूर तथा कपास के फल सदृश, कोई कदम्बके-फूलों जैसे, कोई कोई सरसोंके समान हुआ करते हैं । उनके होनेसे शिर, पसलियों, कन्धों, कमर, जाँघों और फिल्लियोंमें बहुत दर्द होता है । बार बार छींक और डकार आती तथा दस्त साफ नहीं होता । हृदय जकड़ जाता है, किसी चीजमें रुचि नहीं होती, श्वास तथा खाँसी आती रहती है अग्निके ठीक न रहने के कारण खाया हुआ अन्न भी नहीं पचता कानोंमें सनसनाहट होती और चक्कर भी आया करता है । बवासीर से दुःखित प्राणीके बहुत कराहने पर प्रवाहिका के समान फेन तथा चिकने झागसे मिला हुआ थोड़ा सा मल गिरता है । जिसके यह रोग होता है

उस का चमड़ा, नख, विष्टा, पेशाब, आँखें तथा मुख काले होजाया करते हैं। पेट में वायुगोला, पिलही तथा गुफरिया उत्पन्न होजाया करती है ॥ १०-१५ ॥

पैत्तिक अर्श के लक्षण ।

पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतासितप्रभाः ।
तन्वस्रस्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः श्लथाः ॥ १६ ॥
शुकजिह्वायकृत्खण्डजलौकोवक्त्रसन्निभाः ।
दाहपाकज्वरस्वेदतृण्मूर्च्छारुचिमोहदाः ॥ १७ ॥
सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः ।
यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वङ्नखादयः ॥ १८ ॥

पित्तके प्रकोपसे जायमान अर्शरोगमें गुदाके मसों का मुँह नीले रंग का होता है । उसमेंसे लाल पीला तथा काला खून गिरा करता और सड़े हुए अन्नके समान बदबू निकलती है । वे मसे भी छोटे छोटे और मुलायम हुआ करते हैं। सुग्गेकी जीभके समान अथवा यकृत्खण्ड की नाईं या जोंक के मुखकी तरह होते हैं और उनमें जलन होती है। वे पक जाते तो रोगी को ज्वर, पसीना, पिपासा, बेहोशी, अरुचि, मोह आदि उपद्रव होते हैं। मसे स्पर्श करनेसे गरम मालूम होते और गुदासे पतले, नीले, गरम, पीले, और लाल रंगके मल निकालते हैं । मसे यव के समान मध्यभागमें मोटे होते हैं । रोगीके नख, आँखें तथा त्वचा हड़ताल या हल्दी के समान पीले हो जाते हैं ॥ १६-१८ ॥

कफज अर्शके लक्षण ।

श्लेष्मोल्बणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः ।
उत्सन्नोपचितस्निग्धस्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः ॥ १९ ॥
पिच्छिलाः स्तिमिताः श्लक्ष्णाः कण्ड्वाढ्याः स्पर्शनप्रियाः ।
करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ॥ २० ॥

वङ्क्षणानाहिनः पायुवस्तिनाभिविकर्षिणः ।
सश्वासकासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः ॥ २१ ॥
मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः ।
क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविकारदाः ॥ २२ ॥
वसाभसकफप्रायपुरीषाः सप्रवाहिकाः ।
न स्रवन्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः ॥२३॥

कफके प्रकोपसे जायमान बवासीरके मसे भीतर बड़ी दूरतक जड़ बाँध लिया करते हैं, वे छूनेमें कड़े मालूम होते तथा थोड़ी थोड़ी पीड़ा भी करते रहते हैं, वे उजले, लम्बे, चिकने, खड़े तथा गोल होते और चारों ओर से गुदा को घेर कर उत्पन्न होते हैं। बहुत चिकने, स्तब्ध, मुलायम, खुजलाहट लिए हुए रहते और उन को छूनेमें बड़ा आनन्द आता है। मसे गायके स्तनकी तरह होते हैं, प्रत्येक जोड़ों तथा पसलियों, अण्डकोशों व गुदाकी बीचवाली नसों और नाभिको अपनी ओर खींचे रहते हैं। उनके होनेसे खांसी, श्वास, जीमें मिचलाहट तथा लार टपकने लगता है किसी वस्तुमें रुचि नहीं रहती और पीनस रोग भी होजाया करता है। प्रमेह, मूत्रकृच्छ्, मस्तकमें भारीपन, शीतज्वर, नपुंसकता, अग्निमान्द्य, वमन तथा आमसम्बन्धी अतीसार आदि रोगों को उत्पन्न करते हैं। इनके होनेसे वसाके समान कफसे मिला हुआ मल गिरता तथा प्रवाहिका भी होने लगती है, रक्त आदि नहीं टपकते न किसी प्रकारकी पीड़ाही होती है त्वचा, नख तथा आंखें पीली और चिकनी होजाती हैं॥ १९-२३॥

सान्निपातिक और सहज अर्श के लक्षण।

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानि च।

वात पित्त एवं कफ इन तीनोंके लक्षण जिसमें दीख पड़ें उसे सन्निपातात्मक बवासीर जानना चाहिए। सहज अर्शके भी यही लक्षण होते हैं क्योंकि वात पित्त तथा कफ इन तीनोंके दूषित होने पर ही स्वाभाविक

बवासीर होता है ।

रक्तार्श के लक्षण ।

रक्तोल्बणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः ॥ २४ ॥
वटप्ररोहसदृशा गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः ।
तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविट्कप्रपीडिताः ॥ २५ ॥
स्रवन्ति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः ।
भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षयसंभवैः ॥ २६ ॥
हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः ।
विट् श्यावं कठिनं रूक्षमधोवायुर्न वर्तते ॥ २७ ॥

रक्तकी प्रधानतावाले बवासीरके मसे पैत्तिक मसोंसे मिलते जुलते रहा करते हैं अथवा बरगदके अंकुरोंकी नाईं या घुँघचीकी तरह अथवा मूँगेके समान होते हैं और गाढ़े तथा गरम रुधिरको गिराते एवं पीड़ा भी देते हैं । उनसे बहुत खून बहनेके कारण मनुष्यके शरीरका रक्त नष्टप्राय होजाता इसीसे रोगीका रंग मेढककी तरह पीला होजाया करता है । अर्श रोगवालेका समस्त बल, रक्त, उत्साह तथा पराक्रम क्षीण होजाता और इन्द्रियां व्याकुल हो उठती हैं । विष्ठा कड़ी व रूखी होने लगती है और अपान वायु रुकजाया करता है ॥ २४–२७ ॥

वातादि भेद से रक्तार्श के लक्षण ।

तनु चारुणवर्णं च फेनिलं चासृगर्शसाम् ।
कट्यूरुगुदशूलं च दौर्बल्यं यदि चाधिकम् ॥ २८ ॥

वातदूषित रक्तप्रधान अर्शमें पतला, लाल रंगका कुछ फेना लिए हुए रक्त गिरता है, कमर, घुटना तथा गुदामें शूलसा कोंचता और शरीरमें दुबलता अधिक आजाया करती है । जब ऊपर लिखे हुए लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगें तब समझना चाहिए कि यह वातज रक्तार्श है ॥२८॥

तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदि च रूक्षणम् ।

शिथिलं श्वेतपीतं च विट् स्निग्धं गुरु शीतलम् ॥ २९ ॥
यद्यर्शसां घनं चासृक् तन्तुमत्पाण्डु पिच्छिलम् ।
गुदं सपिच्छं स्तिमितं गुरु स्निग्धं च कारणम् ।
श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयस्तत्र रक्तार्शसां बुधैः ॥ ३० ॥

जिस बवासीरमें पतला, सफेद, पीला, चिकना, भारी तथा ठंढा मल गिरे और मस्सोंमें से गाढ़ा रुधिर गिरे, उसमें सूतके समान कुछ दिखलाई देवे और सूत चिकना तथा उज्वल वर्णका हो, गुदामें कुछ चिकनापन बना रहे, वह स्तब्ध एवं भारीहो तो समझना चाहिए कि यह कफात्मक रक्तार्श है ॥ २९ ॥ ३० ॥

रक्तार्श के पूर्वरूप ।

विष्टम्भोऽन्नस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोप एव च ।
कार्श्यमुद्गारबाहुल्यं सक्थिसादोऽल्पविट्कता ॥ ३१ ॥
ग्रहणीदोषपाण्ड्वर्तेराशङ्का चोदरस्य च ।
पूर्वरूपाणि निर्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये ॥ ३२ ॥

वायुका रुकजाना, अङ्गोंमें दुर्बलताका आना, कोखमें गुड़गुड़ाहट होना, शरीरमें कृशता आना, जांघोंमें अत्यन्त दर्द होना, बहुत कांखने कूँखने पर थोड़ासा दस्त होना, ग्रहणी रोग तथा पाण्डु रोगके होनेकी आशंका होना ये सब अर्श रोगको बढ़ाने वाले पूर्वरूप हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अर्श के उपद्रव ।

पञ्चात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलित्रयम् ।
सर्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे ॥ ३३ ॥
तस्मादर्शांसि दुःखानि बहुव्याधिकराणि च ।
सर्वदेहोपतापीनि प्रायः कृच्छ्रतमानि च ॥ ३४ ॥

पूर्वोक्त गुदा की तीनों वलियोंमें जब अर्श होता है तो प्रत्येक वलियोंसे पाँच प्रकारके वायु कुपित हुआ करते हैं यानी पाँच वातसे पाँच पित्तसे

पाँच कफसे क्योंकि पाँच ही प्रकारके वायु रहते हैं अर्थात् प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान । प्राण वायु हृदयमें, अपान गुदामें, समान वायु नाभिमें उदानवायु कण्ठमें और व्यान वायु समस्त शरीरमें रहा करता है उसी प्रकार पित्त भी पाँच तरहके हैं चलक, रञ्जक, साधक, पाचक एवं भ्राजक । चलक नामवाला पित्त आँखोंमें, रञ्जक नामक पित्त पिल-ही एवं यकृत् में आमाशयमें पाचक नामवाला पित्त तथा भ्राजक पित्त शरीरकी त्वचामें रहता है। कफ भी पाँच ही तरहका होता है:—अवलम्बक, क्लेदन, बाधक, तर्पक, एवं श्लेष्मक। अवलम्बक नामवाला कफ हृदयमें, क्लेदन आमाशयमें, बाधक जीभमें, तर्पक मस्तकमें तथा श्लेष्मक सब स्थानों में रहता है । इन्हीं कारणों से अर्श रोग होने पर उपरोक्त तीनों दोष कुपित होकर प्राणीको बहुत क्लेश देते हैं और इसकी वजहसे कितने ही तरहके और रोग भी उत्पन्न होजाया करते हैं। इस रोगसे समस्त शरीरमें उपताप होता तथा बड़ी कठिनाई से इसका निवारण होता है ॥३३॥३४॥

अर्श के साध्य असाध्य भेद ।

अर्शसां प्रशमे यत्नमाशु कुर्वीत बुद्धिमान् ।
तान्याशु हि गुदं बद्ध्वा कुर्युर्बद्धगुदोदरम् ॥ ३५ ॥
बाह्यायां तु वलौ जातान्येकदोषोल्बणानि च ।
अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च ॥ ३६ ॥
द्वन्द्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च ।
कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥ ३७ ॥
सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरां वलिम् ।
जायन्तेऽर्शांसि संश्रित्य तान्यसाध्यानि निर्दिशेत् ॥३८॥
शेषत्वादायुषस्तानि चतुष्पादसमन्विते ।
याप्यन्ते दीप्तकायाग्नेः प्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा ॥ ३९ ॥

समझदार मनुष्यों को चाहिए कि इस रोगकी शान्तिके लिए पूर्ण प्रयत्न

करें क्योंकि यह बहुत जल्द बढ़ता तथा गुदाको चारों ओरसे घेर लेता है। यदि यह अंश केवल बाहरवाली वलीमें होता है और तीनों दोषों में से किसी एक दोषकी प्रधानता होती है, ज्यादा दिनोंका नहीं रहता तो सुखसाध्य होता है यानी यत्न करनेसे जल्दी आराम हो जाता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ दो दोषोंके कुपित होने पर जो अर्श दूसरी वलीमें हो अथवा एक वर्षका पुराना होजाय तो कष्टसाध्य है। जो जन्मके साथ साथ उत्पन्न हुआ हो, तीनों दोष कुपित हो गए हों और तीसरी वली तक फैल चुका हो इस प्रकारका अर्श असाध्य हुआ करता है ॥३७॥ ॥ ३८ ॥ अब असाध्यके दो भेद बतलाते हैं, एक याप्य, दूसरा प्रत्याख्येय। जिस रोगी की आयु शेष है और चारों पाद यानी रोगी, वैद्य, रोगी का सेवक और औषध ये चारों परिपुष्ट हैं तथा औदर्य अग्नि मन्द नहीं पड़ी है तो रोग याप्य है अर्थात् असाध्य रोग होकर भी रोगी जी सकता है। जिसमें ऊपर लिखी बातें ठीक न हों वह प्रत्याख्येय है यानी ऐसे रोगी का त्याग करना ही उचित है ॥ ३९ ॥

उपद्रव से असाध्यत्व।

हस्ते पादे मुखे नाभ्यां गुदे वृषणयोस्तथा।
शोथो हृत्पार्श्वशूलं च यस्यासाध्योऽर्शसो हि सः ॥४०॥
हृत्पार्श्वशूलं संमोहश्छर्दिरङ्गस्य रुग्ज्वरः।
तृष्णा गुदस्य पाकश्च निहन्युर्गुदजातुरम् ॥ ४१ ॥
तृष्णारोचकशूलार्तमतिप्रस्रुतशोणितम्।
शोथातिसारसंयुक्तमर्शांसि क्षपयन्ति हि ॥ ४२ ॥

जिस रोगी के हाथ, पैर, मुँह, नाभी, गुदा तथा दोनों वृषणोंमें सूजन उत्पन्न होजाय, हृदय तथा पसलियों में शूल उठने लगे ऐसे रोगी का रोग असाध्य होजाता है। जिसके हृदय और पसलियोंमें शूल हो, कभी कभी बेहोशी आजाया करे, कै हुआ करे, अङ्गोंमें पीड़ा हो, ज्वर भी आता रहे, प्यास ज्यादा लगे और गुदा पक जाय ऐसे रोगी को अर्शरोग मार ही डालता है। प्यास ज्यादा लगे, किसी वस्तुमें रुचि न हो जब तब

शूल उठती रहे दस्तके साथ खून जावे शोथ तथा अतीसारके लक्षण भी दिखाई देवें ऐसा अर्शरोग प्राणीको नष्ट करके ही दम लेता है ॥४०-४२॥

मेढ्रजादि अर्श के स्वरूप ।

मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यन्ते यथास्वं नाभिजानि च ।
गण्डूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च ॥ ४३ ॥

इसी प्रकार लिंग नाभि आदिमें भी केचुयेके मुखकी तरह चिकने और मुलायम मसे होते हैं उन्हें भी असाध्य समझना चाहिए ॥ ४३ ॥

चर्मकील की संप्राप्ति ।

व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः ।
कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं तु तद्विदुः ॥ ४४ ॥

व्यान वायु कफ को लेकर चमड़ेके ऊपर मसों को उत्पन्न कर दिया करता है । वे मसे कील की तरह मजबूत और खुरखुरे होते हैं उन्हीं को चर्मकील भी कहते हैं ॥ ४४ ॥

वातादि भेद से अर्श के लक्षण ।

वातेन तोदपारुष्यं पित्तादसितवक्त्रता ।
श्लेष्मणा स्निग्धता चास्य ग्रथितत्वं सवर्णता ॥ ४५ ॥

वात के कारण उन कीलों में पीड़ा तथा कड़कपन रहती है और पित्तके कारण उनका मुँह काले रंगका होता है, कफसे चिकना कड़ा और चमड़े के रंग का होता है ॥ ४५ ॥

(तैरेवोर्ध्वगतैर्दोषैः कर्णजार्शस्तु जायते ।
बाधिर्यं शूलमत्युग्रं सततं कर्णपूतिता ॥ १ ॥
नेत्रजेषु जलस्रावो वेदना चाप्यदर्शनम् ।
अश्रूणां जायते वर्त्मावरोधोऽर्शस्सु संततम् ॥ २ ॥
घ्राणजेषु प्रतिश्यायः कृच्छ्रोच्छ्वासः शिरोव्यथा ।
क्षवथुः पूतिवक्त्रं च वाक्यं स्यादनुनासिकम् ॥ ३ ॥

मुखार्शांसि तु च कण्ठौष्ठतालुमध्यैकजन्मसु ।
स्याच्चित् गद्गदवाक्यत्वं रसाज्ञानं मुखामयाः ॥ ४ ॥)

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदानेऽर्शोनिदानं समाप्तम् ॥ ५ ॥

जब वे दोष ऊपर आजाते हैं तो कर्णज अर्श हो जाता है। उसके होने से रोगी बहिरा होजाता, ज़ोरों से शूल उठने लगता और हमेशा कानों से बदबू निकलती रहती है। नेत्रज अर्श होने पर आँखों से पानी बहने लगता, पीड़ा होती, दर्शनशक्ति भी क्षीण हो जाती और आँसू बहा करता है। नाक में होने पर ज़ुकाम बना रहता साँस लेने में कठिनाई पड़ती सिर दुखा करता, छींक आती रहती मुख से दुर्गन्धि निकलती और आवाज नाक से निकला करती है। मुख में होने पर कण्ठ, ओंठ, तालु में छाले निकल आते, बातें गद्गद होकर निकलती, किसी चीज़ का स्वाद नहीं मिलता और मुँह में कई प्रकार की व्याधियाँ हो जाती हैं ॥ १-४ ॥

इति श्रीरामतेजपाण्डेयविरचितमञ्जुलाख्यभाषाटीकासमन्विते माधव-निदाने अर्शोनिदानम् ॥ ५ ॥

अथाग्निमान्द्यनिदानम् ।

अग्निमांद्य के भेद ।

मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः ।
कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः ॥ १ ॥

अग्नि चार प्रकार का होता है—मन्द, तीक्ष्ण, विषम एवं सम। कफ के आधिक्य में मन्द, पित्त की अधिकता में तीक्ष्ण, वायुके आधिक्य में विषम तथा वात—पित्त—कफ इन तीनों की समानता में अग्नि सम रहा करता है ॥ १ ॥

पूर्वरूप ।

विषमो वातजान् रोगान् तीक्ष्णः पित्तनिमित्तजान् ।

करोत्यग्निस्तथा मन्दो विकारान् कफसंभवान् ॥ २ ॥

विषम अग्नि वातज रोगों को, तीक्ष्ण अग्नि पित्त से उत्पन्न होनेवाले रोगों को तथा मन्द अग्नि कफ से जायमान होने वाले रोगोंको उत्पन्न करता है । मधुकोश टीका में लिखा है कि वायु से उत्पन्न होनेवाले रोगों की संख्या ८० पित्तज रोगों की ४० तथा कफसे उत्पन्न होनेवाले रोग २० प्रकार के होते हैं* ॥ २ ॥

समा समाग्नेरशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते ।
स्वल्पाऽपि नैवमन्दाग्नेर्विषमाग्नेस्तु देहिनः ॥ ३ ॥
कदाचित्पच्यते सम्यक्कदाचिन्न विपच्यते ।

सम अग्नि से उचित आहार बराबर पचजाता है किन्तु मन्दाग्नि (अजीर्णरोग) वाले का आहार बिल्कुल नहीं पचता, विषम अग्निवाले पुरुष का आहार कभी अच्छी तरह पच जाता है कभी नहीं ॥ ३ ॥

मात्राऽतिमात्राऽप्यशिता सुखं यस्य विपच्यते ।
तीक्ष्णाग्निरिति तं विद्यात्समाग्निः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ४ ॥

जिस प्राणी की मात्रा अधिक हो या कम हरहालत में पच जाती हो उसको तीक्ष्णाग्नि कहते हैं लेकिन ऊपर कहे सब अग्नियों में समाग्नि श्रेष्ठ है॥४॥

(अतिमात्रमजीर्णेऽपि गुरु चान्नमथाश्नतः ।
दिवाऽपि स्वपतो यस्य पच्यते सोऽग्निरुत्तमः ॥)

(गरिष्ठ पदार्थों के ज्यादा खालेने और दिन में सोने पर भी जिसका अन्न पच जाय वह अग्नि सब से उत्तम है ।)

अजीर्ण के लक्षण ।

आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः ।
अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषतः ॥ ५ ॥

---

* इस का विशेष विवरण देखना हो तो चरक के सूत्रस्थान का २० वाँ अध्याय देखिए ।

अजीर्णं पञ्चमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च ।
वदन्ति षष्ठं चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम् ॥ ६ ॥

पूर्वोक्त कफ, पित्त तथा वायु इन तीनों की प्रधानता में क्रमशः आम, विदग्ध, विष्टब्ध तीन तरह का अजीर्ण होता है। कुछ लोगों की राय है कि भोजन के साररहित हो जाने पर एक चौथे प्रकार का अजीर्ण होता है। कुछ लोग कहते हैं कि चाहे निर्दोष ही हो लेकिन जो अन्न दिन भर में पचे वह भी एक प्रकार का पाँचवाँ अजीर्ण है, जिसमें स्वभावतः अजीर्ण बना रहे वह छठाँ अजीर्ण है ॥ ५ ॥ ६ ॥

अजीर्ण के कारण।

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च संधारणात्स्वप्नविपर्ययाच्च ।
कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥७॥
ईर्ष्याभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन ।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक्परिपाकमेति ॥ ८ ॥

अधिक जल पीने, समय पर भोजन न करने, मलमूत्र आदि को रोकने, दिन में सोने एवं रात्रि में जागरण करने से चाहे मनुष्य परिमित या थोड़ा ही भोजन करे लेकिन वह नहीं पचता। भय अथवा क्रोध से अभिभूत और लोभ, रोग एवं दीनता युक्त प्राणी को भोजन नहीं पचता और उसका भी अन्न नहीं पचा करता जो किसी से ईर्ष्या करता है ॥७॥८॥

अजीर्ण के लक्षण।

तत्रामे गुरुतोत्क्लेदः शोथो गण्डाक्षिकूटगः ।
उद्गारश्च यथाभुक्तमविदग्धः प्रवर्तते ॥ ९ ॥

अंगों में भारीपन, बारबार उबकाई आना, गालों और आंखों में शोथ उत्पन्न होना, जिस प्रकार का अन्न खाया हो उसी तरह की डकार आते रहना ये सब आमाजीर्ण के लक्षण हैं ॥ ९ ॥

विदग्धे भ्रमतृण्मूर्च्छाः पित्ताच्च विविधा रुजः ।

उद्गारश्च सधूमाम्लः स्वेदो दाहश्च जायते ॥ १० ॥

पित्ताधिक्य से जायमान विदग्धाजीर्ण में तबीयत अकुलाती, प्यास ज्यादा लगती, कभी कभी मूर्च्छा आजाती, अनेक प्रकार के रोगों की आशंका होती और धुवांइध तथा खट्टी डकार आया करती है ॥ १० ॥

विष्टब्धे शूलमाध्मानं विविधा वातवेदनाः ।
मलवाताप्रवृत्तिश्च स्तम्भो मोहोऽङ्गपीडनम् ॥ ११ ॥
(ग्लानिर्गौरविष्टम्भभ्रममारुतमूढताः ।
विबन्धश्चाप्रवृत्तिश्च सामान्याजीर्णलक्षणम् ॥
रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे ।)

वाताधिक्य से उत्पन्न विष्टब्धाजीर्ण से पेट में शूल सा चुभता है, पेट फूला रहता, वात रोग की और भी आपत्तियां घेरे रहतीं, मल ठीकसे नहीं उतरता और हवा भी नहीं खुलती, प्रायः सब अंग जकड़ जाते हैं, कभी बेहोशी आजाया करती तथा अंग प्रत्यंगमें वेदना होने लगती है ॥ ११ ॥ (मनमें ग्लानि होती, शरीर भारी होजाता, मलमूत्र ठीकसे नहीं उतरता, वातके प्रकोपसे कभी कभी मनुष्य पागल के समान ऊटपटांग बकने भी लगता है इत्यादि लक्षण समान्याजीर्णके हैं जब रस शेष रहने के कारण अजीर्ण होता है तो सब चीजों में अरुचि होजाती हृदयमें घबड़ाहट के साथ मिचलाहट होती और शरीर भारी मालूम होता है ॥)

उपद्रव ।

मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः ।
उपद्रवा भवन्त्येते मरणं चाप्यजीर्णतः ॥ १२ ॥

मूर्च्छा, प्रलाप, बार बार वमन होना, मुँहमे पानी भरना, अपनेको ग्लानि होना, चक्कर आना, ये उपद्रव अजीर्णके हैं इनके होने पर प्राणी नहीं बचता ॥ १२ ॥

विशेष कारण ।

अनात्मवन्तः पशुवद्भुञ्जते येऽप्रमाणतः ।

रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि ॥ १३ ॥

जो लोग इन्द्रियों को काबूमें न रखकर जो पाते वही ठूँसते जाते हैं उन्हें सब रोगोंका समूह अथवा मूलकारण यह अजीर्णरोग प्राप्त हुआ करता है ॥ १३ ॥

विष्टब्धादिभेद

अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धं च यदीरितम् ।
विसूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका ॥ १४ ॥

ऊपर कहे आमाजीर्ण, विष्टब्धाजीर्ण अथवा विदग्धाजीर्णसे क्रमशः विषूची, अलसक तथा विलम्बिका ये तीन रोग हुआ करते हैं ॥ १४ ॥

विषूचिकाका पूर्वरूप

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् संतिष्ठतेऽनिलः ।
यत्राजीर्णेन सा वैद्यैर्विसूचीति निगद्यते ॥ १५ ॥
न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः ।
मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः ॥ १६ ॥

जब अजीर्ण के कारण वायु पेटमें सुई की तरह चुभता हुआ रुक जाता है तो उसी को अच्छे वैद्य विषूची कहते हैं । जो लोग आयुर्वेदमें लिखे नियमोंके अनुसार परिमित भोजन करते हैं उन्हें यह विषूची रोग कभी नहीं होता । यह तो उन्हीं को होता है जो अजितेंद्रिय हैं, अच्छा भोजन पाकर दूना तिगुना खा लिया करते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

विषूचिका के लक्षण ।

मूर्च्छाऽतिसारो वमथुःपिपासा शूलो भ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः ।
वैवर्ण्यकम्पौ हृदये रुजश्च भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः ॥१७॥

मूर्च्छा आना, अतीसार होना, वमन करना, बार बार प्यास लगना, पेट में शूल उठना, चित्तमें भ्रम होना, अंगोंका ऐंठना, जंभाई आते रहना, शरीरमें जलन होना, देहका रंग बदल जाना, काँपना, हृदयमें वेदना

होना, सिर फटने लगना, ये सब लक्षण विपूची (हैजा) के हैं ॥ १७ ॥

अलसक के लक्षण ।

कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्येत्परिकूजति ।
निरुद्धो मारुतश्चैव कुक्षावुपरि धावति ॥ १८ ॥
वातवर्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं भवेदपि ।
तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारौ च यस्य तु ॥ १९ ॥
(प्रयाति नोर्ध्वं नाधस्तादाहारो न विपच्यते ।
आमाशयेऽलसीभूतस्तेन सोलसकः स्मृतः ॥)

पेट तन जाता है, उस में घलघलाहट होने लगती है, वायु रुक कर वार वार ऊपर की ओर दौड़ता है, उस समय न तो मल उतरता है न वायु ही, पेट फूलते फूलते गले तक फूलजाता है, प्यास ज्यादा लगती है, वमन भी होने लगता है, डकारें आने लगती हैं, जब ये लक्षण दिखाई दें तो समझ लेना चाहिए कि यह अलसक है ॥ १८ ॥ १९ ॥ (जो कुछ खाया जाता वह न तो ऊपर जाता है न नीचे और न पचता ही है । वह अलस हो कर आमाशय में रुक जाता है इसी लिए उस की अलसक संज्ञा है ।)

विलंबिका के लक्षण ।

दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्तते नोर्ध्वमधश्च यस्य ।
विलम्बिकां तां भृशदुश्चिकित्स्यामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः ॥२०॥

कफ और वात से दूषित आहार ऊपर नीचे कहीं भी नहीं जाने पाता और न वमन द्वारा ही निकलता है । इस प्रकार के रोग को प्राचीन और अनुभवी वैद्य विलंबिका कहते हैं । इसकी चिकित्सा बड़ी कठिनाई से होती है ॥ २० ॥

आम के कार्य ।

यत्रस्थमामं विरुजेत्तमेव देशं विशेषेण विकार

दोषेण येनावततं शरीरं तल्लक्षणैरामसमुद्भवैश्च ॥ २१ ॥
(अविपक्वमसंयुक्तं दुर्गन्धं बहु पिच्छिलम् ।
सदानं सर्वगात्राणामाममित्यभिधीयते ॥)

वात और कफके दोषसे आमअन्न जिस जगह रुक जाता वहाँ ही दुखने लगता या उसी स्थान पर फोड़ा फुन्सीके रूपमें बाहर निकल आया करता है ॥ २१ ॥ (जो न पकनेके कारण दुर्गन्ध युक्त अथवा चिकना हो और उसीके कारण सब अंग लिपट जायँ उसको आम कहते हैं ।)

विपूची और अलसक का असाध्यत्व ।

यः श्यावदन्तौष्ठनखोऽल्पसंज्ञो वम्यर्दितोऽभ्यन्तरयातनेत्रः ।
क्षामस्वरः सर्वविमुक्तसन्धिर्यायान्नरः सोऽपुनरागमाय ॥ २२ ॥

जब दाँत, होंठ तथा नाखून काले पड़जायँ, अपना आपा भूलजाय, बार बार वमन करनेसे क्लेश हो, आँखें धँस जायँ, मुँहसे आवाज धीरे धीरे निकलने लगे, शरीर की सन्धियाँ ढीली होजायं तब समझना चाहिए कि अब रोगी किसी तरह नहीं बचेगा ॥ २२ ॥

जीर्णाहार के लक्षण ।

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः ।
लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ २३ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदानेऽग्निमान्द्याजीर्णविसूचिकालसक-विलम्बिकानिदानं समाप्तम् ॥ ६ ॥

शुद्ध डकार आने लगे, हृदयमें उत्साह हो, मलमूत्र ठीक से हो, पेट हल्का मालूम पड़े, भूख प्यास लगती रहे जब ये लक्षण दीख पड़ें तब समझ लीजिए कि खाया हुआ अन्न पच गया है ॥ २३ ॥

इति श्रीरामतेजपाण्डेयविरचितमञ्जुलाख्यभाषाटीकासमन्विते माधवनिदाने अग्निमान्द्यनिदानम् ॥ ६ ॥
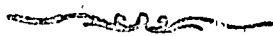
अथ क्रिमिनिदानम् ।

क्रिमि के भेद ।

क्रिमयश्च द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।
बहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः ॥ १ ॥
नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलोद्भवाः ।

क्रिमि दो प्रकारके होते हैं एक बाहरी और दूसरे भीतरी । बाहरी क्रिमि बाहरके मलसे उत्पन्न होते और भीतर वाले क्रिमि कफ, रक्त एवं विष्ठासे जायमान होते हैं उन कीड़ोंके चार भेद हैं । उनमें भी बाहरी कृमि बीस प्रकार के हुआ करते हैं ॥ १ ॥

बाह्य क्रिमिका विवरण ।

तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः ॥ २ ॥
बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूका लिक्षाश्च नामतः ।
द्विधा ते कोठपिडकाकण्डूगण्डान् प्रकुर्वते ॥ ३ ॥

उन दोनोंमें बाहरके कृमि जो मलसे उत्पन्न होते हैं वे तिलके समान काले सफेद और तिलके ही बराबर होते एवं सिर के केश या पहिनने के कपड़ोंमें रहा करते हैं। इनके छोटे २ कई पैर होते और लोग इन्हें जूँ या लीख कहते हैं । इनके काटने से शरीरमें खुजली होती और छोटी छोटी फुन्सियाँ निकल आती हैं । ये दो भेद हुए ॥ २ ॥ ३ ॥

निदान ।

अजीर्णभोजी मधुराम्लनित्यो द्रवप्रियः पिष्टगुडोपभोक्ता ।
व्यायामवर्जी च दिवाशयानो विरुद्धभुक् संलभते क्रिमींस्तु ॥ ४ ॥

अजीर्णमें भोजन करनेवालों, मीठा खट्टा खानेवालों, पतली चीजें पसन्द करनेवालों, पीठीसे बनी चीजें अथवा गुड़ खानेवालों, किसी प्रकार की कसरत न करनेवालों, दिनमें सोने वालों, विरुद्ध भोजन जैसे दूध मछली आदि एक साथ खानेवालोंके ही कीड़े होते हैं ॥ ४ ॥

विशेष निदानम् ।

माषपिष्टान्नलवणगुडशाकैः पुरीषजाः ।
मांसमत्स्यगुडक्षीरदधिशुक्तैः कफोद्भवाः ॥ ५ ॥
विरुद्धाजीर्णशाकाद्यैः शोणितोत्था भवन्ति हि ।

उड़द की पीठी, खट्टी चीजें, नमक, गुड, और शाक खानेसे पाखानेमें कीड़े उत्पन्न होते हैं । मांस, मछली, गुड़, दूध, दही तथा सिरका खानेके कारण कफज कृमि उत्पन्न हुआ करते हैं । विरुद्ध भोजन करनेसे, अजीर्ण अवस्था में खाने और शाकादि के भोजन करने से रक्तज कृमि होते हैं ॥ ५ ॥

आभ्यन्तर क्रिमिके लक्षण ।

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः ॥ ६ ॥
भक्तद्वेषोऽतिसारश्च संजातक्रिमिलक्षणम् ।

ज्वर आना, शरीर का रंग बदल जाना, पेटमें शूल होना, हृदयमें पीड़ा होना, वमन होना, घुमनी आना, कुछ खाने की इच्छा न होना, पतला दस्त आना, ये लक्षण उसके हुआ करते हैं जिसके पेटमें कृमि उत्पन्न होजाते हैं ॥ ६ ॥

कफजाक्रिमि के लक्षण ।

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः ॥ ७ ॥
पृथुब्रध्ननिभाः केचित्केचिद्गण्डूपदोपमाः ।
रूढधान्याङ्कुराकारास्तनुदीर्घास्तथाऽणवः ॥ ८ ॥
श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते ।
अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महागुदाः ॥ ९ ॥
चुरवो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते ।
हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम् ॥ १० ॥

मूर्च्छाच्छर्दिज्वरानाहकार्श्यक्षवथुपीनसान् ।

कफसे जायमान कीड़े पहले तो आमाशयमें बढ़ते फिर पेटमें इधर उधर रेंगने लगजाते है। उनमें कुछ ताँति की तरह, कुछ केंचुए के समान, कुछ धानके अंकुर की भाँति, कुछ बड़े बड़े कुछ छोटे और कुछ बहुतही पतले हुआकरते है। कोई सफेद, कुछ लाल रंगके होते हैं और उनके ये सात नाम हैं—अन्त्रद, उदरावेष्ट, हृदयाद, महागुद, चुरु, दर्भकुसुम और सुगन्ध। इनके उत्पन्न होने पर जी मिचलाने लगता, मुँहमें पानी भरने लगता, अजीर्ण रहता और खाने पीने की इच्छा नहीं रह जाती। मूर्च्छा आती कै होता ज्वर आने लगता, शरीर दुर्बल होजाता, छींकें ज्यादा आतीं और पीनस रोग भी होजाया करता है ॥ ७–१० ॥

रक्तजक्रमिके लक्षण ।

रक्तवाहिसिरास्थानरक्तजा जन्तवोऽणवः ॥ ११ ॥
अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः ।
केशादा रोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः ।
षट् ते कुष्ठैककर्माणः सहसौरसमातरः ॥ १२ ॥

रक्त संचालन करनेवाली नसोंमें रक्तसे छोटे २ कीड़े उत्पन्न होजाते हैं, उनके पैर नहीं होते, वे कुछ गोलाकार एवं ताम्र रंगके होते हैं, कुछ तो इतने छोटे रहते कि देखे भी नहीं जा सकते। उनके छ प्रकार हैं जैसे:—केशाद, लोमविध्वंस, रोमद्वीप, उदुम्बर, सौरस और माता। ये कीड़े अधिकतर कुष्ठ रोग को उत्पन्न करते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

पुरीषज क्रिमिकेलक्षण ।

पक्वाशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधोविसर्पिणः ।
प्रवृद्धाः स्युर्भवेयुश्च ते यदाऽऽमाशयोन्मुखाः ॥ १३ ॥
तदाऽस्योद्गारनिःश्वासा विड्गन्धानुविधायिनः ।
पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसितासिताः ॥ १४ ॥

ते पञ्च नाम्ना क्रिमयः ककेरुकमकेरुकाः ।
सौसुरादाः सशूलाख्या लेलिहा जनयन्ति हि ॥१५॥
विड्भेदशूलविष्टम्भकार्श्यपारुष्यपाण्डुताः ।
रोमहर्षाग्निसदनं गुदकण्डूर्विमार्गगाः ॥ १६ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने क्रिमिनिदानं समाप्तम् ॥ ७ ॥

जो कीड़े पक्वाशयके पुरीष (विष्ठा) में उत्पन्न होते वे मलके साथ साथ नीचे आजाया करते हैं, किन्तु ज्यादा बढ़ जाने पर वे आमाशयकी तरफ बढ़ने लगते हैं । उस हालतमें प्राणीको सांस लेने या डकार आने पर भीतरसे विष्ठाकी सी बदबू मालूम पड़ती है । वे कीड़े मोटे, गोल, लंबे, काले, पीले, सफेद और काले रंगके हुआ करते हैं उनके पांच नाम इस प्रकार होते हैं:—ककेरुक, मकेरुक, सौसुराद, सशूल और लेलिह । इनके उत्पन्न होने से ये उपद्रव हुआ करते हैं-दस्त पतली होती, पेटमें शूल उठने लगता, अजीर्ण बना रहता, शरीर दुर्बल होजाता, शरीरमें रूखापन रहता रंग पीला होता, रोंगटे खड़े रहते, उदरकी आग मन्द होजाती और गुदामें खुजली सी उत्पन्न होजाती है ॥ १३-१६ ॥

इति श्रीरामतेजपाण्डेयविरचितमञ्जुलाख्यभाषाटीकासमन्विते माधवनिदाने कृमिरोगनिदानम् ।

अथ पाण्डुरोगनिदानम् ।

पाण्डुरोग ।

पाण्डुरोगाः स्मृताः पञ्च वातपित्तकफैस्त्रयः ।
चतुर्थः सन्निपातेन पञ्चमो भक्षणान्मृदः ॥ १ ॥

पांडु रोग पांच प्रकारका होता है:—पहला वातसे, दूसरा पित्तसे, तीसरा कफसे, चौथा सन्निपातसे और पाँचवाँ मिट्टी खाने से ॥ १ ॥

पाण्डुरोग की सम्प्राप्ति ।

व्यायाममम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवास्वप्नमतीव तीक्ष्णम् ।
निषेवमाणस्य प्रदूष्य रक्तं दोषास्त्वचं पाण्डुरतां नयन्ति ॥२॥

ज्यादा स्त्रीप्रसंग करने, खट्टी चीजें और अधिक नमकीन वस्तु खाने, मदिरा पीने, मिट्टी खाने, दिनमें शयन करने और ज्यादातर तीखी चीजें खानेसे वात पित्तादि दोष रक्तको दूषित कर देते हैं, इसीसे शरीरका चमड़ा पीला पड़ जाता है, उसीको पाण्डुरोग कहते हैं ॥ २ ॥

पूर्वरूप ।

त्वक्स्फोटनष्ठीवनगात्रसादमृद्भक्षणप्रेक्षणकूटशोथाः ।
विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥३॥

जब यह रोग होने वाला होता तब शरीरकी त्वचा जहां तहां फट जाती, थुकथुकी आती, मनमें ग्लानि होती, बार बार मिट्टी खानेकी इच्छा होती, नेत्रकी पुतलियोंमें सूजन हो आती, मलमूत्र पीला पड़ जाता और भोजनकी तरफसे चित्त हट जाया करता है ॥ ३ ॥

वातजपाण्डुरोगके लक्षण ।

त्वङ्मूत्रनयनादीनां रूक्षकृष्णारुणाभता ।
वातपाण्ड्वामये तोदकम्पानाहभ्रमादयः ॥ ४ ॥

त्वचा, मूत्र और नेत्र रूखे हो जाते, इन सबों का रंग लाल व काला होजाता, शरीर कांपने लगता, पेट फूल जाता और चित्तमें भ्रम होने लगता है ये लक्षण वातज पाण्डुरोगके हैं ॥ ४ ॥

पित्तजपाण्डुके लक्षण ।

पीतमूत्रशकृन्नेत्रो दाहतृष्णाज्वरान्वितः ।
भिन्नविट्कोऽतिपीताभः पित्तपाण्ड्वामयी नरः ॥५॥

जिसको पित्तज पाण्डुरोग होता है उसके मूत्र, विष्ठा और आँखें पीली पड़जाती हैं । शरीर में जलन, तृष्णा तथा ज्वरके भी आसार

मालूम पड़ने लगते हैं । मल ढीला होजाता और शरीरका रंग बदल कर पीला होजाया करता है ॥ ५ ॥

कफज पाण्डु के लक्षण ।

कफप्रसेकश्वयथुतन्द्रालस्यातिगौरवैः ।
पाण्डुरोगी कफाच्छुक्लैस्त्वङ्मूत्रनयनाननैः ॥ ६ ॥

जिसको कफके प्रकोपसे पाण्डुरोग होता है उसके मुखसे कफ गिरने लगता, देह शोथ जाती, शरीर भारी होता और आलस्य तथा झपकी सी आया करती है । त्वचा, मूत्र, मुँह तथा आँखें सफेद रंग की हो जाया करती हैं ॥ ६ ॥

सान्निपातिक पाण्डुके लक्षण ।

ज्वरारोचकहृल्लासच्छर्दितृष्णाक्लमान्वितः ।
पाण्डुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो हतेन्द्रियः ॥ ७ ॥

उसी तरह सान्निपतिक पाण्डुरोगमें ज्वर, अरुचि, जी में मिचलाहट, वमन, तृष्णा, व्याकुलता, कमजोरी होती तथा इन्द्रियाँ शिथिल होजाती हैं । वैद्यों को चाहिए कि जिसमें इस प्रकारके लक्षण दिखाई दें ऐसे रोगी का परित्याग कर दें ॥ ७ ॥

मृज्ज पाण्डु की संप्राप्ति ।

मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो मलः ।
कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम् ॥ ८ ॥
कोपयेन्मृद्रसादींश्च रौक्ष्याद्भुक्तं च रूक्षयेत् ।
पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरुणद्ध्यपि ॥ ९ ॥
इन्द्रियाणां बलं हत्वा तेजो वीर्यौजसी तथा ।
पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम् ॥ १० ॥

जो मनुष्य मिट्टी खाकर पाण्डुरोग को बुलाता है उसके दोष अलग २ कुपित होते हैं जैसे कसैली मिट्टी खाने से वात, नमकीन मिट्टीसे पित्त तथा

श्वेतमृत्तिकाके खानेसे कफ कुपित हुआ करता है। वह मृत्तिका रसादिक धातुओंमें पहुँचकर उन्हें कुपित कर करके सुखा देती है। इसी कारण प्राणी जो भी खाता वह सब रूखा होताजाता है और वह मिट्टी कच्ची होने के कारण रोमकूप की सोताओं को भी ढाक लिया करती है। वह ही इन्द्रियों के बल, तेज, वीर्य और ओज को नष्ट करके तुरन्त बल, वर्ण तथा अग्नि को नाश करनेवाले पाण्डुरोग को जन्म देती है॥ ८-१० ॥

मृज्ज पाण्डु के लक्षण।

शूनाक्षिकूटगण्डभ्रूः शूनपान्नाभिमेहनः।
क्रिमिकोष्ठोऽतीसार्येत मलं सासृक्कफान्वितम्॥ ११ ॥

पाण्डुरोगके होजाने पर कोठोंमें क्रिमि उत्पन्न होजाते, आँखकी पुतलियाँ फूल जातीं, गाल, भौं, पावँ, नाभी तथा लिङ्गमें शोथ होजाता, रक्त और कफमिश्रित पतला मल बहने लगता है॥ ११ ॥

असाध्य पाण्डु रोग।

पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नः खरीभूतो न सिध्यति।
कालप्रकर्षाच्छूनानां यो वा पीतानि पश्यति॥ १२ ॥
बद्धाल्पविट्सहरितं सकफं योऽतिसार्यते।
दीनः श्वेतातिदिग्धाङ्गश्छर्दिमूर्च्छातृडर्दितः॥ १३ ॥
स नास्त्यसृक्क्षयाद्यश्च पाण्डुः श्वेतत्वमाप्नुयात्।
पाण्डुदन्तनखो यस्तु पाण्डुनेत्रश्च यो भवेत्॥ १४ ॥
पाण्डुसंघातदर्शी च पाण्डुरोगी विनश्यति॥ १५ ॥
अन्तेषु शूनं परिहीणमध्यं म्लानं तथाऽन्तेषु च मध्यशूनम्।
गुदे च शेफस्यथ मुष्कयोश्च शूनं प्रताम्यन्तमसंज्ञकल्पम्।
विवर्जयेत्पाण्डुकिनं यशोऽर्थी तथाऽतिसारज्वरपीडितं च॥१६॥

ज्यादा दिनका पुराना पण्डुरोग बड़ा भयानक होकर असाध्य होजाता है। जिस रोगी का शरीर ज्यादा समय से सोथा हो और

संसार की सब चीजें पीली ही पीली दिखाई दें। उसका भी रोग असाध्य है। जिसके कफमिश्रित हरा दस्त होता, पीड़ासे कराहता रहता है, आकृतिसे दीनता टपकती रहती, शरीरमें जहाँ तहाँ सफेद चकत्ते दिखाई देते, वमन मूर्च्छा तथा प्यासकी मात्रा अधिक होती है उसे भी असाध्य समझना चाहिए। जिस रोगी के रक्त नष्ट होनेके कारण शरीर सफेद रंग का होजाय, जिस के दाँत, नख तथा नेत्र पीले होजायँ और सब चीजें पीले रंगकी नजर आएँ इस प्रकारका पांडुरोगी भी नहीं बच सकता। जिसरोगी के हाथ, पाँव, जांघ आदि शोथ आएँ, शरीरका मध्यभाग सूख जाए वह भी असाध्य है। जिसके जाँघ आदि सूख जायँ और मध्यभाग यानी छाती पेट आदि शोथ जाएँ वह भी असाध्य है। जिसकी गुदा, लिंग और अण्डकोष में सूजन हो तथा दिन रात झपकी सी आती रहे, सुधि बुधि कुछ भी न रहे वह पाण्डुरोगी असाध्य है। जिस रोगी को पाण्डुरोग के साथ ज्वर और अतीसार का भी झमेला लगा रहे, यशके अभिलाषी वैद्य को चाहिए कि ऐसे रोगी को बिल्कुल त्याग दें क्यों कि वह किसी प्रकार सिद्ध नहीं होसकता ॥ १२–१६ ॥

कामला के लक्षण।

पाण्डुरोगी तु योऽत्यर्थं पित्तलानि निषेवते।
तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते ॥ १७ ॥
हारिद्रनेत्रः स भृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः।
रक्तपीतशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः ॥ १८ ॥
दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः।
कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रया मता ॥ १९ ॥

पाण्डुरोगी जब अतिशय पित्तवर्द्धक चीजें खा लेता है तब पित्त कुपित होता और उसके रक्त तथा मांस को जला कर कामला रोगको जन्म देता है। कामलारोगी के नेत्र हल्दी की तरह पीले पड़ जाते और त्वचा, नख तथा मुख भी उसी रंगका होजाता है। उसके रक्त, विष्ठा, मूत्र आदि बरसाती मेढक के समान पीले हो जाते हैं और सब इन्द्रियाँ भी

जवाब दे देती हैं । शरीरकी जलन अजीर्ण, दुर्बलता, ग्लानि, अरुचि आदि से दुखी रहता है । इस रोगमें पित्त की प्रधानता है, पहले तो यह कोठे में ही रहती पश्चात् उसकी शाखाएँ धीरे धीरे धातुओं पर भी अड्डा जमा लिया करती हैं ॥ १७–१९ ॥

कुम्भ कामला ।

कालान्तरात् खरीभूता कृच्छ्रा स्यात्कुम्भकामला ।

ऊपर कहा हुआ कामला बहुत पुराना होजाने पर बड़ा भीषण होकर कुम्भकामला का रूप धारण करलिया करता है । जिसका सिद्ध होना बहुत कठिन है ।

कामलाका असाध्य लक्षण ।

कृष्णपीतशकृन्मूत्रो भृशं शूनश्च मानवः ॥ २० ॥
सरक्ताक्षिमुखच्छर्दिर्विण्मूत्रो यश्च ताम्यति ।
दाहारुचितृडानाहतन्द्रामोहसमन्वितः ॥ २१ ॥
नष्टाग्निसंज्ञः क्षिप्रं हि कामलावान्विपद्यते ।

कामला तथा कुम्भ कामलावाले पुरुष का मल एवं मूत्र जब काला पीला मिश्रित रंग का हो, शरीरके अधिकांश अवयव शोथ आएँ, आँखें, मुँह, वमन, विष्ठा तथा मूत्र लाल रंग के होजायँ और हमेशा झपकी सी आती रहे, दाह, अरुचि, प्यास, पेट का तना रहना, झपकी और चित्तविभ्रम हमेशा मौजूद रहे, अग्नि ठण्ढी पड़ जाय, ऐसा रोगी कभी नहीं बचता ॥ २० ॥ २१ ॥

कुम्भकामलाका असाध्य लक्षण ।

छर्द्यरोचकहृल्लासज्वरक्लमनिपीडितः ॥ २२ ॥
नश्यति श्वासकासार्तो विड्भेदी कुम्भकामली ।

जिस रोगीको वमन हो, अरुचि रहाकरे, जी मिचलाये, ज्वर बना रहे, विना किसी प्रकार का परिश्रम किए थकावट मालूम हो, श्वास, कास के साथ पतला दस्त भी आया करे ऐसा रोगी तो जीता हुआ भी मुर्दा है यानी वह अवश्य मरजाता है ॥ २२ ॥

हलीमक के लक्षण।

यदा तु पाण्डोर्वर्णः स्याद्धरितः श्यावपीतकः॥ २३॥
बलोत्साहक्षयस्तन्द्रा मन्दाग्नित्वं मृदुज्वरः।
स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्च दाहस्तृष्णाऽरुचिर्भ्रमः।
हलीमकं तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः॥ २४॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने पाण्डुरोगकामलाकुम्भकामला-
हलीमकनिदानं समाप्तम्॥ ८॥

ऊपर कहे पाण्डुरोगवाले का रंग जब हरा, नीला, पीला पड़जाय बल और उत्साह नष्ट होजाय, झपकी आती रहे, उदरकी आग मन्द हो जाय, हमेशा मामूली ज्वर बना रहे, स्त्रीप्रसंग करने की इच्छा न हो, शरीर टूटता रहे, चित्तमें ग्लानि रहे, पिपासा लगती रहे, अरुचि और चित्तभ्रम रहा करे, ये लक्षण जिसमें दिखाई दें उसे हलीमक रोग समझना चाहिए। इसकी उत्पत्ति वात और पित्त से होती है॥ २३॥ २४॥

इति श्रीरामतेजपाण्डेयविरचितमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने
पाण्डुरोगनिदानम् समाप्तम्॥ ८॥

अथ रक्तपित्तनिदानम्।

निदान।

घर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरतिसेवितैः।
तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरम्लैः कटुभिरेव च॥ १॥
पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम्।
ततः प्रवर्तते रक्तमूर्ध्वं चाधो द्विधाऽपि वा॥ २॥
(आमाशयाद्व्रजेदूर्ध्वमधः पक्वाशयाद्व्रजेत्।
विदग्धयोर्द्वयोश्चापि द्विधा मार्गं प्रवर्तते॥)

ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः ।
कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्तते ॥ ३ ॥

अतिशय धूपसे, कसरत और शोक करने से, ज्यादा रास्ता चलने से बहुत स्त्रीप्रसंग करने के कारण, बहुत कड़वी, गरम, नमकीन, खट्टी एवं तीक्ष्ण चीजों के खाने से पित्त जल जाता और शरीर में रहनेवाले रक्तको गरम कर दिया करता है इसी लिए वह रुधिर ऊपर और नीचे दोनों भागोंसे बहने लगता है ॥ १ ॥ २ ॥ (रक्त आमाशय से, ऊपरको, पक्वाशयसे नीचेकी ओर एवं विदग्ध अवस्था में दोनों मार्गों से निकलता है) ऊपर भागमें नाक, आँख, कान, इनके द्वारा, नीचे लिङ्ग, गुदा तथा स्त्रीके भग और गुदा से बहता है। लेकिन जब यह बहुत ज्यादा मात्रा में कुपित होता तो शरीर के रोंगटों की जड़से भी बहने लगता है ॥ ३ ॥

पूर्वरूप ।

सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः ।
लोहगन्धिश्च निःश्वासो भवत्यस्मिन् भविष्यति ॥ ४ ॥

जब रक्तपित्त होनेवाला होता है तब हृदयमें ग्लानि होती, ठंढी चीजें ज्यादा पसन्द आतीं, गलेसे धुँवाइध सी आने लगती और जलते हुए लोहेके समान श्वाससे गन्ध निकलती है ॥ ४ ॥

कफज के लक्षण ।

सान्द्रं सपाण्डु सस्नेहपिच्छिलं च कफान्वितम् ।

जिस रक्तपित्तमें गाढ़ा, पीले रंगका, चिकना और लबाबदार रक्त निकलता हो उसे कफज रोग समझना चाहिए ।

वातज के लक्षण ।

श्यावारुणं सफेनं च तनु रूक्षं च वातिकम् ॥ ५ ॥

कुछ काले और लाल रंगसे मिश्रित, फेना लिए हुए, पतला एवं रूखा रुधिर जिसमें गिरे उसे वात से जायमान रक्तपित्त जाने ॥ ५ ॥

पैत्तिक रक्त पित्त के लक्षण ।

रक्तपित्तं कषायाभं कृष्णं गोमूत्रसंनिभम् ।
मेचकागारधूमाभमञ्जनाभं च पैत्तिकम् ॥ ६ ॥
संसृष्टलिङ्गं संसर्गात्त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ।

पित्तके प्रकोप से उत्पन्न रक्तपित्तमें गेरुये कपड़ेके रंग का रुधिर निकलता या काला, गोमूत्र की तरह पीला, मयूरपक्ष के समान रंग विरंग, जलते अंगारे की तरह लाल व धुएँ के समान या अञ्जन के रंगका रक्त बहता है जिसमें दो दोषोंके लक्षण दिखाई दें उसे द्वन्द्वज तथा तीनों दोषों के लक्षण मिलने पर सान्निपातिक रक्तपित्त कहना चाहिए ॥ ६ ॥

रक्तपित्त का मार्ग भेद ।

ऊर्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं पवनानुगम् ।
द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यामनुवर्तते ॥ ७ ॥

जब ऊपरके द्वार अर्थात् मुँह, नासिका, कान आदिके मार्गसे रक्त बहे उसको कफज रोग जाने । जिसमें निम्नमार्ग यानी गुदा, लिंग अथवा योनि से रुधिर बहता देखे उसे वातज रोग समझे और जिसमें ऊपर नीचे दोनों मार्गों से रुधिर बहे उसे कफ और वात इन दोनों से जायमान रोग समझे ॥ ७ ॥

मार्गभेद से साध्यासाध्यत्व ।

ऊर्ध्वं साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम् ।

ऊपरके द्वारोंसे रुधिर निकालनेवाला रक्तपित्त साध्य है, नीचे की राहों से निकालने वाला याप्य तथा द्वन्द्वज रक्त पित्त असाध्य हुआ करता है ।

साध्यत्व के हेतु ।

एकमार्गं बलवतो नातिवेगं नवोत्थितम् ॥ ८ ॥
रक्तपित्तं सुखे काले साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ।

यह रक्त किसी बलवान् मनुष्य के यदि केवल ऊपरी भाग से साधारण वेगके साथ कुछ ही दिनोंसे बहता हुआ होता है वह भी और ऋतुओंमें

नहीं हेमन्त शिशिर जैसी सुहावनी ऋतुओंमें उपद्रव रहित हो तो साध्य माना जाता है ॥ ८ ॥

दोष भेद से साध्यत्व ।

एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते ॥ ९ ॥
यत्त्रिदोषमसाध्यं स्यान्मन्दाग्नेरतिवेगवत् ।
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यानश्नतश्च यत् ॥ १० ॥

किसी एक दोषके साथ उत्पन्न होनेवाला रक्तपित्त साध्य तथा दो दोषों वाला कष्टसाध्य एवं तीन दोषोंके प्रकोपसे जायमान रक्तपित्त असाध्य होता है । यदि किसी मन्दाग्निवाले पुरुषके जोरोंके साथ रक्त बहने लगे वह भी असाध्य है या अनेक रोगोंसे जिसका शरीर गल गया हो, जो कमजोर अथवा वृद्ध या उपवास करनेवाला हो उसके लिए भी रक्त-पित्त असाध्यही हुआ करता है ॥ ९ ॥ १० ॥

उपद्रव ।

दौर्बल्यश्वासकासज्वरवमथुमदाः पाण्डुतादाहमूर्च्छा
भुक्ते घोरो विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा ।
तृष्णा कोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूतिनिष्ठीवनत्वं
भक्तद्वेषाविपाकौ विकृतिरपि भवेद्रक्तपित्तोपसर्गाः ॥ ११ ॥

कमज़ोरी, श्वास और खांसीका आना, ज्वरका रहना, बारबार उबकाई आना, देह पीली पड़ जाना, दाह, मूर्च्छा, खाना खानेके अनन्तर दाह होने लगना, घबड़ाना, हृदयमें पीड़ा होना, प्यास लगना, पतला दस्त होना, सिरमें जलन होना, दुर्गन्धित थूक निकलना, खाने पीनेमें अरुचि रहना, पाचनशक्तिका मन्द पड़ जाना और आकृति बिगड़ जाना, ये सब रक्तपित्तके उपद्रव हैं ॥ ११ ॥

असाध्य लक्षण ।

मांसप्रक्षालनाभं कुथितमिव च यत्कर्दमाम्भोनिभं वा
मेदःपूयास्रकल्पं यकृदिव यदि वा पक्वजम्बूफलाभम् ।

यत्कृष्णं यच्च नीलं भृशमतिकुणपं यत्र चोक्ता विकारा-
स्तद्वर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च तुल्यं विभाति ॥ १२॥

मांसधोवनके सदृश रक्तका रंग हो या काढ़ेकी भांति हो अथवा कीचड़ मिले पानीके रंगका हो अथवा मेद (चर्बी) तथा पीबमिश्रित रक्तके समान जिसका रंग हो, कलेजेके समान रंग हो, पकी जामुनके रंगका हो, काला और नीला हो या अतिशय दुर्गंधवाले मुर्देके समान जिसमें से बदबू निकले या इन्द्रधनुषके समान जिसमें अनेक रंगके रक्त दीखें, ऊपर जो लक्षण कहे गए हैं वे जिस रोगीमें दिखाई पड़ें वैद्यको चाहिए कि उसका परित्याग कर दे क्योंकि वे बिल्कुल असाध्य रोगके लक्षण हैं१२

येन चोपहतो रक्तं रक्तपित्तेन मानवः ।
पश्येद्दृश्यं वियच्चापि तच्चासाध्यमसंशयम् ॥ १३ ॥
लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः ।
लोहितोद्गारदर्शी च म्रियते रक्तपैत्तिकः ॥ १४ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने रक्तपित्तनिदानं समाप्तम् ॥ ९ ॥

जिस रक्तपित्त रोगवाले रोगी को आकाश तथा संसारकी सब चीजें लाल दिखाई दें उसे भी असाध्यही समझना चाहिए । जो रोगी लाल रंग का वमन करता हो, आंखें भी लाल होजायँ, जिसके डकारके साथही लहू निकलने लगे उसेभी असाध्य समझे, वह नहीं बच सकता ॥ १३ ॥ १४ ॥

इति श्रीरामतेजपाण्डेयविरचितमंजुलाख्यभाषाटीकासमन्विते माधवनिदाने रक्तपित्तनिदानम् ॥ ९ ॥

अथ राजयक्ष्मक्षयनिदानम् ।

राजयक्ष्मा के भेद ।

वेगरोधात् क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात् ।
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात् ॥ १ ॥

मल, मूत्र आदिके वेग रोकनेसे, अतिशय स्त्री प्रसंग करनेसे, धातु क्षीणता अधिक होजानेसे, शक्तिसे अधिक काम करनेसे, समय पर भोजन न करनेसे वात पित्तादि दोष दूषित होकर राजयक्ष्माको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

संप्राप्ति ।

कफप्रधानैर्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु ।
अतिव्यवायिनो वाऽपि क्षीणे रेतस्यनन्तराः ।
क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥ २ ॥

कफ आदि दोषोंके कुपित होनेसे रसके रास्ते रुक जाते हैं और रक्त संचालन करनेवाली नाड़ियां भी जवाब दे देती हैं । तब रुधिर इधर उधर कहीं न जाकर हृदयमें रुक जाता और वहां जलकर किसी रूपमें मुखसे निकलने लगता है । और अतिशय मैथुन करनेसे जब वीर्य शरीर में बिल्कुल नहीं रह जाता तब क्षय रोगकी उत्पत्ति होती है । क्योंकि वीर्यके नष्ट होनेसे उसके साथवाले छ रस भी शरीरमें नहीं रह जाते इससे देह सूख जाया करती है ॥ २ ॥

पूर्वरूप ।

श्वासाङ्गमर्दकफसंस्रवतालुशोष-
वम्यग्निसादमदपीनसकासनिद्राः ।
शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जन्तुः
शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः ॥ ३ ॥
स्वप्नेषु काकशुकशल्लकिनीलकण्ठा
गृध्रास्तथैव कपयः कृकलासकाश्च ।
तं वाहयन्ति स नदीर्विजलाश्च पश्ये-
च्छुष्कांस्तरून्पवनधूमदवार्दितांश्च ॥ ४ ॥

जब यह रोग होनेवाला होता है तो श्वास अधिक आता, अंग ढीला

होजाता, थुकथुकी आने लगती, तालु सूख जाता, अग्नि मन्द पड़जाती और हमेशा एक प्रकारका नशा सा चढ़ा रहता है। नाक अधिक बहने लगता है, पीनस रोगकी भी आशंका होती है। शोष रोगवालेकी आंखें सफेद होजाती और वार २ उसकी इच्छा मांस खाने और स्त्रीप्रसङ्ग करनेकी होने लगती है। वह मनुष्य स्वप्नमें देखता है कि मैं कौआ, तोता, साही, मयूर, गिद्ध, वानर तथा गिरगिट पर सवार हूँ। शोषरोगवाला स्वप्नमें देखता है कि नदियोंका पानी सूख गया है, जंगल सूख गए हैं, जोरोंसे आंधी चल रही है और वनोंमें आग लग गई है ॥ ३ ॥ ४ ॥

पूर्वरूपं प्रतिश्यायो दौर्बल्यं दोषदर्शनम् ।
अदोषेष्वपि भावेषु काये बीभत्सदर्शनम् ॥ ५ ॥
घृणित्वमश्नतश्चापि बलमांसपरिक्षयः ।
स्त्रीमद्यमांसप्रियता प्रियता चावगुण्ठने ॥ ६ ॥
मक्षिकाघुणकेशानां तृणानां पतनानि च ।
प्रायोऽन्नपाने केशानां नखानां चातिवर्धनम् ॥
पतत्रिभिः पतङ्गैश्च श्वापदैश्चाभिधर्षणम् ॥ ७ ॥

क्षयका पूर्वरूप इस प्रकार है–जुकाम होना, शरीर का निर्बल होजाना, देहमें कई प्रकारके दोषोंका दिखाई देना, दोषोंके अभावमें खुद अपनेको अपनी आकृति भयावनी मालूम पड़ना, भोजन करते समय घृणा मालूम होना, बल और मांसका गलना, स्त्रीप्रसंग और मद्य पीनेकी इच्छा होना, ज्यादा तर लोटनेमें तबीयत लगना, भोजनमें, मक्खी, घुन, केशों तथा तृणका गिरना, केश और नाखूनका ज्यादा बढ़ना, पक्षियों, फतिंगों तथा व्याघ्रादि जानवरोंसे लड़जाना ये सब उपद्रव हुआ करते हैं ॥ ५–७ ॥

लक्षण ।

अंसपार्श्वाभितापश्च संतापः करपादयोः ।
ज्वरः सर्वाङ्गगश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥ ८ ॥

कंधे और पसलियोंमें जलन होना, हाथ पैरमें ताप होना, सारे

शरीरमें सर्वदा ज्वरका बना रहना, ये सब राजयक्ष्माके लक्षण हैं ॥ ८ ॥

(भक्तद्वेषो ज्वरः श्वासः कासः शोणितदर्शनम् ।
स्वरभेदश्च जायेत षड्रूपं राजयक्ष्मणि ॥)

(भोजनमें रुचि न रहना, ज्वर, श्वास, कासका आते रहना, खांसीमें कफके साथ रुधिर दिखाई देना, आवाज़ बदल जाना, ये छ प्रकार राजयक्ष्माके हैं ।)

विशिष्ट लक्षण ।

स्वरभेदोऽनिलाच्छूलं संकोचोंऽसपार्श्वयोः ।
ज्वरो दाहोऽतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः ॥ ९ ॥
शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छन्द एव च ।
कासः कण्ठस्य चोध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः ॥ १० ॥

स्वर बदल जाना, पेटमें शूल उठा करना, कंधे और पसलियों का सिकुड़ जाना, ज्वरका आते रहना, शरीरमें दाह होना, ये दोष वायुके कुपित होने पर हुआ करते हैं । पित्तके दूषित होने पर अतिसार बना रहता और मुखसे रक्त गिरा करता है । उसी तरह कफके कुपित होने पर माथा भारी जान पड़ता, किसी चीजमें रुचि नहीं रहती, खांसी आया करती और आवाज़ बदल जाती है साथ ही ज्वर भी बना रहता है ॥ ९ ॥ १० ॥

असाध्य लक्षण ।

एकादशभिरेभिर्वा षड्भिर्वाऽपि समन्वितम् ।
कासातीसारपार्श्वार्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः ॥ ११ ॥
त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैः कासश्वासासृगामयैः ।
जह्याच्छोषार्दितं जन्तुमिच्छन् सुविमलं यशः ॥ १२ ॥

ऊपर कहे हुए ग्यारह दोषोंके अथवा खांसी, अतिसार, पसलियोंकी पीड़ा, स्वरभेद, अरुचि और ज्वर इन छ दोषोंसे युक्त अथवा ज्वर,

खांसी, रुधिर इन तीनोंसे युक्त जो रोगी हो, जिन वैद्योंको संसारमें विपुल-यशकी इच्छा हो वे ऐसे राजयक्ष्मावाले रोगीका परित्याग करदें ॥११॥१२॥

सर्वैरर्धैस्त्रिभिर्वाऽपि लिङ्गैर्मांसबलक्षये ।
युक्तो वर्ज्यश्चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा ॥ १३ ॥
महाशनं क्षीयमाणमतीसारनिपीडितम् ।
शूनमुष्कोदरं चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत् ॥ १४ ॥
शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् ।
कृच्छ्रेण बहुमेहन्तं यक्ष्मा हन्तीह मानवम् ॥ १५ ॥

यदि रोगी ऊपर लिखे समस्त लक्षण, आधे अथवा तीन उपद्रवोंसे ही युक्त हो और मांस तथा बल नष्ट होगया हो तो रोगको असाध्य समझना चाहिए। यदि उपर्युक्त समस्त दोष मौजूद हों लेकिन मांस और बल ज्यों का त्यों हो तो उस रोगीकी चिकित्सा करनी चाहिए॥१३॥ ज्यादा भोजन करने पर भी जो रोगी क्षीण होताजाय तथा अतीसार भी वर्तमान हो, पेट और पोता सोथ गया हो तो रोगीकी चिकित्सा न करे क्योंकि वह असाध्य माना गया है॥ १४ ॥ जिसकी आंखें सफेद होगई हों, खाने पीनेकी भी रुचि न रहे, सांस ऊपरको ही चलती रहे, बड़ी कठिनाई से पेशाब उतरे ऐसे रोगीको यक्ष्मा रोग मार डालता है॥ १५ ॥

चिकित्सा योग्य रोगी ।

ज्वरानुबन्धरहितं बलवन्तं क्रियासहम् ।
उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम् ॥ १६ ॥

जो रोगी ज्वरके दोषसे बचा हो, बल भी विद्यमान रहे, चिकित्साकी क्रियाओं को सह सकता हो, इन्द्रियोंकी शक्तियां क्षीण न हुई हों, अग्नि मन्द न पड़ा हो और देह दुर्बल न हुई हो ऐसे रोगीकी चिकित्सा करनी चाहिए॥ १६ ॥

राजयक्ष्मा के भेद ।

व्रणोरःक्षतसंज्ञौ च शोषिणौ लक्षणैः शृणु ॥ १७॥

अतिशय मैथुन करनेसे, किसी प्रकारके दारुण शोकसे, वृद्धतावश, अधिक व्यायाम करनेसे, ज्यादा रास्ता चलनेसे, ऊपरी घाव अथवा कलेजे के व्रणसे क्षयरोग उत्पन्न होता है और उनके लक्षण इस प्रकार होते है सुनो ॥ १७ ॥

मैथुनक्षयी के विशेष लक्षण ।

व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिङ्गैरुपद्रुतः ।
पाण्डुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः ॥ १८ ॥

अत्यन्त मैथुनसे जिसके क्षय रोग होता है उसके धातुक्षयसम्बन्धी समस्त उपद्रव मौजूद रहते हैं जैसे शरीरका पीला होजाना, लिङ्ग और अण्डकोषमें दर्द रहना, धातुका नष्ट होजाना आदि ॥ १८ ॥

शोकशोषी के लक्षण ।

प्रध्यानशीलः स्रस्ताङ्गः शोकशोष्यपि तादृशः ।

शोकके कारण उत्पन्न क्षयरोगवाले रोगीका शरीर शोकके कारण सूख जाता, चिन्ताकी मात्रा अधिक रहती और अंग ढीले पड़ जाते हैं ।

वार्धक्यशोषी के लक्षण ।

जराशोषी कृशो मन्दवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः ॥ १९ ॥
कम्पनोऽरुचिमान् भिन्नकांस्यपात्रहतस्वरः ।
ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनं गौरवारतिपीडितः ॥ २० ॥
संप्रस्रुतास्यनासाक्षिः शुष्करूक्षमलच्छविः ।

इस रोगके रोगीको धातुक्षयके अतिरिक्त समस्त लक्षण स्पष्ट दिखाई देते हैं वृद्धावस्थाके कारण उत्पन्न क्षय रोगसे रोगी दुर्बल होजाता है, वीर्य, बुद्धि, बल तथा इन्द्रियां मन्द पड़ जाती हैं, शरीरमें कम्प उत्पन्न होता है, सब प्रकारकी वस्तुओंमें रुचि रहती, फूटे कांसके कटोरे की जैसी ध्वनि होती और वैसी ही आवाज़ उसके गलेसे भी निकलती है, कफसे रहित थूक गिरता है, शरीर भारी होजाता और अरुचिसे पीडित रहा करता है, मुँह,

नाक और आंख बहती रहती है । मल सूख जाया करता तथा मुखकी कान्ति बिगड़ जाती है ॥ १९ ॥ २० ॥

अध्वशोषी के लक्षण ।

अध्वशोषी च स्रस्ताङ्गः संभृष्टपरुषच्छविः ॥ २१ ॥
प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः ।

रास्ता चलनेके कारण उत्पन्न क्षयरोगवालेके सब अंग ढीले होजाते हैं, मुँह पर झांई आजाती तथा रूखापन भी आजाया करता है । प्रत्येक अंग शून्यसे होजाते और हृदय गला तथा मुख सूख जाता है ॥ २१ ॥

व्यायामशोषी के लक्षण ।

व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः ।
लिङ्गैरुरःक्षतकृतैः संयुक्तश्च क्षतं विना ॥ २२ ॥

व्यायामके कारण उत्पन्न क्षयरोगवालेके भी वेही लक्षण होते हैं जो अध्वशोषीके कहे गए हैं । अधिक परिश्रमवाले रोगीके भी पूर्वोक्तही लक्षण होते हैं साथही वे लक्षण भी घटित होते हैं जो हृदयमें घाववालेके कहे गए हैं । विशेषता इसमें केवल यही रहजाती है कि इससे छातीमें घाव नहीं हुआ करता ॥ २२ ॥

व्रणशोषी के लक्षण ।

रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणात् ।
व्रणितस्य भवेच्छोषः स चासाध्यतमो मतः ॥ २३ ॥

रक्तके नष्ट होनेसे, किसी प्रकारकी व्यथासे, पर्याप्त भोजन न मिलनेसे घाव होजानेके कारण जिनको क्षयरोग होता है वह अतिशय असाध्य कहा गया है ॥ २३ ॥

उरःक्षतक्षय के निदान ।

धनुषाऽऽयस्यतोऽत्यर्थं भारमुद्वहतो गुरुम् ।
युध्यमानस्य बलिभिः पततो विषमोच्चतः ॥ २४ ॥
वृषं हयं वा धावन्तं दम्यं वाऽन्यं निगृह्णतः ।

शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान् क्षिपतो निघ्नतः परान् ॥२५॥
अधीयानस्य वाऽत्युच्चैर्दूरं वा व्रजतो द्रुतम् ।
महानदीर्वा तरतो हयैर्वा सह धावतः ॥ २६ ॥

धनुष आदिके खींचनेसे, हमेशा भारी बोझा ढोनेसे, अपनेसे प्रबल मनुष्यके साथ लड़नेसे, बहुत ऊँची अँटारी आदिसे गिरनेके कारण, भागते हुए बैल, घोड़ा, बछड़ा तथा ऊँट आदिके पकड़नेसे, पत्थर, लकड़ी तथा लोहे को जोरोंसे फेंकनेके कारण, किसीको मारनेसे, चिल्ला चिल्ला कर पढ़नेसे, अधिक दूर तक दौड़ मारनेके कारण, किसी बड़ी नदीको तैर कर पार करनेसे, घोड़ोंके साथ साथ दौड़ने से ॥ २४–२६ ॥

सहसोत्पततो दूरं तूर्णं वाऽपि प्रनृत्यतः ।
तथाऽन्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्य वा ॥ २७ ॥
विक्षते वक्षसि व्याधिर्बलवान् समुदीर्यते ।
स्त्रीषु चातिप्रसक्तस्य रूक्षाल्पप्रमिताशिनः ॥ २८ ॥
उरो विभज्यतेऽत्यर्थं भिद्यतेऽथ विरुज्यते ।
प्रपीड्यते ततः पार्श्वे शुष्यत्यङ्गं प्रवेपते ॥ २९ ॥
क्रमाद्वीर्यं बलं वर्णो रुचिरग्निश्च हीयते ।
ज्वरो व्यथा मनोदैन्यं विड्भेदाग्निवधावपि ॥ ३० ॥
दुष्टः श्यावः सुदुर्गन्धः पीतो विग्रथितो बहुः ।
कासमानस्य चाभीक्ष्णं कफः सासृक् प्रवर्तते ॥३१॥
स क्षती क्षीयतेऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसोः क्षयात् ।
अव्यक्तं लक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ ३२ ॥

किसी ऊँचे स्थानसे कूदनेके कारण, तीव्रगतिसे नाचनेके कारण अथवा और कोई क्रूरकर्म करनेसे, ज्यादा थक जानेसे, छातीमें चोट लगने, अधिक स्त्री प्रसंग करनेसे, रूखा सूखा और थोड़ा खानेसे छातीमें एक

प्रबल रोग की उत्पत्ति होती है उसी को उरःक्षत कहते हैं। इसके होनेसे छातीमें बड़ी पीड़ा होती और फटीसी मालूम होने लगती है अथवा ऐसा ज्ञात होता है कि मानों छातीके टुकड़े टुकड़े होगए हैं। पसलियाँ भी दुखने लगती हैं, अंग सूख जाते और काँपने लगते हैं। क्रमशः बल, वीर्य, वर्ण, रुचि एवं औदर्य अग्नि क्षीण होने लगती है। ज्वर भी होने लगता, शरीरमें पीड़ा होती, मनमें ग्लानि बनी रहती, पतला दस्त होने लगता और अग्नि बिल्कुल बुझ जाया करती है। खाँसीके साथ साथ दुष्ट, काला, दुर्गन्धियुक्त, पीले रंग का थाक बँधाहुआ कफ गिरता है। ऐसी अवस्था में रोगी बहुत दुर्बल होजाता और वीर्य तथा बलके नाश होनेसे उरःक्षत रोगका अस्पष्ट लक्षण दीखने लगता है। यह जो कुछ बतलाया है वह ही उरःक्षत का पूर्वरूप जानना चाहिए ॥ २७-३२ ॥

क्षतक्षीण का लक्षण।

उरोरुक् शोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकः क्षते।
क्षीणे सरक्तमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटीग्रहः ॥ ३३ ॥

इसके होने पर छातीमें व्यथा होने लगती खून का कै होता और खाँसीके साथ साथ एक विचित्र प्रकार का खून गिरा करता है। शरीरके दुर्बल होने पर पेशावके साथ ही खून गिरने लगता, पसलियां, और कमर तथा पीठ जकड़ जाया करती है ॥ ३३ ॥

साध्य लक्षण।

अल्पलिङ्गस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतो नवः।
परिसंवत्सरो याप्यः सर्वलिङ्गं तु वर्जयेत् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने राजयक्ष्मक्षतक्षीणानिदानं समाप्तम्।

जिस रोगीमें उरःक्षतके थोड़ेसे लक्षण दीखें, उदर का अग्नि मन्द न पड़े, रोगी दुर्बल न हुआ हो, रोग को हुए थोड़े ही दिन बीते हों ऐसे रोग को साध्य समझे। जिस रोगी को रोग एक वर्ष का पुराना होगया हो और रोगके लक्षण भी कम दिखाई दें तो उसे याप्य यानी कष्ट-साध्य जाने और जिसमें इस रोगके लिए कहे हुए सब लक्षण दिख

लाई देवें ऐसे रोगी का परित्याग कर देना चाहिए क्यों कि वह असाध्य रोग है ॥ २४ ॥

इति श्रीमाधवनिदाने भाषाटीकासहिते राजयक्ष्मनिदानम् ॥ १० ॥

अथ कासनिदानम् ।

कास का निदान और उसकी संख्या ।

धूमोपघाताद्रसतस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च ।
विमार्गगत्वाच्च हि भोजनस्य वेगावरोधात् क्षवथोस्तथैव ॥१॥
प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः स भिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः ।
निरेति वक्त्रात्सहसा सदोषो मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः ॥२॥
पञ्च कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः ।
क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥

मुँह या नाकमें धुआं पैठ जानेसे, अपनी सामर्थ्यसे ज्यादा बलकरनेसे, रूखे अन्नका भोजन करनेसे, जल्दी जल्दी भोजन करनेके कारण, मल मूत्रका निरोध करने तथा छींक रोकनेके कारण हृदयमें रहने वाला प्राण वायु दूषित होकर कंठस्थित उदान वायुसे मिल जाता एवं उसे भी दूषित कर देता है। ऐसी हालतमें पित्तके साथ कफ निकलने लगता और फूटे काँसके कटोरे के समान शब्द होजाता है। उसी को वैद्यगण कास (खाँसी) कहते हैं। खाँसी वात-पित्त-कफ-क्षय तथा क्षतसे उत्पन्न होती इसी लिए वह पाँच प्रकार की कही जाती है। यदि उत्पन्न होनेके साथ ही इसकी चिकित्सा न कीजाय तो बड़ा भीषणरूप धारण कर रोगी को नष्ट ही कर डाला करती है। उपर्युक्त पाँचों प्रकारों में एक दूसरे से प्रबल होते हैं जैसे-वातसे पित्त, पित्तसे कफ, कफसे क्षत और क्षतसे भी क्षय प्रबल हुआ करता है ॥ १-३ ॥

पूर्वरूप ।

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता ।

कण्ठे कण्डूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ॥ ४ ॥

जिस को यह रोग होनेवाला होता है उसके गलेमें कुछ काँटेकी तरह खरकने लगता है साथ ही खुजली सी होने लगती और भोजन किया हुआ अन्न भीतर नहीं जाने पाता ॥ ४ ॥

वातज कास के लक्षण ।

हृच्छङ्खमूर्धोदरपार्श्वशूली क्षामाननक्षीणबलस्वरौजाः।
प्रसक्तवेगस्तु समीरणेन भिन्नस्वरः कासति शुष्कमेव ॥ ५ ॥

वायुके प्रकोपसे जायमान खाँसीसे हृदय, कनपटी, पसलियों, उदर तथा मस्तकमें पीड़ा होने लगती है, मुँह सूखजाता, बल स्वर और ताकत नष्ट होने लगती, वायुके वेगसे सूखी खाँसी आती तथा स्वर भी फटासा होजाता है ॥ ५ ॥

पित्तज के लक्षण ।

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृषार्तः ।
पित्तेन पीतानि वमेत्कटूनि कासेत्सपाण्डुः परिदह्यमानः ॥६॥

पित्तके कुपित होने पर छाती जलने लगती, ज्वर आने लगता, मुँह सूखजाता और मुख तीता रहा करता है। प्यास भी खूब सताती, बार बार पित्त निकला करता रोगीका शरीर पीला पड़ जाता और अंग प्रत्यंग जलने लगजाते हैं ॥ ६ ॥

कफज के लक्षण ।

प्रलिप्यमानेन मुखेन सीदन् शिरोरुजार्तः कफपूर्णदेहः ।
अभक्तरुग्गौरवकण्डुयुक्तः कासेद्भृशं सान्द्रकफः कफेन ॥७॥

कफके प्रकोपसे उत्पन्न खाँसीमें मुँहसे लवाब सा निकलने लगता, हृदय में ग्लानि होती, सिर दुखने लगता और समस्त शरीर कफसे पूर्ण होजाताहै। किसी वस्तुमें रुचि नहीं रहती, देह भारी मालूम होती और कंठ में खुजली होने लगती तथा गाढ़े कफ को निकालती हुई जोरों की खाँसी आती है ॥ ७ ॥

क्षतजकास के लक्षण ।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजविग्रहैः ।
रूक्षस्योरःक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमाचरेत् ॥ ८ ॥
स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत्सशोणितम् ।
कण्ठेन रुजाऽत्यर्थं विरुग्णेनेव चोरसा ॥ ९ ॥
सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ।
दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना ॥ १० ॥
पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीडितः ।
पारावत इवाकूजन् कासवेगात् क्षतोद्भवात् ॥ ११ ॥

अधिक स्त्रीप्रसंग करने, ज्यादा बोझा उठाने, बहुत रास्ता चलने, कुश्ती लड़ने तथा हाथी और घोड़े से बल की आजमाइश करनेके कारण रूखे शरीरवाले मनुष्य का हृदय फट जाता और वायु कुपित होकर खाँसी को उत्पन्न कर दिया करता है। इस प्रकार क्षतज कासवाले रोगी को पहले तो सूखी खाँसी आती फिर थूकके साथ साथ रुधिर भी आने लगता है। कण्ठमें बड़ा दर्द होता, छाती फटने सी लगती और सुई की तरह भीतर ही भीतर कुछ चुभने लगता है। उस समय छाती को छूने में भी रोगी को कष्ट होता और उसे ऐसा जान पड़ता है मानों कोई फाड़ रहा है। शरीरके हर एक जोड़में पीड़ा होती, ज्वर आने लगता, साँस ऊपर को चलने लगती, प्यास ज्यादा मालूम होती, आवाज़ बिगड़ जाती, और रोगी कबूतर की बोली के समान कण्ठ से गूँ गूँ करने लगता है ॥ ८—११ ॥

क्षयज कास के लक्षण ।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात् ।
घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः ।
कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् ॥ १२ ॥

स गात्रशूलज्वरदाहमोहान् प्राणक्षयं चोपलभेत कासी ।
शुष्यन्विनिष्ठीवति दुर्बलस्तु प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् ।
तं सर्वलिङ्गं भृशदुश्चिकित्स्यं चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदन्ति ॥१३॥

क्षयसे उत्पन्न खाँसीमें रोगीके विषम तथा प्रतिकूल भोजन करने, अधिक स्त्री प्रसङ्ग करने, मलमूत्रका वेग रोकने, घृणित वस्तुओं की याद करने तथा अग्निके मन्द पड़जाने से वातपित्त-कफ ये तीनों दोष कुपित होकर क्षयी खाँसीको उत्पन्न करते हैं जो शरीर का नाश करनेवाली है । इस रोगवाले रोगीके प्रत्येक अंगमें पीड़ा होती पेटमें शूल उठता, ज्वर आता, जब तब बेहोशी आती और रोगी मर जाया करता है । वह शुष्क थूकता, शरीर दुर्बल होजाता, मांस, रुधिर और पीब आदि जलजाते हैं । इस प्रकारके लक्षण जिस रोगी में दीखें उसकी चिकित्सा करनी कठिन है इसी खाँसी को क्षयज खाँसी कहते हैं ॥ १२–१३ ॥

कास के असाध्य लक्षण ।

इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः ।
साध्यो बलवतां वा स्याद्याप्यस्त्वेवं क्षतोत्थितः ॥१४॥
नवौ कदाचित्सिद्ध्येतामपि पादगुणान्वितौ ।
स्थविराणां जराकासः सर्वो याप्यः प्रकीर्तितः ।
त्रीन् पूर्वान्साधयेत्साध्यान्पथ्यैर्याप्यांस्तु यापयेत् ॥१५॥
पूयाभमरुणं श्यावं हरितं नीलपीतकम् ।
निष्ठीवेच्छ्वासकासार्तो न जीवति हतस्वरः ॥ १६ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने कासनिदानं समाप्तम् ।

उपर्युक्त क्षयसे उत्पन्न होनेवाली खाँसी दुर्बल मनुष्य को तो मारही डालती है किन्तु बलवान् प्राणी के लिए साध्य और याप्य भी हुआ करती है । क्षतज और क्षयज खाँसी यदि नवीन हो और चिकित्सक भी अपनी विद्या में निपुण हो तो किसी तरह ये दो प्रकार की खाँसियाँ साध्य भी

होजावें किन्तु वृद्धके लिए तो याप्य ही होसकती है । पहले की यानी वात-पित्त-कफवाली तीन खाँसियाँ साध्य हैं अत एव चिकित्सा करे और याप्य को यथायोग्य औषध आदिसे दूर करने का उपाय करे । जो रोगी पीब के समान, लाल, काला, हरा, नीला, और पीले रंग का थूँक थूके और उसके कण्ठ से स्वर न निकले, खाँसी और श्वास से दुःखित होजाय ऐसा रोगी किसी तरह नहीं बच सकता ॥ १४-१६ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासमन्विते माधवनिदाने कासनिदानम् ॥ ११ ॥

अथ हिक्काश्वासनिदानम् ।

निदान ।

विदाहिगुरुविष्टम्भिरूक्षाभिष्यन्दिभोजनैः ।
शीतपानाशनस्थानरजोधूमातपानिलैः ॥ १ ॥
व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः ।
हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥ २ ॥

ज्यादा गरम चीजें भारी (देरमें पचने वाली) वादी चीजें, रूखी सूखी वस्तुयें या प्रकृतिके विपरीत चीजें खाने से, ठंडा पानी पीने से, ठंडा खाना खानेके कारण, ठंडे पानीमें नहानेसे, नाक और मुँहमें धूलि-या धुआँ भरजाने के कारण, हवाके झोंके लगने से, ज्यादा कसरत करने से, ज्यादा भार उठाने के कारण, ज्यादा रास्ता चलने से, मल मूत्र का वेग रोकनेसे, उपवास करनेसे प्राणियों को हिचकी आने लगती और दमा तथा खाँसी भी उभड़ जाया करती है ॥ १ ॥ २ ॥

हिक्का का स्वरूप ।

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो यकृत्प्लिहान्त्राणि मुखादिवाक्षिपन् ।
स घोषवानाशु हिनस्त्यसून्यतस्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः ॥ ३ ॥

जिस पुरुष को हिचकी का रोग होता है उसका प्राणवायु एक अव्यक्त शब्दके साथ बार बार ऊपरकी ओर चलने लगता तथा कलेजा,

प्लीहा और आँतोंको धक्का दे कर बाहर की तरफ निकालता है। यदि हि-चकी शब्दके साथ होती तो मनुष्य के प्राणों को हर लिया करती है इसी लिए पण्डित गण उस को हिक्का रोग कहा करते हैं ॥ ३ ॥

संप्राप्ति ।

अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा ।

वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति हि ॥ ४ ॥

वायु कुपित हो कफ के साथ मिलकर अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गम्भीरा तथा महती, इन पाँच प्रकारके की हिचकियों को उत्पन्न किया करता है ॥ ४ ॥

पूर्वरूप

कण्ठोरसोर्गुरुत्वं च वदनस्य कषायता ।

हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च ॥ ५ ॥

गला और छाती भारी होजाती, मुखमें कसैलापन रहता और पेट फूल जाया करता है। ये सब हिचकीके पूर्वरूप हुआ करते हैं ॥ ५ ॥

अन्नजा हिक्का के लक्षण ।

पानान्नैरतिसंयुक्तैः सहसा पीडितोऽनिलः ।

हिक्कयत्यूर्ध्वगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक्॥ ६ ॥

अधिक भोजन करने तथा जल पीनेसे सहसा वायु पीडित होकर ऊपर की ओर चलने लगता इसी लिए कण्ठ से "हिक-हिक" की आवाज़ आने लगती है। वैद्यों को चाहिए कि इन लक्षणों से युक्त हिचकी को अन्नजा हिचकी समझें ॥ ६ ॥

यमला हिक्का के लक्षण ।

चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का संप्रवर्तते ।

कम्पयन्ती शिरोग्रीवं यमलां तां विनिर्दिशेत् ॥ ७ ॥

जिसमें थोड़ी थोड़ी देर के बाद एक ही समय में वेग के साथ दो बार हिचकी आवे और सिर तथा गला काँपने लगे ऐसी हिका को यमला हिक्का समझना चाहिए ॥ ७ ॥

क्षुद्रा के लक्षण ।

प्रकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्तते ।
क्षुद्रिका नाम सा हिक्का जत्रुमूलात्प्रधाविता ॥ ८ ॥

जो मन्द वेग के साथ देर में आए उसको क्षुद्रा हिक्का कहते हैं । वह हिचकी हँसलियों से लेकर गले पर्यन्त बराबर दौड़ा करती है ॥ ८ ॥

गंभीरा के लक्षण ।

नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गम्भीरनादिनी ।
अनेकोपद्रववती गम्भीरा नाम सा स्मृता ॥ ९ ॥

जो नाभि से उठकर गम्भीर शब्द के साथ आती है । उसमें कई उपद्रव मिले जुले होते हैं । ऐसी हिक्का की गम्भीरा संज्ञा है ॥ ९ ॥

महती के लक्षण ।

मर्माण्युत्पीडयन्तीव सततं या प्रवर्तते ।
महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगात्रविकम्पिनी ॥ १० ॥

जो मर्मस्थान यानी नाभि, बस्ति तथा हृदय को क्लेशित करती हुई हमेशा आती रहती और सब अंगों को हिला देती है वह महती हिक्का कही जाती है ॥ १० ॥

हिक्का के असाध्य लक्षण ।

आयम्यते हिक्कतो यस्य देहो दृष्टिश्चोर्ध्वं नाम्यते यस्य नित्यम् ।
क्षीणोऽन्नद्विट् क्षौतियश्चातिमात्रं तौ द्वौ चान्त्यौ वर्जयेद्धिक्कमानौ ॥
अतिसंचितदोषस्य भक्तच्छेदकृशस्य च ।
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवायिनः ॥ १२ ॥

हिचकियाँ आने के कारण जिसका शरीर तन जाय और आँखें ऊपर को ही उठी रहैं, शरीर दुर्बल होजाय, कुछ खाने पीने की रुचि न रहे, बार बार छींकें आती हों ऐसे अन्त्य की अर्थात् गंभीरा और महती नामक हिक्कावाले रोगी को त्याग देना चाहिए क्यों कि वे दोनों असाध्य हैं । जिसके बहुत से दोष एकत्रित हो गए हों, खाने पीने की रुचि बिल्कुल

न रहे, अनेक रोगों के होने से देह दुर्बल होगई हो, रोगी वृद्धावस्था का हो या मैथुन अधिक करता हो, ऐसे प्राणियों को यदि सहसा हिचकी आने लगे तो समझ लेना चाहिए कि वह किसी तरह नहीं बचेगा ॥११॥ ॥१२॥

आसां या सा समुत्पन्ना हिक्का हन्त्याशु जीवितम् ।
यमिका च प्रलापार्तिमोहतृष्णासमन्विता ॥ १३ ॥
अक्षीणश्चाप्यदीनश्च स्थिरधात्विन्द्रियश्च यः ।
तस्य साधयितुं शक्या यमिका हन्त्यतोऽन्यथा ॥१४॥

ऊपर कही हुई यमिका (यमला) हिचकी आने पर रोगी यदि ऊट-पटांग बकने लगे, शरीरमें पीड़ा हो, बेहोशी आजाय, प्यास लगे तो उसे असाध्य समझना चाहिए । जो रोगी दुर्बल न हुआ हो, चित्त प्रसन्न रहे, धातु स्थिर हो और इन्द्रियां अपना अपना काम कर रही हों वह यमिका नामवाली हिचकीसे बच सकता है यानी वह उसके लिए साध्य है किन्तु इसके प्रतिकूल लक्षणवालेके लिए असाध्य ही है ॥ १३ ॥ १४ ॥

श्वास के भेद ।

महोर्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा ।
भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥ १५ ॥
(वातेन क्षुद्रकः श्लेष्मभूयिष्ठस्तमकः स्मृतः ।
छिन्नः पित्तप्रधानः स्यादन्यौ मारुतकोपजौ ॥)

वह महान् रोग महा, ऊर्ध्व, छिन्न, तमक और क्षुद्र इन नामोंसे पांच प्रकारका होता है । यद्यपि श्वास रोग एकही है किन्तु उस के पांच भेद बतलाये गए हैं ॥१५॥ (जिसमें वायुका अधिक जोर हो वह क्षुद्रक, कफका वेग जिसमें अधिक हो वह तमक, जिसमें पित्तकी प्रधानता हो वह छिन्न और वायुके प्रकुपित होने पर महा एवं ऊर्ध्व श्वास हुआ करता है ।)

संप्राप्ति ।

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा शूलमाध्मानमेव च ।
आनाहो वक्त्रवैरस्यं शङ्खनिस्तोद एव च ॥ १६ ॥

जब श्वास उत्पन्न होनेवाला होता है तो हृदय में पीड़ा होती, पेटमें शूल उठता या तना सा रहता है । मुँहका स्वाद बिगड़ जाता और कनपटियोंमें पीड़ा होने लगतीहै ॥ १६ ॥

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः ।
विष्वग्व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान् करोति सः ॥१७॥

जब कफके साथ वायु कुपित होकर शरीरके स्रोतोंको रोक देता और स्वयं भी रुक कर शरीरमें चारों ओर दौड़ने लगता है तब श्वासकी उत्पत्ति होती है ॥ १७ ॥

महाश्वास के लक्षण ।

उद्धूयमानवातो यः शब्दवद्दुःखितो नरः ।
उच्चैः श्वसिति संरुद्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ॥ १८ ॥
प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रान्तलोचनः ।
विवृताक्ष्याननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥ १९ ॥
दीनः प्रश्वसितं चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम् ।
महाश्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव विपद्यते ॥ २० ॥

जिस रोगीका शब्दयुक्त श्वास ऊपरको ही चलता रहे, खांसनेके समय पीड़ा हो, मतवाले बैलकी तरह ऊँचा श्वास लिया करे, जिसका ज्ञान विज्ञान बिल्कुल नष्ट हो गया हो, आंखें इधर उधर नाचती सी रहें, नेत्र तथा मुँह खुला ही रहे, मल मूत्रका वेग रुक जाय, आवाज़ फटी सी निकले, ज़ोरों के साथ श्वास चले और उसकी घुरघुराहट दूरसे ही सुनाई देती रहे, इसको महाश्वास कहते हैं इस रोगवाला रोगी बहुत जल्दी मर जाता है ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

ऊर्ध्वश्वास के लक्षण ।

ऊर्ध्वं श्वसिति यो दीर्घं न च प्रत्याहरत्यधः ।
श्लेष्मावृतमुखस्रोताः क्रुद्धगन्धवहार्दितः ॥ २१ ॥

ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंस्तु विभ्रान्ताक्ष इतस्ततः ।
प्रमुह्यन् वेदनार्तश्च शुष्कास्योऽरतिपीडितः ॥ २२ ॥
ऊर्ध्वश्वासे प्रकुपिते ह्यधःश्वासो निरुध्यते ।
मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्ध्वं श्वासस्तस्यैव हन्त्यसून् ॥ २३ ॥

जिस रोगीका श्वास ऊपरको खिंचता हो लेकिन नीचे नहीं उतरता हो मुँह कफसे भरा तथा शरीरकी नसें कुपित वायुके द्वारा रुँध गई हों, जिसकी दृष्टि ऊपरको ही रहे और ऊपर ही ताके या घवराहटसे आंखें इधर उधर नचाता रहे, बार २ पीड़ा उठती रहे, कभी कभी वेहोशी सी आजाया करे, मुख सूखा रहे तो समझना चाहिए कि यह ऊर्ध्व श्वासका रोगीहै। ऊर्ध्व श्वासके प्रकुपित होने पर नीचेका श्वास रुक जाता अत एव रोगी मूर्च्छित हो जाताहै ऐसे समयमें ऊर्ध्व श्वास रोगीको नष्ट कर डालता है ॥ २१-२३ ॥

छिन्नश्वास के लक्षण ।

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः ।
न वा श्वसिति दुःखार्तो मर्मच्छेदरुगर्दितः ॥ २४ ॥
आनाहस्वेदमूर्छार्तो दह्यमानेन बस्तिना ।
विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन् रक्तैकलोचनः ॥ २५ ॥
विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः ।
छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ॥२६॥

यदि रोगी रह रह कर श्वास ले, समस्त प्राणों से दुःखित हो, किसी असह्य वेदना से दुःखित रहने के कारण श्वास भी लेने में असमर्थ हो, हृदय मानों फटा सा जाता हो इस प्रकार की पीड़ा रहे, पेट फूल जाय, पसीना आवे, जब तब मूर्च्छित होजाया करता हो, पेट में जलन होती रहे, आँखों में पानी भर आए और वे नाचती रहें, शरीर दुर्बल हो जाय, श्वास लेते समय कभी कभी एक नेत्र लाल हो जाय, होश ठिकाने न रहे, मुँह सूख जाय, आकृति बिगड़ जाय, रोगी अनाप सनाप बकता रहे इसे

छिन्न श्वास कहते हैं और इस रोग वाला रोगी शीघ्र मर जाया करता है२६

तमक श्वासके लक्षण ।

प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते ।
ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ २७ ॥
करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा ।
अतीव तीव्रवेगं च श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥ २८ ॥
प्रताम्यति स वेगेन तृष्यते सन्निरुध्यते ।
प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ॥ २९ ॥
श्लेष्मण्यमुच्यमाने तु भृशं भवति दुःखितः ।
तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्तं लभते सुखम् ॥ ३० ॥
तथाऽस्योद्ध्वंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम् ।
न चापि लभते निद्रां शयानः श्वासपीडितः॥ ३१ ॥
पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः ।
आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनन्दति॥ ३२ ॥
उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्तिमान् ।
विशुष्कास्यो मुहुः श्वासो मुहुश्चैवावधम्यते ॥ ३३ ॥
मेघाम्बुशीत प्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्धते ।
स याप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥३४॥

जिस समय वायु गले और सिर को जकड़ कर कफ को उभाड़ता हुआ लौट कर नाड़ियों में पहुंचता है तो नाक में पीनस रोग हो जाता तथा गला घुरघुराने लगता है । उस अवस्था में पवन बड़े वेग के साथ प्राणनाशक श्वास को प्रबल मात्रा में चलाने लगता है । उस समय रोगी विशेष तवाँने लगता, भयभीत हो जाता और श्वास भी रुक रुक कर आने लगता है । खाँसते खाँसते रोगी बार बार मूर्छित हो जाया

करता खाँसने के समय जब कफ आता तो बड़ा क्लेश होता और कफ के निकल जाने पर हृदय को थोड़ी देर के लिए शान्ति मिलती है। हमेशा रोगी की साँस ऊपर को ही चलती इस लिए बोलने में भी बड़ी कठिनाई होती है। श्वास से पीड़ित होने के कारण लेटे रहने पर भी नींद नहीं आती। लेटने से उसकी पसलियां जकड़ जाया करती हैं अत एव बैठे रहने में ही उसकी आत्मा को शान्ति मिलती और गर्म चीज़ें ही ज्यादा तर उसे पसन्द आती हैं। आँखें ऊपर को ही उठी रहतीं, रोगी सिर की पीड़ा से बहुत बेचैन रहा करता है। मुँह सूखा रहता, बार बार श्वास आता और देह हिला डुला करती है। यह रोग अधिकांश में बरसात के समय पानी बरसने पर या पुरवाई हवा लगने पर ज्यादा ज़ोर पकड़ता है। यह तमकनामवाला श्वास रोग नया हो तो साध्य हो जाता किन्तु पुराना होने पर याप्य और साध्य दोनों होता है॥ २९-३४॥

प्रतमक श्वासके लक्षण।

ज्वरमूर्च्छापरीतस्य विद्यात्प्रतमकं तु तम्।
उदावर्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः॥ ३५॥
तमसा वर्धतेऽत्यर्थं शीतैश्चाशु प्रशाम्यति।
मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्संतमकं तु तम्॥ ३६॥

यदि ज्वर तथा मूर्च्छा भी आने लगे तो वह ही तमकश्वास प्रतमकश्वास होजाया करता है और श्वास के ऊपर चढ़जाने, धूल आदि के नाक में घुसजाने, अजीर्ण होने, ज्यादा भीगने तथा मलमूत्र का वेग रोकने के कारण इस रोग की वृद्धि हुआ करती है। तमोगुण की अवस्था में यह बढ़ता और शीतल वस्तुओं से शान्त होता है। रोगी को मालूम होता है कि संसार में चारों तरफ अंधेरा है और मैं उसमें डूब रहा हूँ। ये लक्षण प्रतमकश्वास के हैं॥ ३५॥ ३६॥

क्षुद्रश्वास के लक्षण।

रूक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रो वात उदीरयन्।
क्षुद्रश्वासो न सोऽत्यर्थं दुःखेनाङ्गप्रबाधकः॥ ३७॥

हिनस्ति न स गात्राणि न च दुःखाय यथेतरे ।
न च भोजनपानानां निरुणद्ध्युचितां गतिम् ॥३८॥
नेन्द्रियाणां व्यथां नापि कांचिदापादयेद्रुजम् ।
स साध्य उक्तो बलिनः सर्वे चाव्यक्तलक्षणाः ॥३९॥
क्षुद्रः साध्यो मतस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते ।
त्रयः श्वासा न सिद्ध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च ॥४०॥

अतिशय रूखा पदार्थ खाने और ज्यादा परिश्रम करने के कारण एक साधारण पवन ऊपर को उठता है उसी की क्षुद्रश्वास संज्ञा है । यह रोगी के अंगों को अधिक दुःख नहीं देता और न उनको तोड़ता ही है । इसमें उतना कष्ट भी नहीं होता जितना और श्वासों में होता है । यह श्वास अन्न पानादि के मार्गों को भी नहीं रोकता यह क्षुद्रश्वास इन्द्रियों को भी किसी प्रकारका कष्ट नहीं देता और न कोई रोगही उपजाता है । किसी बलवान् पुरुष को यदि हो तो साध्य होता है क्योंकि इसके सारे लक्षण साध्यही हुआ करते हैं । उपर्युक्त श्वासों में क्षुद्रश्वास अत्यन्त साध्य और तमक कृच्छ्रसाध्य होता है किन्तु बाकी ऊर्ध्वश्वासादि तीन श्वास असाध्य हुआ करते हैं ॥ ३७–४० ॥

श्वास की उत्कर्षता ।

कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा ।
यथा श्वासश्च हिक्का च हरतः प्राणमाशु च ॥ ४१ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने हिक्काश्वासनिदानं समाप्तम् ॥ १२ ॥

यद्यपि प्राण लेने वाले और कई रोग भी कहे हैं लेकिन श्वास और हिचकी ये दोनों जिस तरह प्राण हरते हैं वैसा और कई रोग नहीं ॥४१॥

इति श्रीरामतेजपाण्डेयविरचितमञ्जुलाख्यभाषाटीकासमन्विते माधवनिदाने हिक्काश्वासनिदानम् ॥ १२ ॥

अथ स्वरभेदनिदानम् ।

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघात-
संदूषणैः प्रकुपिताः पवनादयस्तु ।
स्रोतःसु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां
हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥ १ ॥

ज़ोर ज़ोर भाषण करने, विषभक्षण करने, ज्यादा ऊँचे स्वर से अध्ययन करने, किसी प्रकार की चोट लगने से वातपित्तादि दूषित होजाते और स्वरको निकालनेवाली नाड़ियों में जाकर स्वर भंग कर दिया करते हैं। वह स्वरभेद छ प्रकार का हुआ करता है॥ १ ॥

वातज स्वरभेद ।

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा भिन्नं शनैर्वदति गर्दभवत् खरं च।

वातसे जायमान स्वरभेद में आँखें, मुँह, मूत्र तथा मल काले रंगके होजाया करते हैं। फटे हुए स्वरसे रोगी गदहे के समान रेंकता है।

पैत्तिक स्वरभेद ।

पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्चा ब्रूयाद्गलेन च दाहसमन्वितेन ॥२॥

पैत्तिक विकार से उत्पन्न स्वरभंग में मनुष्य के नेत्र, मुख, तथा मलमूत्र पीतवर्ण के होजाया करते हैं और बोलते समय गले में जलन पैदा होजाती है॥ २ ॥

श्लैष्मिक स्वरभेद ।

ब्रूयात्कफेन सततं कफरुद्धकण्ठः
स्वल्पं शनैर्वदति चापि दिवा विशेषात् ।

कफके प्रकोप से उत्पन्न स्वरभेद में रोगी का गला रुँध जाता है, केवल दिन के समय थोड़ा बोलता है।

त्रिदोषज स्वरभेद ।

सर्वात्मके भवति सर्वविकारसंप-
त्तं चाप्यसाध्यमृषयः स्वरभेदमाहुः ॥ ३ ॥

त्रिदोषके प्रकोपसे उत्पन्न स्वरभेदमें वात पित्त तथा कफ, इन तीनों के लक्षण स्पष्ट मालूम पड़ते हैं । अतएव पूर्वज ऋषियोंने इस स्वरभेदको असाध्य रोग मानाहै ॥ ३ ॥

क्षयज स्वरभेद के लक्षण ।

धूप्येत वाक् क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च
वागेष चापि हतवाक् परिवर्जनीयः ।

क्षयके प्रकोपसे जायमान स्वरभेदमें रोगीके बोलते समय मुँहसे धुवां सा निकलता, धातुक्षीण होता और बातें करते समय आवाज़ नष्ट हो जाया करतीहै । वैद्योंको चाहिए कि ऐसे रोगीका परित्याग करदें ॥

मेदोज स्वरभेद के लक्षण ।

अन्तर्गतस्वरमलक्ष्यपदं चिरेण
मेदोऽन्वयाद्वदति दिग्धगलस्तृषार्तः ॥ ४ ॥

मेदसे जायमान स्वरभेदमें रोगीकी आवाज़ बड़ी देरमें निकलती सो भी साफ नहीं मालूम पड़ती । गलेमें मेद (चर्बी) रुक जाताहै इससे प्यास ज्यादा लगती और आवाज़ नहीं निकलती ॥ ४ ॥

असाध्यत्व ।

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य वाऽपि चिरोत्थितो यश्च सहोपजातः ।
मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो यो न स सिद्धिमेति ॥ ५ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने स्वरभेदनिदानं समाप्तम् ॥ १३ ॥

क्षीण, वृद्ध, दुर्बल, ज्यादा पुराना अथवा जन्मके साथ रोगवाले, ज्यादा चर्बीवाले रोगी का या तीनों दोषोंके कोपसे जायमान स्वरभेद रोग असाध्य हुआ करताहै ॥ ५ ॥

इति श्रीरामतेजपाण्डेयविरचितमञ्जुलाख्यभाषाटीकासमन्विते
माधवनिदाने स्वरभेदनिदानम् ॥ १३ ॥

अथारोचकनिदानम् ।

निदान ।

वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगन्धैः ।
अरोचकाः स्युः—

वात पित्तादि दोषोंके प्रकोप, शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध, घृणित भोजन, रूप, गन्ध, इन्हींसे इस अरोचक रोगकी उत्पत्ति होतीहै ।

वातज पित्तज तथा कफज के लक्षण ।

परिहृष्टदन्तः कषायवक्त्रश्च मतोऽनिलेन ॥१॥
कट्वम्लमुष्णं विरसं च पूति पित्तेन विद्याल्लवणं च वक्त्रम्
माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यविबद्धसंबद्धयुतं कफेन ॥२॥

उनमें वायुके प्रकोपसे उत्पन्न अरोचकमें दांत खट्टे होजाते तथा मुखमें कसैलापन रहा करताहै । पित्तज अरोचकमें कड़वा, खट्टा, गरम, नीरस एवं दुर्गन्ध युक्त मुँह होजाया करताहै । कफसे उत्पन्न अरोचकमें, खारा, मीठा, फेनादार, भारी, ठंढा, बँधा भया कफ मुँहमें भरा रहताहै ॥ १ ॥ २ ॥

आगन्तुज और त्रिदोषज ।

अरोचके शोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्याशुचिगन्धजे स्यात् ।
स्वाभाविकं चास्यमथारुचिश्च त्रिदोषजे नैकरसं भवेत्तु ॥ ३ ॥

शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध आदि तथा घिनौनी वस्तुओंके कारण जो अरोचक होताहै उसमें मुख जैसेका तैसा रहताहै और सन्निपातसे उत्पन्न अरोचकमें मुँहका स्वाद एक प्रकारका न रह कर कभी कड़वा, कभी मीठा और कभी कसैला हुआ करताहै ॥ ३ ॥

विकार ।

हृच्छूलपीडनयुतं पवनेन पित्ता-
त्तृड्दाहचोषबहुलं सकफप्रसेकम्

श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिश्च विद्या-
द्वैगुण्यमोहजडताभिरथापरं च ॥ ४ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदानेऽरोचकनिदानं समाप्तम् ॥ १४ ॥

पवनके कुपित होने पर जो अरोचक होता उससे हृदयमें शूल उठा करता पित्तज अरोचकमें प्यास लगती, शरीरमें जलन होती और पेट चुभता है। कफके कोपसे उत्पन्न अरुचिमें मुखसे कफ गिरता रहता और सान्निपातज अरोचकमें शरीर अधिक दुखता, तबीयत घबड़ाती और मोह, जड़ता आदि उपद्रव हुआ करते हैं ॥ ४ ॥

इति श्रीरामतेजपाण्डेयविरचितमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते
माधवनिदाने अरोचकनिदानम् ॥ १४ ॥

अथ छर्दिनिदानम् ।

निदान ।

दुष्टैर्दोषैः पृथक् सर्वैर्बीभत्सालोचनादिभिः ।
छर्दयः पञ्च विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते ॥ १ ॥
अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरति ।
अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥ २ ॥
श्रमाद्भयात्तथोद्वेगादजीर्णात् क्रिमिदोषतः ।
नार्याश्चापन्नसत्त्वायास्तथाऽतिद्रुतमश्नतः ॥ ३ ॥
बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्लेशितो बलात् ।
छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः ।
निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावितः ॥ ४ ॥

वात पित्त आदि दोषों के एक एक कर के कुपित होने पर या मिल कर दूषित होने से, किसी घिनौनी चीज को देखने के कारण पांच

प्रकार का छर्दि (कै) रोग उत्पन्न होता है। उनका लक्षण बतलाते हैं। बहुत पतले, ज्यादा स्निग्ध, तबीयत के खिलाफ कोई वस्तु खा लेने से, नमकीन, विना समय के भोजन, ज्यादा परिमाण के भोजन, जो चीज न पचती हो उसे जानबूझ कर खाने से, थकावट, भय, उद्वेग, अजीर्ण तथा कृमिदोष के कारण, गर्भिणी स्त्री को जब कि सन्तान होने का समय नजदीक हो उस समय, जल्दी जल्दी भोजन करने से अथवा किसी घृणित वस्तुको देख लेने पर मनुष्य को उबकाई आती और वह रोगी के मुँह, गले और मल को आच्छादित कर लिया करता है। उससे अङ्ग टूटने लगता एवं मुख का मल गिरने लगता है, इसी को लोग छर्दि अथवा वमन कहते हैं॥ १-४॥

पूर्वरूप।

हृल्लासोद्गाररोधौ च प्रसेको लवणस्तनुः।
द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम्॥ ५॥

वमन होने के पूर्व मुँह में पानी छूटने लगता, डकार रुक जाती, थोड़ा खारा लार टपकने लगता, पसीना भी होने लगता, कुछ खाने पीने की इच्छा नहीं रह जाती, ये ही वमन के पूर्वरूप हुआ करते हैं॥ ५॥

वातज छर्दि के लक्षण

हृत्पार्श्वपीडामुखशोषशीर्षनाभ्यर्तिकासस्वरभेदतोदैः।
उद्गारशब्दप्रबलं सफेनं विच्छिन्नकृष्णं तनुकं कषायम्।
कृच्छ्रेण चाल्पं महता च वेगेनार्तोऽनिलाच्छर्दयतीह दुःखम्॥ ६॥

वायु के दूषित होने से उत्पन्न वमन में हृदय और पसलियाँ दुखने लगतीं, मुँह सूख जाता, मस्तक तथा नाभी में पीड़ा होने लगती, खाँसी आती, स्वरभेद हो जाता, और शरीर में बर्छी से कोंचने के समान दर्द होने लगा करताहै। कै करते समय गले से जोरों के साथ शब्द निकलने लगता, वान्त में मुँह से जो गिरता वह कुछ फेना लिए होता है। कै बराबर न होकर थोड़ी थोड़ी देर में होता, मुख से जो कुछ दोष निकलता वह कसैला होता है। जब कै होती तो प्राणी को अतिशय क्लेश हुआ करता है॥ ६॥

पैत्तिक छर्दिके लक्षण

मूर्च्छापिपासामुखशोषमूर्धताल्वक्षिसन्तापतमोभ्रमार्तः ।
पीतं भृशोष्णं हरितं सतिक्तं धूम्रं च पित्तेन वमेत्सदाहम् ॥७॥

यदि पित्त के प्रकोप से वमन होता तो प्राणी को बेहोशी आती, पिपासा लगा करती, मुँह सूख जाता, शिर, तालु, आँखें आदि जलने लगतीं, नेत्रों के सामने अँधेरा छा जाता, चक्कर आने लगता, शरीर में पीड़ा होती और पीला, गरम, हरा, कटु एवं कडुवाहट लिए धुवाँ और दाह के साथ वमन होता है ॥ ७ ॥

कफज छर्दिके लक्षण ।

तन्द्रास्यमाधुर्यकफप्रसेकसन्तोषनिद्रारुचिगौरवार्तः ।
स्निग्धं घनं स्वादु कफाद्विशुद्धं सरोमहर्षोल्परुजं भवेत्तु ॥८॥

कफ के प्रकोप से उत्पन्न छर्दि में, शरीर जलता रहता, मुँह में मिठास सी रहती, कफ निकला करता, सुस्ती आने लगती, नींद ज्यादा आती, किसी वस्तु में रुचि नहीं रहती, शरीर भारी मालूम पड़ता और तबीयत दुःखी रहती है । चिकना, गाढ़ा, स्वादुयुक्त और उज्ज्वल वमन गिरता है उस समय रोंगटे खड़े होजाते और थोड़ी थोड़ी पीड़ा होने लगती है ॥ ८ ॥

त्रिदोषज छर्दिके लक्षण ।

शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबला प्रसक्तम् ।
छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनीलसान्द्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात् ॥९॥

सन्निपात से जायमान छर्दि रोग में शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, प्यास एवं बेहोशी हुआ करता तथा खारा, खट्टा, नीला, गाढ़ा, गरम एवं लाल रङ्ग का वमन होता है ॥ ९ ॥

असाध्यत्व ।

विट्स्वेदमूत्राम्बुवहानि वायुः स्रोतांसि संरुध्य यदोर्ध्वमेति ।
उत्सन्नदोषस्य समाचितं तं दोषं समुद्धूय नरस्य कोष्ठात् ॥ १० ॥

विण्मूत्रयोस्तत्समगन्धवर्णं तृट्श्वासहिक्कार्तियुतं प्रसक्तं ।
प्रच्छर्दयेद्दुष्टमिहातिवेगात्तयाऽर्दितश्चाशु विनाशमेति ॥११॥

जब वायु, मल, स्वेद (पसीना) मूत्र, इनके निकालनेवाले रास्तों को वायु रोक लेता और ऊपर को आने लगता तो पेट के मल आदि दोषों को वमन रूप से पेट के कोठों से बाहर कर दिया करता है। उस निकले दोष की दुर्गन्धि मल मूत्र के सदृश होती और रङ्ग भी विष्ठा से मिलता जुलता रहता है, प्यास ज्यादा लगती, श्वास आने लगता, खाँसी आती, पेट में शूल उठता और वेग के साथ बार बार वमन होता है। ऐसी अवस्था में यह छर्दि रोग प्राणी के प्राण लेकर छोड़ता है ॥१०॥११॥

आगन्तुज छर्दिके लक्षण ।

बीभत्सजा दौर्हृदजाऽऽमजा च ह्यसात्म्यजा च क्रिमिजा च या हि।
सा पञ्चमी तां च विभावयेच्च दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ ॥१२॥

छर्दि रोग पाँच प्रकार का होता है बीभत्सजा, दौर्हृदजा, आमजा, असात्म्यजा और कृमिजा । बीभत्स छर्दि घृणित वस्तुओं के देखने से उत्पन्न होती है। हृदय के दूषित होने पर दुर्हृदजा, अजीर्ण से आमजा, अधिक भोजन से असात्म्यजा एवं क्रिमियों के उत्पन्न होने से कृमिजा नामकी छर्दि हुआ करती है। ऊपर जो लक्षण कह आए हैं उन में जो जहाँ घटे उसे उस प्रकार की छर्दि समझे ॥ १२ ॥

क्रिमिजा छर्दि के लक्षण ।

शूलहृल्लासबहुला क्रिमिजा च विशेषतः ।
क्रिमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता ॥ १३ ॥

उदरमें शूल उठना और हृदयमें ग्लानि रहना ये विशेष लक्षण क्रिमिसे जायमान छर्दिके होते हैं साथही हृदयरोग और क्रिमिरोगके भी लक्षण घटा करते हैं ॥ १३ ॥

असाध्यत्व ।

क्षीणस्य या छर्दिरतिप्रसक्ता सोपद्रवा शोणितपूययुक्ता ।
सचन्द्रिकां तां प्रवदेदसाध्यां साध्यां चिकित्सेन्निरुपद्रवां च ॥१४॥

क्षीण पुरुषके यदि वेगके साथ छर्दि हो और खांसी दमा आदि उपद्रव हों, छर्दिसे निकले हुए मलमें यदि रक्त और पीबका भी कुछ अंश दिखाई दे, उसमें मोरके पंखकी तरह कई प्रकार की चमचमाहट हो तो समझ लेना चाहिए कि यह रोग असाध्य होगया है। लेकिन यदि छर्दिमें उपर्युक्त खांसी आदि उपद्रव न हों तो किसी तरह साध्य होसकता है॥ १४॥

कासश्वासोऽज्वरो हिक्का तृष्णा वैचित्त्यमेव च ।
हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्देरुपद्रवाः ॥ १५ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने छर्दिनिदानं समाप्तम् ॥ १५ ॥

खांसी, श्वास, ज्वर, हिचकियां, तृष्णा, चित्तभ्रम, हृदयमें पीड़ा, तमक यानी नेत्रोंके सामने अन्धकार छा जाना, ये सब उपद्रव छर्दिरोग में हुआ करते है॥ १५॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने छर्दिनिदानम् ॥ १५ ॥

अथ तृष्णानिदानम् ।

निदान ।

भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वा ह्यूर्ध्वं चितं पित्तविवर्धनैश्च ।
पित्तं सवातं कुपितं नराणां तालुप्रपन्नं जनयेत्पिपासाम् ।
स्रोतःस्वपावाहिषु दूषितेषु दोषैश्च तृट् संभवतीह जन्तोः ॥१॥

भय, अधिक परिश्रम और बलनाश होनेके कारण, पित्तको बढ़ाने या ऊपरको खींचनेवाले किसी व्यवहारसे, वातके साथ साथ पित्त कुपित हो तालुमें आकर ठहर जाता और पिपासाको उत्पन्न कर दिया करता है॥ १ ॥

तृष्णा की संप्राप्ति ।

तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी क्षयात्तथा ह्यामसमुद्भवा च ।
भक्तोद्भवा सप्तमिकेति तासां निबोध लिङ्गान्यनुपूर्वशस्तु ॥२॥

जब जलको शरीरमें संचालन करनेवाली नसें वातपित्तादि दोषोंसे

दूषित होजाती हैं तब वातज पित्तज कफज यह तीन प्रकारकी पिपासा लगती है और चौथी पिपासा किसी प्रकारके घाव लगजानेके कारण, पांचवीं धातुक्षीणतासे, छठीं आमसे और सातवीं अन्नसे हुआ करती है। आगे इन सबोंका लक्षण क्रमशः बतलाते हैं, उन्हें समझो ॥ २ ॥

वातज तृष्णा के लक्षण ।

क्षामास्यता मारुतसंभवायां तोदस्तथा शङ्खशिरःसु चापि ।
स्रोतोनिरोधो विरसं च वक्त्रं शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति ॥ ३ ॥

वातके प्रकोपसे जायमान तृष्णामें मुँह सूखजाता, चित्तमें ग्लानि होती, कनपटी और मस्तकमें पीड़ा होती, रस वहन करनेवाली नसोंमें रुकावट पैदा होजाती, मुँहका स्वाद बिगड़ जाता और ठंढे जलके पीलेनेसे यह बहुत बढ़ जाया करती है ॥ ३ ॥

पित्तज तृष्णा के लक्षण ।

मूर्च्छान्नविद्वेषविलापदाहा रक्तेक्षणत्वं प्रततश्च शोषः ।
शीताभिनन्दा मुखतिक्तता च पित्तात्मिकायां परिदूयनं च ॥ ४ ॥

मूर्च्छा आना, सब प्रकारकी चीजोंमें अरुचि रहना, अनाप सनाप बकने लगना, शरीरमें जलन होना, देहका सूख जाना, ठंढी चीजें प्रिय लगना, मुँहमें कड़वापन रहना, जब तब शरीर में पीड़ा होना, ये पित्तके प्रकोपसे जायमान तृष्णाके लक्षण हैं ॥ ४ ॥

कफज तृष्णा के लक्षण ।

बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ तृष्णा बलासेन भवेत्तथा तु ।
निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च तृष्णार्दितः शुष्यति चातिमात्रम् ॥ ५ ॥

बाष्पके रुकजाने से कफ कुपित होकर अग्निको आच्छादित कर लेता, और जलवहन करनेवाली नाड़ियों को सुखाकर कफ तृष्णाको उत्पन्न कर दिया करता है ऐसी अवस्थामें प्राणीको नींद अधिक आती, शरीर भारी होजाता और मुँहमें कुछ मीठापन सा रहा करता है* ॥ ५ ॥

---

*स्वाद्वम्ललवणाजीर्णैः क्रुद्धः श्लेष्मा सहोष्मणा । प्रपद्याम्बुवहं स्रोतस्तृष्णां संजनयेन्नृणाम् ॥ शिरसो गौरवं तन्द्रा माधुर्यं वदनस्य च । भक्तद्वेषः प्रसेकश्च निद्राधिक्यं तथैव च ॥ एतैर्लिङ्गैर्विजानीयात्तृष्णां कफसमुद्भवाम् ॥ (टीका अगले पेजमें है)

क्षतजा तृष्णा ।

क्षतस्य रुक्शोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता तु ।
रसक्षयाद्या क्षयसंभवा सा तयाऽभिभूतश्च निशादिनेषु ॥ ६ ॥
पेपीयतेऽम्भः स सुखं न याति तां सन्निपातादिति केचिदाहुः ।
रक्तक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशेषेण भिषग्व्यवस्येत् ॥७॥

किसी प्रकारकी चोट लगनेके कारण अथवा रुधिर बहनेसे जो तृष्णा उत्पन्न होती उसका नाम क्षतजा है। जो तृष्णा रसके नष्ट होजाने से होती उसका नाम "क्षयसम्भवा" है। इसके होने पर रोगी रात दिन पानीही पिया करता है फिर भी सन्तोष नहीं होता। अत एव कुछ लोग इसी क्षयसम्भवा को सन्निपातजा भी कहते हैं, क्षयसे उत्पन्न जो लक्षण हों वे सब इसमें भी होते हैं वैद्यको चाहिए कि उसीके समान इसकी चिकित्सा की भी व्यवस्था करें ॥६॥७॥

आमजा तथा अन्नजा तृष्णा ।

त्रिदोषलिङ्गाऽऽमसमुद्भवा च हृच्छूलनिष्ठीवनसादकर्त्री ।
स्निग्धं तथाऽम्लं लवणं च भुक्तं गुर्वन्नमेवाशु तृषां करोति ॥८॥

उसी तरह आमसे उत्पन्न होनेके कारण एक आमजा तृष्णा कहलाती है, आमकी उत्पत्ति तीनों दोषोंके कुपित होनेसे होती है अत एव जिस दोषका जोर अधिक दीखे उसीकी प्रधानता समझनी चाहिए। साधारण तया आमजा तृष्णासे हृदयमें शूल सा चुभता, थुकथुकी हुआ करती, चित्त में एक प्रकारका विषाद बना रहा करता है। जो लोग चिकना, खट्टा, नमकीन अथवा गुरुतर अन्न खाते हैं उन्हें झट पट एक प्रकार की तृष्णा होजाया करती है जिसको लोग अन्नजा तृष्णा कहते हैं ॥ ८ ॥

मीठी, खट्टी, नमकीन चीजोंके खानेसे, अथवा अजीर्णताके कारण कफ कुपित होकर जलवहन करनेवाली नाड़ियोंमें पहुंचता एवं तृष्णाको उत्पन्न करता है। उस समय सिर भारी मालूम होता, आलस्य ज्यादा आने लगती, मुँह मीठा रहता, खाने पीनेको जी नहीं चाहता, पसीना अधिक होता, नींद ज्यादा आती, इन लक्षणोंसे समझ लेना चाहिए कि यह तृष्णा कफके प्रकोप उत्पन्न हुई है।

उपसर्गजा तृष्णा ।

दीनस्वरः प्रताम्यन् दीनः संशुष्कवक्त्रगलतालुः ।
भवति खलु योपसर्गात्तृष्णा सा शोषिणी कष्टा ॥ ९ ॥

जिस तृष्णामें स्वर मध्यम होजाय, कभी कभी बेहोशी आजाया करे, चित्तमें ग्लानि रहे, मुँह गला शरीर और तालु सूख जायँ तो समझना चाहिए कि यह उपसर्गजा तृष्णा है ॥ ९ ॥

सोपद्रवा तृष्णा ।

ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् ।
सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रयुक्तानाम् ।
घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णा मरणाय विज्ञेयाः ॥ १० ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने तृष्णानिदानं समाप्तम् ॥ १६ ॥

ज्वर, मोह, क्षय, कास, श्वास अतीसारादि रोगोंसे पीड़ित प्राणी के लिए ये सब तृष्णाएँ कष्टसाध्य हैं। किन्तु जो लोग किसी रोगके कारण दुर्बल हो गए हैं या जिनको वमन रोग होगया है और उपद्रव भी प्रचण्ड होगए हैं, ऐसों के लिए तृष्णा असाध्य समझनी चाहिए ॥ १० ॥

इति श्रीरामतेजपाण्डेयविरचितमञ्जुलाख्यभाषाटीकासमन्विते
माधवनिधाने तृष्णानिदानम् ॥ १६ ॥

अथ मूर्च्छानिदानम् ।

मूर्च्छारोगकी सम्प्राप्ति, लक्षण तथा भेद ।

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः ।
वेगाघातादभिघाताद्धीनसत्त्वस्य वा पुनः ॥ १ ॥
करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च ।

निविशन्ते यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति मानवाः ॥ २ ॥
संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः ।
तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ ३ ॥
सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत् ।
मोहो मूर्च्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥४॥
वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च ।
षट्स्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥ ५ ॥

रस के क्षीण होजाने, कई एक दोषों के इकट्ठा होने, प्रकृतिविरुद्ध भोजन करने, मलमूत्रादि के वेग रोकने, किसी प्रकार की चोट खाजाने अथवा सत्त्वविहीन होने के कारण जब दोष बाहर भीतर की इन्द्रियों में प्रविष्ट हो जाते हैं तब मनुष्य को मूर्छा आने लगती है । जिस समय प्राणी को होश में रखनेवाली नाड़ियाँ वातादि दोषों से रुँध जातीं तो मनुष्य अज्ञानता की अवस्था को प्राप्त होता है उस समय मनुष्य को अपने सुख दुःख का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता । सुख दुःख विषयक ज्ञान के नष्ट होजाने पर प्राणी सहसा काठ की तरह धराशायी होजाता है । उसी रोग को मोह अथवा मूर्च्छा कहते हैं और वह मोह छ प्रकार का हुआ करता है ॥१–४॥ वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषों से, रक्त से, मद्यसेवन करनेसे, किसी प्रकार विषखानेके कारण इन छहों प्रकारके मोहों की उत्पत्ति होती है किन्तु प्रधानता पित्त की हुआ करती है ॥ ५ ॥

पूर्वरूप

हृत्पीडा जृम्भणं ग्लानिः संज्ञादौर्बल्यमेव च ।
सर्वासां पूर्वरूपाणि, यथास्वं तां विभावयेत् ॥ ६ ॥

जिस को मोह होनेवाला होता है उसके हृदयमें पीड़ा होती, बार बार जँभाई आती, हृदयमें ग्लानि होती स्मरणशक्ति क्षीण होजाती, ये इस रोगके पूर्वरूप हैं। जिस मूर्छा में जिस दोष की प्रबलता दीखे उसे उस दोष की मूर्च्छा समझे ॥ ६ ॥

वातज मूर्च्छा ।

नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथवाऽरुणम् ।
पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रं च प्रतिबुध्यते ॥ ७ ॥
वेपथुश्चाङ्गमर्दश्च प्रपीडा हृदयस्य च ।
कार्श्यं श्यावाऽरुणच्छाया मूर्च्छाये वातसंभवे ॥ ८ ॥

वातके प्रकोपसे उत्पन्न मूर्च्छामें आकाश नीले अथवा काले रंगका या लाल दीखता है आँखोंके सामने अंधकार छाजाता किन्तु थोड़ी ही देरमें होश ठिकाने आजाता है । शरीरमें कम्प, पीड़ा तथा हृदय में जोरोंसे दर्द होता है । देह दुर्वल होजाती और उसका रंग काला साँवला अथवा लाल होजाया करता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

पित्तज मूर्च्छा ।

रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा ।
पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदश्च प्रबुध्यते ॥ ९ ॥
(सपिपासः ससन्तापो रक्तपीताकुलेक्षणः ।)
जातमात्रे पतति च शीघ्रं च प्रतिबुध्यते ॥
संभिन्नवर्चाः पीताभो मूर्च्छाये पित्तसंभवे ॥ १० ॥

पित्तके कुपित होने पर जो मूर्च्छा होती उसमें आकाश लाल, हरा अथवा पीले रंगका दीखता है, आँखोंके सामने अँधेरा छाजाता है, जब चैतन्य होता तो पसीना आने लगता है। (प्यास अधिक लगती, दाह होती, आखें लाल व पीली हो जातीं) वेहोशी आने से कभी कभी गिर पड़ता लेकिन तुरन्त उठ जायाकरता है, मल पतला होजाता तथा देह पीली पड़ जाया करती है ॥ ९ ॥ १० ॥

कफज मूर्च्छा ।

मेघसंकाशमाकाशमावृतं वा तमोघनैः ।
पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुध्यते ॥ ११ ॥

गुरुभिः प्रावृतैरङ्गैर्यथैवार्द्रेण चर्मणा ।
सप्रसेकः सहृल्लासो मूर्च्छायां कफसंभवे ॥ १२ ॥

कफके प्रकोपसे उत्पन्न मूर्च्छामें आकाश मेघसे घिरा मालूम होता अथवा अन्धकारमय दिखाई देता है। इस प्रकार मालूम होने पर प्राणी बेहोश होजाता और बडी देरमें चैतन्य हुआ करता है । उस समय अंग भारी होजाता, भीगे चमड़ेसे ढंका सा शरीर ज्ञात होता है, छातीमें धुकधुकी आती रहती और कभी कभी वमन भी होजाया करता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

सन्निपातज मूर्च्छा ।

सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मार इवागतः ।
स जन्तुं पातयत्याशु विना बीभत्सचेष्टितैः ॥ १३ ॥

सन्निपातसे जायमान मूर्च्छा में (आगे कहे जानेवाले) मृगीके सब लक्षण दीखते हैं । मृगी के समान ही सन्निपातज मोह भी प्राणी को तुरन्त गिरा देता है । हाँ, इस में मृगी के समान चेष्टित बीभत्स नहीं होने पाता ॥ १३ ॥

रक्तज मूर्च्छा के लक्षण ।

पृथिव्यापस्तमोरूपं रक्तगन्धस्तदन्वयः ।
तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः ॥ १४ ॥
द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदभिमुह्यति ।
गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः ॥ १५ ॥
त एव तस्मात्ताभ्यां तु मोहौ स्यातां यथेरितौ ।

पृथ्वी और जल तमोरूप होनेके कारण उन का रक्त और गन्ध ही अन्वय होता है अत एव रक्तके गन्धसे मनुष्य मूर्च्छित होजाया करता है । द्रव्य का स्वभाव एक ही है इस लिए गंध न आने पर उसे देखने मात्रसे मूर्च्छा आजाया करती है ऐसी अवस्था में प्राणी के अङ्ग और निश्चल होजाते तथा श्वास रुक रुक कर आने लगता है ॥ १४ ॥ विष

और मद्यमें सब गुण बड़ी तीव्रता के साथ मौजूद रहते हैं इसी कारण प्राणी को मूर्च्छा आती है ॥ १५ ॥

मद्य तथा विष से उत्पन्न मूर्च्छा ।

स्तब्धाङ्गदृष्टिस्त्वसृजा गूढोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः ॥१६॥
मद्येन विलपंश्शेते नष्टविभ्रान्तमानसः ।
गात्राणि विक्षिपन् भूमौ जरां यावन्न याति तत्॥१७॥
वेपथुः स्वप्नतृष्णाः स्युस्तमश्च विषमूर्च्छिते ।
वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः ॥ १८ ॥

शरीरके प्रत्येक अङ्ग तथा दृष्टि जकड़ जाती है श्वास भी लगातार न आकर रुकरुक कर आता है । मद्यकी मूर्च्छामें प्राणी ऊटपटांग बकता हुआ पड़ा रहता है । उसका चित्त ज्ञानविहीन एवं भ्रान्त रहता है । जब तक होशमें नहीं आता तबतक पृथ्वीपर पड़ा रहता और अङ्ग भूमि पर पटका करता है। विषकी मूर्च्छामें शरीर काँपता, नींद ज्यादा आती, प्यास लगती चारों ओर अंधकार दीखता है । मद्यसे उत्पन्न मूर्च्छाकी अपेक्षा इसमें तीव्रता अधिक रहती है ॥१६–१८ ॥

मूर्च्छा भ्रम तन्द्रादि के भेद ।

मूर्च्छा पित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद्भ्रमः ।
तमोवातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा ॥ १९ ॥
(चक्रवद्भ्रमतो गात्रं भूमौ पतति सर्वदा ।
भ्रमरोग इति ज्ञेयो रजःपित्तानिलात्मकः ॥

मूर्च्छामें पित्त तथा तमोगुण का आधिक्य होता है । भ्रममें रजोगुण, पित्त तथा वायुकी प्रबलता रहती है, उसी प्रकार तमोगुण, वात तथा कफसे तन्द्रा आती है । और तमोगुण एवं श्लेष्मा की प्रबलतावश निद्रा आया करती है ॥ १९ ॥

(कुम्हारके चाके की तरह जिस रोगमें शरीर चक्कर खाकर बारबार पृथ्वीपर गिरे उसे भ्रमरोग कहते हैं इसमें रजोगुण, पित्त तथा वायुकी प्रबलता रहा करती है)।

तन्द्रा के लक्षण ।

इन्द्रियार्थेष्वसंवित्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः ।
निद्रार्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

जब शरीर की इन्द्रियाँ अपना अपना काम करनेमें असमर्थ हो जायँ, देह भारी मालूम हो, बारंबार जँभाई आवे, मनमें ग्लानि रहे, नींदके मारे प्राणी व्याकुल रहे तब समझना चाहिए कि यह तन्द्रा है ॥ २० ॥

संन्यास और मूर्छाके भेद ।

योऽनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धश्वासवर्जितः ।
क्लमः स इति विज्ञेयः इन्द्रियार्थप्रबाधकः ॥ २१ ॥
दोषेषु मदमूर्च्छाया कृतवेगेषु देहिनाम् ।
स्वयमेवोपशाम्यन्ति संन्यासो नौषधैर्विना ॥ २२ ॥

जब बिना परिश्रम किए ही शरीरमें थकावट मालूम हो, श्वासका वेग मन्द रहे तो उसको क्लम कहते हैं । यह इन्द्रियोंके कार्यमें बाधक हुआ करता है ॥२१ ॥ मद तथा मूर्च्छा पूर्णतया बढ़कर भी समय पाकर शान्त हो जाया करते हैं किन्तु संन्यास रोग विना किसी प्रकार की चिकित्सा किए नहीं शान्त हुआ करता ॥ २२ ॥

संन्यास मूर्च्छा के लक्षण ।

वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः ।
संन्यस्यन्त्यबलं जन्तुं प्राणायतनमाश्रिताः ॥ २३ ॥

शरीरके मल कुपित होकर वाणी, देह, मन, इन तीनोंके कार्यों को जबर्दस्ती रोक देते और प्राण वायुमें रुककर निर्बल प्राणी को बेकार कर देते हैं ॥ २३ ॥

स ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः ।
प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं मुक्त्वा सद्यःफलां क्रियाम्॥२४॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने मूर्च्छाभ्रमनिद्रातन्द्रा-संन्यासनिदानं समाप्तम् ।

ऐसी अवस्थामें वह प्राणी सब कामों को छोड़कर लकड़ीकी तरह या मृतक के समान होजाता और सब कामोंके त्याग करनेसे शीघ्र अपने प्राणोंको छोड़ दिया करता है। इसी लिए यह संन्यास रोग कहा जाता है, संन्यासी भी तो सब सांसारिक बखेड़ों को छोड़ कर ईश्वरचिन्तनमें लगजाता है, ठीक वही दशा इसमें भी होती है ॥ २४ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने मूर्च्छानिदानम् ॥ १७ ॥

अथ मदात्ययनिदानम् ।

ये विषस्य गुणाः प्रोक्तास्तेऽपि मद्ये प्रतिष्ठिताः ।
तेन मिथ्योपयुक्तेन भवत्युग्रो मदात्ययः ॥ १ ॥

पीछेके प्रकरणमें जो गुण विषके कह आए हैं वे ही इस मद्यके भी हैं। जिस तरह विषके अधिक सेवन करनेसे हानि होती है उसी तरह मदको भी परिमाणसे अधिक सेवन करनेके कारण मदात्यय रोग होजाया करता है ॥ १ ॥

मद्यकी उपयोगिता ।

किंतु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम् ।
अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽमृतम् ॥ २ ॥
प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या हिनस्त्यसून् ।
विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम् ॥ ३ ॥

वास्तवमें मदिरा अन्नके समान ही प्राणीके लिए गुणकारी है। यदि तरीकेसे इसका सेवन कियाजाय तो अमृतके समान है और यदि अनाप सनाप सेवनकी जाय तो रोग का घर है ॥ २ ॥ जिस प्रकार अन्न प्राणियों के लिए प्राण सदृश है किन्तु यदि अयुक्तिसङ्गत रीतिसे खाया जाय वह ही अन्न मनुष्य की जानले लेता है। उसी प्रकार यद्यपि विष प्राणीका प्राणलेने वाला है लेकिन यदि युक्तियुक्त तरीके से काममें लाया जाय तो वह विषही रसायनके सदृश गुणकारी हो जाता है ॥ ३ ॥

विधिपूर्वक मद्यका उपयोग करने से लाभ ।

विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम् ।
प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतोपमम् ॥ ४ ॥
स्निग्धैस्तदन्नैर्मांसैश्च भक्ष्यैश्च सह सेवितम् ।
भवेदायुःप्रकर्षाय बलायोपचयाय च ॥ ५ ॥
काम्यता मनसस्तुष्टिस्तेजो विक्रम एव च ।
विधिवत्सेव्यमाने तु मद्ये संनिहिता गुणाः ॥ ६ ॥

विधिपूर्वक, हितकारी अन्नोंके साथ, हजम होजाने लायक मात्रामें जो प्राणी प्रसन्नतासे मद्य पीताहै उसके लिए यह अमृतके समान गुणकारी होताहै । जो कोई चिकने तथा मांस आदि भक्ष्य पदार्थोंके साथ इसका सेवन करताहै उसकी आयु और बल दोनों बढ़तेहैं । आकृति सुन्दर हो जाती, चित्त प्रसन्न रहता, तेज और पराक्रम दिनो-दिन बढ़ते जातेहैं । विधिवत् मद्य सेवन करनेसे इतने लाभ होतेहैं ॥ ४-६ ॥

प्रथम मद ।

बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननिद्रारतिवर्धनश्च ।
संपाठगीतस्वरवर्धनश्च प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि ॥७॥

अब मदके भेद गिनाते हैं। मद चार प्रकारका माना गयाहै, उनमें पहला बुद्धिको बढ़ाने, प्रसन्नता रखने तथा याददाश्तको पक्का करनेवाला है। इससे प्रत्येक वस्तुमें अनुराग होता हर प्रकारका सुख होता, खाने, पीने, सोने तथा रतिमें विशेष आनन्द आताहै। यह पढ़ने लिखने, और गीत गाने में स्वरको बढ़ानेवालाहै। इसीसे चतुर लोगोंने पहले मदको ही अच्छा बतलाया है ॥ ७ ॥

द्वितीय मद ।

अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्टः सोन्मत्तलीलाकृतिरप्रशान्तः ।
आलस्यनिद्राभिहतो मुहुश्च मध्येन मत्तः पुरुषो मदेन ॥ ८ ॥

दूसरे मदमें बुद्धि, स्मरणशक्ति और बातचीत ठिकाने नहीं रहती,

शरीरकी क्रियायें चलना फिरना आदि भी अपने वशका नहीं रहता, पागल मनुष्यके समान उसके काम होतेहैं, आकृति भी उसी तरहकी होजाया करतीहै और चित्त चञ्चल रहताहै। बार बार आलस्य एवं निद्राका आक्रमण हुआ करताहै कहनेका मतलब यह कि दूसरा मद मनुष्यको मत वाला बना देताहै ॥ ८ ॥

तृतीय मद।

गच्छेदगम्यान्न गुरूँश्च मन्येत् खादेदभक्ष्याणि च नष्टसंज्ञः।
ब्रूयाच्च गुह्यानि हृदि स्थितानि मदे तृतीये पुरुषोऽस्वतन्त्रः॥९॥

तीसरे प्रकारके मद्यपानमें पुरुष बिल्कुल विवेकभ्रष्ट होकर अगम्य स्त्रियोंके साथ भी अपनी कामवासना पूर्ण करनेमें नहीं हिचकता, बड़ोंको कुछ नहीं समझता, न खाने योग्य वस्तुयें भी खाता एवं सुधिबुधि एक बारगी ठिकाने नहीं रहती। ऐसी अवस्थामें मनुष्य हृदयके भीतर छिपी हुई बातें भी कहता फिरताहै यानी अपनी स्वतन्त्रता खोकर प्राणी मदके हाथों अपनी हस्तीको सौंप दिया करता है ॥ ९ ॥

चतुर्थ मद।

चतुर्थे तु मदे मूढो भग्नदार्विव निष्क्रियः।
कार्याकार्यविभागज्ञो मृतादप्यपरो मृतः॥ १० ॥
को मदं तादृशं गच्छेदुन्मादमिव चापरम्।
बहुदोषमिवामूढः कान्तारं स्ववशः कृती ॥ ११ ॥

चतुर्थ मदमें मनुष्य काठके टुकड़ेकी तरह निष्क्रिय होजाता, उसे भले बुरेका ज्ञान बिल्कुल नहीं रहता और मुर्देसे भी गई बीती अवस्था हो जातीहै। जो मद मनुष्यकी मनुष्यता नष्ट करके पागल बना देताहै उसका सेवन भला कौन करेगा? जो आगे पीछेकी सोचता तथा अपने होशमें है, वह अपना सुन्दर घर छोड़कर व्याघ्र आदि दोषोंसे परिपूर्ण वनों में रहनेकी इच्छा कभी कोई कर सकताहै? कभी नहीं। सारांश यह कि यह चतुर्थ मद अतिशय निन्दित है समझदार मनुष्यको चाहिए कि इससे सदा सर्वदा दूर रहे ॥ १० ॥ ११ ॥

विधिरहित मद्यसेवन के उपद्रव ।

निर्भक्तमेकान्तत एव मद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम् ।
आपादयेत्कष्टतमान्विकारानापादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ १२ ॥

जो प्राणी खाना पीना छोड़कर मदके पीछे ही हाथ धोकर पड़जाता, हमेशा वही पीता रहता है, उसको अनेक प्रकारके दुखदायी विकार उत्पन्न होतेहैं अन्तमें वह अपना शरीर भी नष्ट कर देताहै ॥ १२ ॥

अन्नसहित मद्यसेवन के विकार ।

क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन ।
व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन चापि ॥ १३ ॥
अत्यम्बुभक्षावततोदरेण साजीर्णभुक्तेन तथाऽबलेन ।
उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान्विकारान् ॥१४॥

क्रोधावस्थामें, भयके समय, प्यास लगने पर, किसी प्रकारके शोक होने पर, भूख लगनेके समय, कोई तरहकी कसरत करके, बोझा ढोनेके बाद, रास्ता चलनेके कारण थकावट आजाने पर, अन्न अधिक खानेसे, पेट फूल आने पर, अजीर्णावस्थामें, निर्बलताके समय, गरमीसे तबीयत अकुला जाने पर जो मनुष्य मदका सेवन करताहै उसको अनेक तरहके विकार हुआ करते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

विशेष विवरण ।

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि वा ।
पानविभ्रममुग्रं च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १५ ॥

मदके कारण उत्पन्न विकार चार प्रकारके होतेहैं, जैसे—पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण एवं पानविभ्रम । ये विकार बड़े उग्र हैं, इनका लक्षण आगे बतलाते हैं ॥ १५ ॥

उद्दिष्ट लक्षण ।

हिक्काश्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः ।
विद्याद्बहुप्रलापस्य वातप्रायं मदात्ययम् ॥ १६ ॥

वातसे जायमान मदात्ययमें हिचकी आती, श्वास जोरोंसे चलता, सिर हीलने लगता, पसलियां दुखने लगतीं, नींद नहीं आती और रोगी अनाप सनाप बकने लगताहै ॥ १६ ॥

तृष्णादाहज्वरस्वेदमोहातीसारविभ्रमैः ।
विद्याद्धरितवर्णस्य पित्तप्रायं मदात्ययम् ॥ १७ ॥
छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः ।
विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायं मदात्ययम् ।
ज्ञेयस्त्रिदोषजश्चापि सर्वलिङ्गैर्मदात्ययः ॥ १८ ॥

पित्तज मदात्यय में मनुष्य के शरीर में दाह होती, बार बार प्यास लगती, ज्वर हो आता, श्वास अधिक चलने लगता, चित्त में मोह होता, दस्त पतला आता, चक्कर आने लगता और शरीर का रंग हरा हो जाता है ॥ १७ ॥ कफ से उत्पन्न मदात्यय में कै होती, किसी चीज़ में रुचि नहीं रहजाती, आलस्य अधिक रहा करती, शरीर भीगा सा बना रहता एवं भारीपन रहता और देह में शीतकी प्रधानता रहती है । जिस में ऊपर कहे तीनों दोषों के लक्षण दिखाई दें उसे सान्निपातात्मक मदात्यय समझना चाहिए ॥ १८ ॥

परमद ।

श्लेष्मोच्छ्रयोऽङ्गगुरुता विरसास्यता च
विण्मूत्रसक्तिरथ तन्द्रिररोचकश्च ।
लिङ्गं परस्य च मदस्य वदन्ति तज्ज्ञा-
स्तृष्णा रुजा शिरसि सन्धिषु चापि भेदः ॥ १९ ॥

कफ की वृद्धि रहना, शरीर का भारी मालूम पड़ना, मुँह में किसी प्रकार का स्वाद न रहना, मलमूत्र का रुक जाना, तन्द्रा और अरुचिका रहना, प्यास अधिक लगना, सिर में पीड़ा बना रहना और शरीर की सन्धियों का फटना ये परमद के लक्षण कहे गए हैं ॥ १९ ॥

पानाजीर्ण ।

आध्मानमुग्रमथ चोद्गिरणं विदाहः
पानेऽजरां समुपगच्छति लक्षणानि ।

पेट का ज्यादा फूलना, वमन होना, शरीर में दाह बना रहना, मद के अधिक पीलेने के कारण अजीर्ण होता इसी लिए इसकी पानाजीर्ण संज्ञा है और इसके लक्षण भी वही पेट फूलना आदि हैं ॥

पानविभ्रम ।

हृद्गात्रतोदकफसंस्रवकण्ठधूमा
मूर्च्छावमिज्वरशिरोरुजनप्रदाहाः ॥ २० ॥
द्वेषः सुरान्नविकृतेष्वपि तेषु तेषु
तं पानविभ्रममुशन्त्यखिलेन धीराः ।

हृदय और शरीर में शूल से चुभने की तरह दर्द हो, कफ बराबर गिरता रहे, धुवाइँध आया करे, मूर्च्छा, वमन, सिरकी पीड़ा तथा कफ गिरता रहे, किसी प्रकार की शराब अथवा अन्न की इच्छा न रह गई हो, उसको धैर्यशाली पुरुष पानविभ्रम रोग कहते हैं ॥ २० ॥

असाध्य लक्षण ।

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममन्ददाहं
तैलप्रभास्यमपि पानहतं त्यजेत्तु ॥ २१ ॥
जिह्वौष्ठदन्तमसितं त्वथवाऽपि नीलं
पीते च यस्य नयने रुधिरप्रभे वा ।

ऊपर का ओष्ठ बढ़ आवे, ऊपर असाधारण ठंढक रहे और भीतर जलन, मुँह पर तैल लगा सा चिकनापन मौजूद रहे, जीभ, ओंठ, दाँत ये सब काले या नीले हो जायँ, आँखों की आभा पीली पड़ जाय तो ऐसे रोगी की चिकित्सा कदापि न करनी चाहिए क्योंकि ये लक्षण असाध्य रोगके हैं ॥ २१ ॥

उपद्रव ।

हिक्काज्वरौ वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः
कासभ्रमावपि च पानहतं भजन्ते ॥ २२ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने पानात्ययपरमदपानाजीर्णपान-
विभ्रमनिदानं समाप्तम् ॥

हिचकी, ज्वर, वमन, कँपकँपी, पसलियों में दर्द, खाँसी, भ्रम, ये सब मदात्यय रोग के उपद्रव कहे गए हैं ॥ २२ ॥

इति श्रीरामतेजपाण्डेयविरचितमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने
मदात्ययरोगनिदानम् ॥ १८ ॥

दाहरोगनिदानम् ।

दाह के निदान ।

त्वचं प्राप्तः स पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः ।
दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ १ ॥

मद की गरमी त्वचा तक पहुँच कर पित्त और रक्तसे मिलकर बढ़ जाती और दाह रोग को जन्म देती है। इस रोग में पित्तके समान औषधि करनी चाहिए ॥ १ ॥

रक्तज दाह तथा पित्तज दाह ।

कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ध्रुवम् ।
स उष्यते तृष्यते च ताम्राभस्ताम्रलोचनः ॥ २ ॥
लोहगन्धाङ्गवदनो वह्निनेवावकीर्यते ।
पित्तज्वरसमः पित्तात्स चाप्यस्य विधिः स्मृतः ॥ ३ ॥

रक्त कुपित होकर सारे देहमें जलन पैदा कर देता इससे देह सूख जाती, प्यास ज्यादा लगती, मुख की आकृति लाल हो जाती, आँखें भी लाल हो जाया करती हैं । रोगी के शरीर और मुखसे लोह के समान

गन्ध निकलता है, जान पड़ता है कि वह अग्नि का वमन कर रहा है। पित्तके प्रकोप से उत्पन्न दाह रोगमें पित्तज्वर के समान ही जलन हुआ करती है और उसकी शान्ति के यत्न भी पित्तज्वर के समान ही होते हैं॥३॥

तृष्णानिरोधज दाह ।

तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुद्धतम् ।
स बाह्याभ्यन्तरं देहं प्रदहेन्मन्दचेतसः ॥ ४ ॥
संशुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य वेपते ।

पिपासा रोकने के कारण धातु क्षीण होती और पित्तकी ऊष्मा बढ़जाती है। ऐसी हालत में वह मनुष्य को बाहर तथा भीतर जलाने लगती है, अत एव रोगी का गला, तालु तथा होंठ सूख जाते और जीभ बाहर निकल कर काँपने लगती है ॥ ४ ॥

आघातज दाह ।

असृजः पूर्णकोष्ठस्य दाहोऽन्यः स्यात्सुदुस्तरः॥ ५ ॥

किसी प्रकार की चोट लगने से रुधिर कोष्ठ में भरजाता है इस लिए दाह उत्पन्न होती है, यह दाह बड़ी विकट मानी गई है ॥ ५ ॥

धातुक्षयज दाह ।

धातुक्षयोक्तो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृडर्दितः ।
क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद्भृशपीडितः ॥ ६ ॥

धातुके क्षीण होजाने पर जो दाह होती उससे प्राणी को बार २ मूर्च्छा आती, प्यास लगती, आवाज़ धीमी निकलती, किसी कामको करने की सामर्थ्य नहीं रहजाती, इन्हीं दुःखों से रोगी अतिशय पीड़ित रहता है*॥६॥

मर्माभिघातज दाह ।

मर्माभिघातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः सप्तमो मतः ।
सर्व एव च वर्ज्याः स्युः शीतगात्रस्य देहिनः॥ ७॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने दाहनिदान समाप्तम् ॥ १९ ॥

---

* क्षतजोऽनश्नतश्चान्यः शोचतो वाऽप्यनेकधा ।
तेनान्तर्दह्यतेऽत्यर्थं तृष्णामूर्च्छाप्रलापवान् ॥ १ ॥

किसी मर्मस्थानमें चोट लगनेके कारण जो दाह होती वह बिल्कुल असाध्य मानी गयी है। इस रोगका यह सप्तम भेद है। इसके अतिरिक्त जिस किसी भी दाहमें रोगीका शरीर शीतल होजाय उसे असाध्य समझना चाहिए ॥ ७ ॥

इति श्रीरामतेजपाण्डेयविरचितमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते
माधवनिदाने दाहनिदानम् ॥ १९ ॥

अथोन्मादनिदानम् ।

निदान ।

मदयन्त्युद्धता दोषा यस्मादुन्मार्गमागताः ।
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः ॥ १ ॥

दोष दूषित हो दुर्मार्ग में स्थित हो कर बढ़ते और प्राणी के मन को मतवाला बना देते है इसी लिए इस मानस व्याधि की उन्माद संज्ञा है ॥ १ ॥

उन्मादके भेद ।

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ।
मानसेन च दुःखेन स च पञ्चविधो मतः ॥ २ ॥
विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम् ।
स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां बिभर्ति च ॥ ३ ॥

एक एक करके अथवा समस्त दोषोंके एकसाथ बढ़जाने पर यह रोग पाँच प्रकार का होता है यानी वात–पित्त–कफ–सन्निपातज ये चार प्रकार के हुए और पाँचवाँ मानासिक दुःखके कारण हुआ करता है ॥ २ ॥ आठवाँ विषके प्रयोगसे होता है। इन सबों की चिकित्सा दोषोंके अनुसार होती है। जबतक यह बढ़ता नहीं तब तक तरुण रहता और इसकी मद-संज्ञा होती है ॥ ३ ॥

सामान्य हेतु तथा संप्राप्ति ।

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम् ।
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः ॥४॥
तैरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य ।
स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः॥५॥

प्रकृति के विरुद्ध अपवित्र भोजन करने, देवता, गुरु, ब्राह्मणादिकों की निन्दा या अपमान करने, अधिक भय और हर्षके कारण, हृदय पर कोई धक्का लगनेसे, अथवा अपनेसे बलवान् पुरुषके साथ कुश्ती आदि लड़ने या मारपीट करनेसे उन्माद की उत्पत्ति होती है। उपर्युक्त कारणोंसे निर्बल मनुष्योंके मल दूषित होकर बुद्धिके स्थानपर पहुँचते और वहाँसे मन को दूषित करके मनसे सम्बन्ध रखनेवाली नसोंमें घुस जाते और मनुष्यके चित्तको मुग्ध कर दिया करते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

सामान्यरूप ।

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च ।
अबद्धवाक्त्वं हृदयं च शून्यं सामान्यमुन्मादगदस्य लिङ्गम् ॥६॥

बुद्धि का भ्रमित होजाना, चित्त का चञ्चल होना, आँखों का चञ्चल रहना, अनाप सनाप बकना, हृदय का शून्य रहना ये ही उन्मादके साधारण लक्षण बतलाए हैं ॥ ६ ॥

वातज उन्मादके लक्षण ।

रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः ।
चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति शीघ्रम्॥७॥
अस्थानहासस्मितनृत्यगीतवागङ्गविक्षेपणरोदनानि ।
पारुष्यकार्श्यारुणवर्णताश्च जीर्णे बलं चानिलजस्य रूपम् ॥८॥

रूखा सूखा, थोड़ा, ठंडा तथा दस्त लानेवाले अन्न खानेके कारण, धातुके क्षीण होजानेसे, भोजन न करनेके कारण वायु हदसे ज्यादा बढ़कर

चिन्तादिसे दूषित अन्तःकरणमें प्रविष्ट होकर बुद्धि और स्मरणशक्ति को शीघ्र नष्ट कर दिया करता है। ऐसी अवस्थामें प्राणी विना प्रसंगके हँसता, मुसकाता, नाचता, गाता, अंगों को इधर उधर फेंकता और रोता है। शरीर रूखा, काला तथा रक्त वर्ण का होजाता और अन्न पच जाने के बाद रोग का वेग बढ़ जाया करता है॥ ७॥ ८॥

पित्तज उन्माद।

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैश्चितं पित्तमुदीर्णवेगम्।
उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य हृदि स्थितं पूर्ववदाशु कुर्यात्॥९॥
अमर्षसंरम्भविनग्नभावाः सन्तर्जनातिद्रवणौष्ण्यरोषाः।
प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषः पीता च भाः पित्तकृतस्य लिङ्गम्॥१०॥

बिना पका हुआ, कड़वा, खट्टा, दाहकारी अथवा गर्म भोजन करने से इकट्ठा हुआ पित्त बढ़ कर निर्बल प्राणी के अतिशय प्रबल उन्माद रोग उत्पन्न कर देताहै। इसके होने पर मनुष्य में असहनशीलता, क्रोध, कपड़ों को परित्याग, भय देना, इधर उधर भागना, शरीर में गरमी रहना, रोष बना रहना, छाया का ज्यादा पसन्द करना, ठंढे अन्न जल को चाहना और शरीर का पीला पडजाना, ये पित्तज उन्मादके लक्षण हुआ करते हैं॥ ९॥ १०॥

कफज उन्माद।

संपूरणैर्मन्दविचेष्टितस्य सोष्मा कफो मर्मणि संप्रवृद्धः।
बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहत्य चित्तं प्रमोहयन् संजनयेद्विकारम्॥११॥
वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च नारीविविक्तप्रियताऽतिनिद्रा।
छर्दिश्च लाला च बलं च भुक्ते नखादिशौक्ल्यं च कफात्मके स्यात्।

अत्यन्त तृप्तिकारी पदार्थों के भोजन करनेसे आलसी पुरुषके पित्तसमेत कफ मर्म स्थानमें वृद्धिको प्राप्त होकर प्राणी की बुद्धि और स्मरणशक्ति को नष्ट कर देता और उसे संज्ञाविहीन करके अनेक प्रकारके विकारोंको जायमान करता है। ऐसी अवस्थामें प्राणी बोलता कम है। खाने पीने

स्त्रीप्रसंग करने और एकान्त सेवन की अभिलाषा तीव्र पड़ जाती है । नींद ज्यादा आती, बार बार कै होता, मुँहसे लार टपकती रहती और नख आदि बिल्कुल सफेद होजाते हैं। ये कफ से जायमान उन्मादके लक्षण होते हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥

सन्निपातज उन्माद ।

यः सन्निपातप्रभवोऽतिघोरः सर्वैः समस्तैः स च हेतुभिः स्यात् ।
सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति तादृग्विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः ॥ १३ ॥

सन्निपातसे उत्पन्न उन्माद बड़ा भयंकर होता है क्योंकि उसमें वात-पित्त-कफ,इन तीनों दोषोंके उपद्रव एक साथ लगे रहतेहैं और इन्हींसे उस की उत्पत्ति होती है । सन्निपातज उन्मादमें प्रत्येक दोषोंके लक्षण दीखते हैं । इसके औषधमें वैद्य को बहुत फेर फार करना पड़ता है इस लिए इस का त्याग देना ही अच्छा है ॥ १३ ॥

शोकादिज उन्माद ।

चोरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथाऽन्यै-
र्वित्रासितस्य धनबान्धवसंक्षयाद्वा ।
गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसो-
र्जायेत चोत्कटतमो मनसो विकारः ॥ १४ ॥

चोरों, राजपुरुषों (पुलिस) तथा अन्य मनुष्यों द्वारा सताये जाने अथवा धन या किसी भाई बन्धुके नाश होजानेसे हृदयमें बड़ा धक्का लगता है । या किसी स्त्रीपर तबीयत आजाय और उसे पा न सके तो मनमें बड़ा दारुण विकार होता है । ऐसी अवस्थामें प्राणी उन्मत्त होकर जो मुँहमें आता बकने लगताहै । उसकी सुधिबुधि ठिकाने नहीं रहती, वह कभी गाता, कभी हँसता और कभी रोने लगता है ॥ १४ ॥

चित्रं ब्रवीति च मनोऽनुगतं विसंज्ञो
गायत्यथो हसति रोदिति चापि मूढः ।

विषज उन्माद

रक्तेक्षणो हतबलेन्द्रियभाः सुदीनः
श्यावाननो विषकृतेऽथ भवेद्विसंज्ञः ॥ १५ ॥

किसी प्रकारके विषसे जायमान उन्मादमें प्राणीके नेत्र लाल होजाते, बल, इन्द्रिय तथा शोभा नष्ट होजाती, प्रकृतिमें दीनता आजाती, मुँह साँवला होजाता और होशो हवास ठिकाने नहीं रहता है ॥ १५ ॥

असाध्यत्व ।

अवाङ्मुखी वाऽप्युदङ्मुखी वा क्षीणमांसबलो नरः ।
जागरूको ह्यसंदेहमुन्मादेन विनश्यति ॥ १६ ॥

जो उन्मादरोगी हमेशा नीचे वा ऊपर मुँह किए बुत बना बैठा रहे, शरीर का मांस और बल नष्ट हो गया हो, नींद कभी नहीं आती हो, किसी बात का खुटका न रहे, इस प्रकार का उन्माद रोगी को मार डालता है ॥ १६ ॥

भौतिक उन्माद के सामान्य लक्षण ।

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टो ज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः ।
उन्मादकालोऽनियतश्च यस्य भूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥ १७ ॥

जिस मनुष्य की वाणी, विक्रम, चेष्टा, ज्ञान, विज्ञान तथा पराक्रम आदि मनुष्यताके विपरीत हों और जिसके उन्मत्त होने का कोई समय नियत न रहे ऐसे उन्माद को समझना चाहिए कि यह भूतबाधासे उत्पन्न हुआ है ॥ १७ ॥

देवजुष्ट ।

संतुष्टः शुचिरतिदिव्यमाल्यगन्धो निस्तन्द्रीरवितथसंस्कृतप्रभाषी ।
तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता ब्रह्मण्यो भवति नरः स देवजुष्टः ॥ १८

("क्रोधनः स्रस्तसर्वाङ्गो लालाफेनविलाननः ।
निद्रालुःकम्पनो मूको गणमातृभिरर्दितः ॥")

जो उन्मत्त (पागल) हमेशा प्रसन्न रहे, पवित्रताके साथ रहना पसन्द करे, अतिशय दिव्यमाला चन्दन आदि धारण करे, कभी आलस्य न

आती हो, सत्य एवं संस्कृत वाणी बोले, चेहरे पर तेज झलकता रहे, आँखें चंचल न रहें, सब को वरदान देता रहे, ब्राह्मणों पर श्रद्धा रक्खे, ऐसे उन्मादी को देवग्रहसे जायमान रोग समझना चाहिए ॥ १८ ॥ (जिस को क्रोध हमेशा आया करता हो, शरीरके सारे अवयव ढीले पड़ गए हों, मुँह से लार अथवा फेन गिरा करता हो । नींद ज्यादा आए, शरीर में कभी कभी कँपकँपी आजाया करती हो, गूँगा सा बना रहे, ऐसे रोगी को समझना चाहिए कि इसे गणमाताके प्रकोपसे उन्माद हुआ है)

देवशत्रुजुष्ट ।

संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः ।
संतुष्टो न भवति चान्नपानजातैर्दुष्टात्मा भवति स देव(शत्रु)जुष्टः॥१६॥

जिसके पसीना ज्यादा आए, ब्राह्मण, गुरु तथा देवताओं का दोष वर्णन करे, आँखें तिरछी होजायँ, किसी प्रकार का भय न रहे, विमार्ग पर विशेष दृष्टि रक्खे, अन्न पान से जिसे कभी भी तृप्ति न हो, आत्मा दूषित होजाय यानी उस में हमेशा बुरी बुरी बातें उपजा करे ऐसे रोगी को समझना चाहिए कि उसे दैत्यग्रहसे उन्माद रोग उत्पन्न हुआ है॥ १६ ॥

गन्धर्वाविष्ट ।

हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी
स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः ।
नृत्यन्वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं
गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २० ॥

जिस की आत्मा सर्वदा प्रसन्न रहे, नदी का तीर अथवा वन की स्थली ज्यादा रुचे, सदाचारी हो, गाना तथा गन्ध माल्यादि जिसे अधिक पसन्द आएँ, नाचते नाचते हँसने लगे, अच्छी और थोड़ी बातें बोले, ऐसे मनुष्यको गन्धर्वग्रहसे पीडित समझना चाहिए ॥ २० ॥

यक्षाविष्टोन्माद ।

ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी
गम्भीरो द्रुतगतिरल्पवाक् सहिष्णुः ।

तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै
यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २१ ॥

जिस की आँखें लाल रहें, महीन और लाल रंगका वस्त्र जिसे विशेष प्रिय हो, हमेशा गम्भीरप्रकृति बना रहे, जल्दी जल्दी चले फिरे, थोड़ी बातें बोले, सहनशील हो, तेजस्वी हो, किसको क्या दे डालूँ इस प्रकार जिसकी भावना रहे, उसे यक्षग्रहसे पीडित समझना चाहिए ॥ २१ ॥

पितृजुष्टोन्माद ।

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डान्
शान्तात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः ।
मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिकाम-
स्तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिजुष्टः ॥ २२ ॥

जो प्राणी कुश बिछा कर उस पर पिण्डदान देने का अभिनय करता रहे, हमेशा जिस का मन भ्रान्त रहे, अपसव्य हो कर तर्पण भी करने लगे, मांस खाने की इच्छा होवे, तिल, गुड़ तथा खीर खाने की विशेष इच्छा हो, ये लक्षण जिसमें दिखाई दें उसे पितृग्रहाविष्ट रोगी समझना चाहिए ॥ २२ ॥

सर्पाविष्टोन्माद ।

यस्तूर्व्यां प्रसरति सर्पवत्कदाचित्सृक्कण्यौ विलिहति जिह्वया तथैव।
क्रोधालुर्गुडमधुदुग्धपायसेप्सुर्ज्ञातव्यो भवति भुजङ्गमेन जुष्टः ॥२३॥

जो उन्मादी जमीनमें लेटकर साँपकी तरह रेंगे, कभी कभी दोनों गलफड़ों को जीभसे चाटे, हमेशा क्रोधातुर रहे, गुड़, मधु, दूध, खीर, खाने की विशेष इच्छा रहे, इस प्रकारके लक्षणोंवाले रोगी को सर्पग्रहाविष्ट उन्मादी समझना चाहिए ॥ २३ ॥

राक्षसाविष्ट उन्माद ।

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सु-
र्निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः ।

क्रोधालुर्विपुलबलो निशाविहारी
शौचद्विड् भवति स राक्षसैर्गृहीतः ॥ २४ ॥

जो प्राणी मांस, रक्त और अनेक तरहकी मदिराके सेवन की अभिलाषा रक्खे, किसी प्रकार की लज्जा न करे, जिसका हृदय बिल्कुल निष्ठुर हो जाय, पराक्रम भी पर्याप्त हो, क्रोध हमेशा चढ़ा रहे, बहुत बल रहे, रातमें भी घूमता रहे, पवित्रतासे शत्रुता रक्खे, ऐसे उन्मादरोगी को राक्षस ग्रहाविष्ट रोगी समझना चाहिए ॥ २४ ॥

पिशाचाविष्ट उन्माद ।

उद्धस्तः कृशपरुषोऽचिरप्रलापी
दुर्गन्धो भृशमशुचिस्तथाऽतिलोलः ।
बह्वाशी विजनवनान्तरोपसेवी
व्याचेष्टन् भ्रमति रुदन् पिशाचजुष्टः ॥ २५ ॥

जो उन्मादी ऊपर हाथ उठाए रहे, शरीरसे दुर्बल हो गया हो और हृदयमें कठोरता आगयी हो, ऊटपटांग बातें करता रहे, शरीर से दुर्गन्ध निकलता रहे, अपवित्र और चंचल प्रकृति का रहे, ज्यादा खाना खाय, एकान्त तथा वन आदि में रहना जिसे विशेष अच्छा लगे, रोता हुआ इधर उधर घूमे, ऐसे रोगी को पिशाचसेवित उन्मत्त जानना चाहिए ॥ २५ ॥

असाध्यत्व ।

स्थूलाक्षो द्रुतमटनः स फेनलेही
निद्रालुः पतति च कम्पते च यो हि ।
यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः स्यात्
सोऽसाध्यो भवति तथा त्रयोदशाब्दे ॥ २६ ॥

जिसकी आंखें बड़ी बड़ी हो जायँ, शीघ्रता के साथ इधर उधर भागता फिरे, फेनादार चीजें चाटता रहे, नींद विशेष आए, गिरता पड़ता रहे, कँपकँपी भी आया करे, पर्वत, हाथी तथा वृक्ष आदि पर

चढ़ कर कूदना चाहे, इस प्रकारका उन्माद जिस रोगीमें १३ वर्ष तक बना रहे तो वह असाध्य होजाया करता है ॥ २६ ॥

देवादिकों का ग्रहणकाल ।

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययोरपि ।
गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपद्यथ ॥ २७ ॥
पित्र्याः कृष्णक्षये हिंस्युः पञ्चम्यामपि चोरगाः ।
रक्षांसि रात्रौ पैशाचाश्चतुर्दश्यां विशन्ति हि ॥ २८ ॥
(ग्रहा गृह्णन्ति ये येषु तेषां तेषु विशेषतः ।
दिनेषु बलिहोमादीन् प्रयुञ्जीत चिकित्सकः ॥ २९ ॥)

देवग्रह ज्यादातर पूर्णिमाको, दैत्यग्रह सुबह शामके समय, गन्धर्वग्रह प्रायः अष्टमीको, यक्षग्रह प्रतिपदा (पड़वा) को, पितृग्रह अमावस्या को, सर्पग्रह पञ्चमीको, राक्षस रात्रिके समय और चतुर्दशी तिथिको लगा करते हैं ॥ ॥ २७ ॥ २८ ॥ (चिकित्सकको चाहिए कि जिन जिन तिथियों में जिन ग्रहोंका प्रवेश बतलाया है उन उन तिथियोंको उन उन ग्रहोंके लिए बलि होमादि करवाए ॥ २९ ॥)

उपसंहार ।

दर्पणादीन् यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा ।
स्वमणिं भास्करार्चिश्च यथा देहं च देहधृक् ।
विशन्ति च न दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणः ॥ ३० ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने उन्मादनिदानं समाप्तम् ॥ २० ॥

जिस तरह दर्पण आदिमें छाया प्रवेश करती है, जैसे प्राणीके शरीर पर सर्दी गर्मीका प्रभाव पड़ता है, जिस प्रकार सूर्यकी किरणें सूर्यकान्तमणि में प्रविष्ट होकर आग निकालने लगती हैं लेकिन उन्हें उसमें प्रविष्ट होते कोई नहीं देख पाता । जैसे प्रत्येक प्राणी में जीव रहता है किन्तु वह किसीको दिखाई नहीं पड़ता, उसी तरह ऊपर कहे हुए ग्रह प्राणियोंमें प्रविष्ट होजाते हैं और कोई उन्हें नहीं देखता ॥ ३० ॥

इति मञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने उन्मादनिदानम् ॥ २० ॥

अथापस्मार (मृगीरोग) निदानम् ।

निदान ।

संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतेः ।
*अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः ॥ १ ॥

जिस किसी रोगमें प्राणीको यह मालूम हो कि मैं घने अन्धकार में आगया हूँ । संरम्भ हो यानी नेत्र टेढ़े बेंढे होजायँ, रोगी हाथ पैर फेंकने लगे, सुधिबुधि जाती रहे, उसे भयंकर अपस्मार रोग समझना चाहिए, वह पांच प्रकारका होता है ॥ १ ॥

पूर्वरूप ।

हृत्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्च्छा प्रमूढता ।
निद्रानाशश्च तस्मिंश्च भविष्यति भवत्यथ ॥ २ ॥

जब हृदय कांपने लगे या शून्य होजाय, पसीना आने लगे, चिन्ता घेरले, बेहोशी आजाय, इन्द्रियां मुग्ध होजायँ तो समझ लेना कि अब मृगी रोग होनेवाला है, ये ही मृगीके पूर्वरूप हैं ॥ २ ॥

वातज मृगी के लक्षण ।

कम्पते प्रदशेद्दन्तान् फेनोद्वामी श्वसित्यपि ।
परुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥ ३ ॥

वातके प्रकोपसे जायमान अपस्मारमें प्राणी कांपने लगता, दांत पीसता, मुँहसे बार बार फेन फेंकता, लम्बी लम्बी सांस लेता, उसके सामने काला लाल तथा काला स्वरूप दिखाई देता है ॥ ३ ॥

पैत्तिक अपस्मार ।

पीतफेनाङ्गवक्त्राक्षः पीतासृग्रूपदर्शकः ।
सतृष्णोष्णानलव्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिकः ॥ ४ ॥

---

* स्मृतिभूतार्थविज्ञानमपस्तत्परिवर्जने ।
अपस्मार इति प्रोक्तस्ततोऽयं व्याधिरंतकृत् ॥

पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न मृगीरोगमें रोगीका फेन, अंग, मुँह और आखें पीली पड़ जातीं और पीला तथा लाल रूप दिखाई देता है। उसे सारा संसार सतृष्ण, उष्ण, आगसे भरा हुआ दीखता है ॥ ४ ॥

कफज अपस्मार।

शुक्लफेनाङ्गवक्त्राक्षः शीतहृष्टाङ्गजो गुरुः।
पश्येच्छुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिको मुच्यते चिरात् ॥५॥

जिसके मुखसे निकला हुआ फेन, शरीरके अंग, मुँह और आंखें उज्वलवर्णकी हों, सारा अङ्ग ठंढा रहे, रोंगटे खड़े होजायँ, शरीर भारी रहे, संसारकी सब वस्तुयें सफेद ही दिखाई दें तो समझना चाहिए कि कफके प्रकोपसे अपस्मार की उत्पत्ति हुई है। उस रोगीका पिंड इस रोगसे जल्दी नहीं छूटता ॥ ५ ॥

सन्निपातज अपस्मार।

सर्वैरेतैः समस्तैश्च लिङ्गैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः।
अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्यानवश्च यः ॥६॥
प्रस्फुरन्तं सुबहुशः क्षीणं प्रचलितभ्रुवम्।
नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥ ७ ॥

जिसमें उपर्युक्त तीनों दोषोंके लक्षण स्पष्ट दीखें उसे सन्निपातात्मक अपस्मार समझना चाहिए। यह असाध्य होता है। यदि यह क्षीण पुरुषको हो तो अतिशय असाध्य तथा पुराना होजाने परभी असाध्य होता है॥ ६ ॥ जिस रोगीको बार बार कँपकँपी आवे, रोगी बिल्कुल क्षीण होगया हो, भौंहें नाचती रहें, नेत्र विकृत हो गए हों ऐसे अपस्मार रोगवालेको यह मारही डालता है ॥ ७ ॥

मृगी का प्रकोपकाल।

पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः।
अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किंचिदथान्तरम् ॥ ८ ॥
देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ बीजानि कानिचित्।

शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुच्छ्रयाः ॥ ९ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदानेऽपस्मारनिदानं समाप्तम् ॥ २१ ॥

पन्द्रह दिनमें, बारह दिनमें अथवा एक मासमें वातादि दोष कुपित होकर इस रोगको जन्म देते हैं। ऐसा नियम होने पर भी कभी कभी आगे पीछे मृगी रोग उत्पन्न होजाया करता है। जैसे पानी बरसने पर भी बहुतसे बीज नहीं उगते और कितने पानीकी अपेक्षा किए विना ही बरसात ऋतुके अतिरिक्त शरद आदि ऋतुमें भी उग आया करते हैं॥८॥९॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासमन्विते माधवनिदानेऽपस्मारनिदानम् ॥ २१ ॥

अथ वातव्याधिनिदानम् ।

निदान ।

रूक्षशीताल्पलघ्वन्नव्यवायातिप्रजागरैः ।
विषमादुपचाराच्च दोषासृक्स्रवणादपि ॥ १ ॥
लङ्घनप्लवनात्यध्वव्यायामादिविचेष्टितैः ।
धातूनां संक्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्षणात् ॥ २ ॥
वेगसंधारणादामादभिघातादभोजनात् ।
मर्माघाताद्गजोष्ट्राश्वशीघ्रयानादिसेवनात् ॥ ३ ॥
देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली ।
करोति विविधान् व्याधीन् सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयान् ॥ ४ ॥

रूखे, ठंढे, थोड़े और हल्के अन्नके भोजन करनेसे, ज्यादा स्त्रीप्रसंग करनेसे, रातको ज्यादा जागनेसे, समय पर भोजन स्नानादि न करनेके कारण, वात पित्तादि दोषों तथा रुधिरके अधिक बह जानेसे, उपवास करने, कूदने, फांदने, ज्यादा रास्ता चलने, शक्तिसे अधिक व्यायाम करने, अधिक काम करने, धातुके क्षीण होजाने, चिन्ता, रोग, शोक आदिसे क्षीण होने, मल मूत्र आदिके वेग रोकने, खाया हुआ अन्न न

पचने, किसी मर्मस्थानमें चोट लगजाने, हाथी, घोड़े, ऊंट आदिकी सवारी करके जोरोंसे दौड़नेके कारण बली वायु देहकी खाली नसोंमें भर जाता और समस्त शरीरमें या शरीर के किसी एक अंगमें नाना प्रकारके वातसम्बन्धी रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ १-४ ॥

पूर्वरूप और आत्मरूप की व्याख्या।

अव्यक्तं लक्षणं तेषां पूर्वरूपमिति स्मृतम्।
आत्मरूपं तु यद्व्यक्तमपायो लघुता पुनः ॥ ५ ॥

ऊपर कहे वात रोगका अव्यक्त (अस्पष्ट) लक्षण पूर्वरूप कहलाता एवं स्पष्ट दिखाई पड़ता हुआ लक्षण आत्मरूप कहलाता है। वह वायु कहीं तो कुपित होकर प्राणीको मार डालता और कहीं लघु यानी साधारण रूपसे सदा बना रहता है, बिल्कुल उसका नाश नहीं हुआ करता ॥ ५ ॥

वातव्याधि के लक्षण।

संकोचः पर्वणां स्तम्भो भङ्गोऽस्थ्नां पर्वणामपि।
रोमहर्षः प्रलापश्च पाणिपृष्ठशिरोग्रहः ॥ ६ ॥
खाञ्ज्यपाङ्गुल्यकुब्जत्वं शोथोऽङ्गानामनिद्रता।
गर्भशुक्ररजोनाशः स्पन्दनं गात्रसुप्तता ॥ ७ ॥
शिरोनासाक्षिजत्रूणां ग्रीवायाश्चापि हुण्डनम्।
भेदस्तोदोऽर्तिराक्षेपो मुहुश्चायास एव च ॥ ८ ॥

जिस प्राणी को वात रोग होता है उसके अंग सिकुड़ जाया करते, शरीर की जोड़ें जकड़ जाया करतीं, हड्डियाँ और जोड़ें फटने लगतीं, रोंगटे खड़े हो जाते, रोगी अनाप सनाप बकने लगता, हाथ, पीठ तथा सिर दुखने लगता, रोगी लँगड़ा, पंगु अथवा कुबड़ा हो जाता, शरीर के अंग सोथ आते, नींद नहीं आती, स्त्री का गर्भ और रज तथा पुरुष का वीर्य नष्ट होजाता, अंग काँपने लगते या बेकार होजाते, सिर, नाक, आँख, हँसलियाँ और गला टेढ़ा होजाता या ये सब टूटने लगतेहैं। किसी चीज़ से कोंचने के समान या चिलक से भरी पीड़ा होती, अंग सिकुड़ जाते, जब तब

बेहोशी आ जाती और शरीर में सर्वदा थकावट बनी रहा करती है॥६-८॥

विशेष विवरण ।

एवंविधानि रूपाणि करोति कुपितोऽनिलः ।
हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेषकृत् ॥ ९ ॥

वायु कुपित होकर आगे कहे जानेवाले उपद्रवोंको करता और हेतु तथा स्थानकी विशेषतासे इनके अतिरिक्त और भी अनेक रोगोंकी उत्पत्तिका कारण बन जाता है ॥ ९ ॥

कोष्ठगत वात के लक्षण ।

तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः ।
ब्रध्नहृद्रोगगुल्मार्शः पार्श्वशूलं च मारुते ॥ १० ॥
सर्वाङ्गकुपिते वाते गात्रस्फुरणभञ्जनम् ।
वेदनाभिः परीताश्च स्फुटन्तीवास्य सन्धयः ॥ ११ ॥

यदि वायु कुपित होकर कोठेमें रुकता तो मल मूत्रका अवरोध हो जाता, फोते बढ़ जाते, हृद्रोग, प्लीहा, वायुगोला, बवासीर, पार्श्वशूल आदि रोग उत्पन्न हो जाया करते हैं। जब सारे शरीरमें वायु कुपित हो जाता तो अंग फड़कने या फटने लगते और शरीरकी हर एक जोड़ें मारे वेदनाके फटने लगती हैं ॥ १० ॥ ११ ॥

गुदास्थित वात के लक्षण ।

ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मशर्कराः ।
जङ्घोरुत्रिकपात्पृष्ठरोगशोषो गुदे स्थिते ॥ १२ ॥

जब वायु कुपित होकर गुदामें रुकता तो मल मूत्रका होना रुक जाता, पेटमें शूल उठने लगता, पेट फूल जाता, पथरी तथा शर्करा रोग होजाता, जाँघ, ऊरु, पीठकी रीढ़, हृदय एवं पीठमें किसी प्रकारका रोग खड़ा हो जाता या ये स्थान सूज जाया करते हैं ॥ १२ ॥

आमाशयगत वायुके लक्षण ।

रुक् पार्श्वोदरहृन्नाभेस्तृष्णोद्गारविसूचिकाः ।
कासः कण्ठास्यशोषश्च श्वासश्चामाशयस्थिते ॥ १३ ॥

वायुके आमाशयमें कुपित होनेपर पसलियाँ, पेट, हृदय और नाभीमें पीड़ा होती, बार बार प्यास लगती, डकारें आती रहतीं, हैजा हो जाता, खाँसी आने लगती, गला और मुँह सूज जाता और श्वासका भी वेग बढ़ जाता है ॥ १३ ॥

पक्वाशयगत वात के लक्षण ।

पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलाटोपौ करोति च ।
कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनाम् ॥ १४ ॥
श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्याद्दुष्टसमीरणः ।

जब वायु पक्वाशयमें रुकता तो उदरमें घलघलाहट होती, शूल उठता और पेट फूल जाता है। मल मूत्र बड़ी कठिनाईसे उतरता, पेट तना रहता और रीढ़में दर्द होने लगती है। यदि वायु कुपित होकर कर्ण आदि इन्द्रियोंमें रुक जाता तो उनको नष्ट कर डालता है ॥ १४ ॥

चर्मस्थित वातके लक्षण ।

त्वग्रूक्षा स्फुटिता सुप्ता कृशा कृष्णा च तुद्यते ।
आतन्यते सरागा च पर्वरुक् त्वग्गतेऽनिले ॥ १५ ॥

यदि वायु कुपित होकर त्वचारूप रसमें पहुँचता तो त्वचा सूख जाती, जहाँ तहाँ दरारें पड़ जातीं, त्वचा शून्य और पतली हो जाती है। उसका रंग काला हो जाता, किसी चीज़से कोंचनेके समान दर्द होने लगती, त्वचा तन जाया करती अथवा लाल रंगकी हो जाती और सारे शरीरकी त्वचामें पीड़ा होने लगती है ॥ १५ ॥

असृग्गत वातके लक्षण ।

रुजस्तीव्राः ससन्तापा वैवर्ण्यं कृशताऽरुचिः ।
गात्रे चारूंषि भुक्तस्य स्तम्भश्चासृग्गतेऽनिले ॥ १६ ॥

जब वायु रक्तमें पहुँचकर कुपित होता तो सन्तापके साथ साथ तीव्र पीड़ा होती, आकृति बिगड़ जाती, शरीर दुर्बल हो जाता, कुछ खाने पीनेकी रुचि नहीं रह जाती, भोजन करनेके पश्चात् शरीर दुखता और पेट जकड़ जाया करता है ॥ १६ ॥

मांसमेदोगत वातके लक्षण ।

गुर्वङ्गं तुद्यतेऽत्यर्थं दण्डमुष्टिहतं यथा ।
सरुक् श्रमितमत्यर्थं मांसमेदोगतेऽनिले ॥ १७ ॥
मेदोऽस्थिपर्वणां सन्धिशूलं मांसबलक्षयः ।
अस्वप्नः संतता रुक् च मज्जास्थिकुपितेऽनिले ॥ १८ ॥

जब वायु कुपित होकर मांस और मेदमें पहुँचता तो शरीरमें कोंचने के समान व्यथा होती, सारे अङ्ग जकड़ जाया करते, लाठीकी मार या मुक्का मारनेके समान पीड़ा होने लगती और दर्दके साथ साथ शरीरमें थकावट मालूम होती है॥१७॥जब हड्डियाँ फटने लगें, शरीरकी जोड़ोंमें शूल सा चुभे, मांस और बलका नाश हो जाय, नींद न आए, और हमेशा प्रत्येक अंगोंमें पीड़ा हुआ करे ये सब उपद्रव तब होते हैं जब वायु कुपित होकर मज्जास्थानमें रुक जाता है ॥ १८ ॥

शुक्रस्थ वातके लक्षण ।

क्षिप्रं मुञ्चति बध्नाति शुक्रं गर्भमथापि वा ।
विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः ॥ १९ ॥

जब वायु कुपित होकर शुक्रस्थानमें रुकता तो पुरुषका वीर्य जल्दी गिर जाता एवं स्त्री गर्भ शीघ्र धारण करती और गर्भ तथा वीर्यमें किसी न किसी प्रकारका विकार उत्पन्न हो जाया करता है ॥ १९ ॥

सिरागत वात के लक्षण ।

कुर्यात्सिरागतः शूलं सिराकुञ्चनपूरणम् ।
स बाह्याभ्यन्तरायामं खल्लीं कौब्ज्यमथापि वा ॥ २० ॥
सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्च कुर्यात्स्नायुगतोऽनिलः ।

जब नाड़ियोंमें पहुँचकर वायु दूषित होता तो शरीरमें शूल उठने लगता, नसें जकड़ जातीं या फूल जाती हैं। भीतर बाहर दोनों ओर नसें तन जातीं और मनुष्य कुबड़ा हो जाया करता है। इसको लोग खल्लीरोग कहते हैं ॥ २० ॥

सन्धिगत वात के लक्षण ।

हन्ति सन्धिगतः सन्धीन् शूलाटोपौ करोति च ॥ २१ ॥

स्नायु में पहुँच कर जब वायु कुपित होता तो शरीर के सब अङ्गों अथवा किसी एक अङ्ग में कोई रोग उत्पन्न करता है। सन्धि यानी जोड़ों में रहनेवाला पवन वहाँ पर शूल अथवा शोथ को जायमान किया करता है ॥ २१ ॥

कफ तथा पित्तसे आवृत प्राणादि के लक्षण ।

प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते ।
दौर्बल्यं सदनं तन्द्रा वैरस्यं च कफावृते ॥ २२ ॥
उदाने पित्तयुक्ते तु दाहो मूर्च्छा भ्रमः क्लमः ।
अस्वेदहर्षौ मन्दोऽग्निः शीतता च कफावृते ॥२३॥
स्वेददाहौष्ण्यमूर्च्छाः स्युः समाने पित्तसंवृते ।
कफेन सक्ते विण्मूत्रे गात्रहर्षश्च जायते ॥ २४ ॥
अपाने पित्तयुक्ते तु दाहौष्ण्यं रक्तमूत्रता ।
अधःकाये गुरुत्वं च शीतता च कफावृते ॥ २५ ॥
व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं क्लमः ।
स्तम्भनो दण्डकश्चापि शूलशोथौ कफावृते ॥ २६ ॥

मनुष्य के भीतर रहनेवाला प्राणवायु पित्त से घिर जाता तो वमन और दाह होने लगती है, कफ से ढँक जाता तो दुर्बलता और ग्लानि होती तथा मुख का स्वाद बिगड़ जाया करता है, यदि उदान वायु पित्त से घिर जाता तो शरीर में दाह होती, बार बार मूर्च्छा आती, चक्कर आने लगता, हृदय में ग्लानि होती और थकावट मालूम पड़ने लगती है। शरीर से पसीना निकलना बन्द हो जाता, कफ से घिर जाने पर प्रसन्नता जाती रहती, अग्नि मन्द पड़ जाता और शरीर में हमेशा ठंढक मौजूद रहती है। यदि समान वायु पित्त से घिर जाता तो

पसीना अधिक आता, शरीरमें जलन सी बनी रहती, कभी कभी मूर्छा आ जाया करती है। और यदि समान वायु पित्त और कफ से घिर जाता तो मल मूत्र अधिक होने लगता और रोंगटे खडे हो जाया करते हैं। अपान वायु पित्तयुक्त होता तो दाह व उष्णता होती और मूत्र के साथ साथ रक्त भी गिरने लगता है। शरीर का निचला भाग भारी होता, शरीरमें दाह होती, रोगी हाथ पैर फेंकने लगता और उसे थकावट मालूम होती है। उसीतरह व्यान वायु के कफावृत होने पर शरीर में स्तम्भन, शोथ और शूल उत्पन्न हो जाया करता है॥ २२-२६॥

आक्षेपक के सामान्य लक्षण।

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः।
तदाऽऽक्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः॥ २७॥
मुहुर्मुहुश्चाक्षेपणादाक्षेपक इति स्मृतः।

जब वायु कुपित होकर शरीर की प्रत्येक नाड़ियों में व्याप्त हो जाता तो प्राणी बार बार अङ्ग उठा उठा कर पटकता और बार बार उछलता है। इसी लिये लोग इसे आक्षेपक वात कहते है॥ २७॥

अपतन्त्रक और अपतानक के लक्षण।

क्रुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्ध्वं प्रपद्यते॥ २८॥
पीडयन् हृदयं गत्वा शिरःशङ्खौ च पीडयन्।
धनुर्वन्नमयेद्गात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्तदा॥ २९॥
स कृच्छ्रादुच्छ्वसेच्चापि स्तब्धाक्षोऽथ निमीलकः।
कपोत इव कूजेच्च निःसंज्ञः सोऽपतन्त्रकः॥ ३०॥
दृष्टिं संस्तभ्य संज्ञां च हत्वा कण्ठेन कूजति।
हृदि मुक्ते नरः स्वास्थ्यं याति मोहं वृते पुनः॥ ३१॥
वायुना दारुणं प्राहुरेके तदपतानकम्।

जब कुपित करानेवाले कारणों से वायु कुपित हो जाता तो वह

अपने नियत स्थान से ऊपर उठता हुआ हृदय को पीड़ित करके मस्तक और कनपटी को पीड़ित किया करता है। उस अवस्था में प्राणी अङ्गों को धनुष की तरह झुकाया करता, इधर उधर फेंकता और मूर्च्छित हो जाया करता है। उसे साँस लेने में भी कठिनाई पड़ती है। आँखें स्थिर हो जातीं और बड़ी देर तक पलक नहीं गिरती। रोगी कबूतर की तरह गूँ गूँ किया करता और होशो हवास ठिकाने नहीं रहता इसी लिए इसे वैद्यगण अपतन्त्रक रोग कहते हैं। जब वायु दृष्टि तथा सुधि बुधि को काबू में कर लेता तो रोगी कण्ठ से कराहा करता है। वायु जब हृदय को छोड़ देता तो रोगी चैतन्य हो जाता और जब फिर हृदय में आ जाता तो मूर्च्छित हो जाया करता है। वायु के कारण यह बड़ा दारुण रोग माना जाता है। लोग इसे अपतन्त्रक रोग भी कहते हैं॥ २९–३१॥

दण्डापतानक के लक्षण।

कफान्वितो भृशं वायुस्तास्वेव यदि तिष्ठति॥ ३२॥
दण्डवत्स्तम्भयेद्देहं स तु दण्डापतानकः।

जब कफके साथ वायु कुपित होकर शरीरकी नसोंमें ठहरता है तो सारे शरीरकी नसें दण्डके समान तन जाया करती हैं इससे शरीर भर जकड़ उठता है। इसको लोग दण्डापतानक रोग कहते हैं॥ ३२॥

धनुस्तम्भ के लक्षण।

धनुस्तुल्यं नमेद्यस्तु स धनुस्तम्भसंज्ञकः॥ ३३॥

जो वायु कुपित होकर शरीरको धनुषकी नाईं झुका दे उसे धनुस्तम्भक रोग कहते हैं॥ ३३॥

अन्तरायाम के लक्षण।

अङ्गुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः।
स्नायुप्रतानमनिलो यदाऽऽक्षिपति वेगवान्॥ ३४॥
विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन्।
अभ्यन्तरं धनुरिव यदा नमति मानवम्॥ ३५॥

तदाऽस्याभ्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली ।
बाह्यस्नायुप्रतानस्थो बाह्यायामं करोति च ॥ ३६ ॥
तमसाध्यं बुधाः प्राहुर्वक्षःकट्यूरुभञ्जनम् ।

उँगली, घुटने, पेट, हृदय, छाती और गला इन स्थानोंमें आकर वेगवान् वायु जालकी तरह सारे शरीरको तान देता है तो आँखें तन जातीं, दोनों कन्धे जकड़ जाते, पसलियाँ टेढी बेंढ़ी हो जातीं, मुँहसे बार बार कफ गिरने लगता है। और जब अभ्यन्तर यानी पेट की तरफ का भाग झुक जाय तब वह बली पवन अभ्यन्तरायाम नामक रोग को जन्म देता है। जब बाहर की पतली नसों में वायु पहुँच कर कुपित होता तो बाह्यायाम नामक रोग को उत्पन्न करता है। इसके होने पर छाती कमर पसलियाँ तथा फीलियाँ फटने लगती हैं। पण्डित गण इस रोग को असाध्य कहते हैं ॥ ३४-३६ ॥

चतुर्थ आक्षेपक का लक्षण ।

कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः ॥ ३७ ॥
कुर्यादाक्षेपकं त्वन्यं चतुर्थमभिघातजम् ।

कफ और वायु मिल कर अथवा केवल वायु ही चौथे अभिघातज आक्षेपक नामक रोग को उत्पन्न करता है। इसके लक्षण "यदा तु धमनीः सर्वाः" इत्यादि श्लोंको से पहले ही बता आए हैं। कफ पित्तान्वित इत्यादि भेदों से यह आक्षेपक रोग चार प्रकार का हुआ करता है जैसे—कफान्वित वायु से, पित्तान्वितवायु से, केवल वायु से तथा किसी दण्ड आदि की चोट लगने से ॥ ३७ ॥

असाध्यत्व ।

गर्भपातनिमित्तश्च शोणितातिस्रवाच्च यः ॥ ३८ ॥
अभिघातनिमित्तश्च न सिध्यत्यपतानकः ।

जो अपतानक रोग गर्भपात के कारण अथवा अधिक रुधिर बहने से, तथा किसी प्रकार के अभिघात से होता वह असाध्य हुआ करता है ॥३८॥

पक्षाघात के लक्षण ।

गृहीत्वाऽर्धं तनोर्वायुः सिराः स्नायूर्विशोष्य च ॥३९॥
पक्षमन्यतरं हन्ति सन्धिबन्धान्विमोक्षयन् ।
कृत्स्नोऽर्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः ॥ ४० ॥
एकाङ्गरोगं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः ।
सर्वाङ्गरोगस्तद्वच्च सर्वकायाश्रितेऽनिले ॥ ४१ ॥

अब पक्षाघात के लक्षण बतलाते हैं—जो वायु शरीर के अर्धभाग में रुक कर सिरा और स्नायु को सुखा कर दाहिने बाएँ किसी अंग को नष्ट कर देता है। ऐसी अवस्था में सारा अर्धभाग का अंग अकर्मण्य हो जाता है लोग उस को एकांगरोग, पक्षवध अथवा पक्षाघात कहते हैं। उसी प्रकार वायु जब सब अंगों में प्रवेश कर जाता तो शरीर के समस्त अंग बेकार हो जाते इसी लिए लोग उसे सर्वाङ्ग रोग कहा करते हैं ॥३९–४१॥

पित्तज तथा कफज पक्षाघात ।

दाहसन्तापमूर्च्छाः स्युर्वायौ पित्तसमन्विते ।
शैत्यशोथगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफान्विते ॥ ४२ ॥

जब वायु पित्त के साथ नसों में व्याप्त होता तो प्राणी को दाह, सन्ताप और मूर्छा होती है। जब कफ के साथ वायु व्याप्त होता तो शरीर में ठंढक, शोथ तथा अंगों में भारीपन हो जाया करता है ॥ ४२ ॥

शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः ।
साध्यमन्येन संयुक्तमसाध्यं क्षयहेतुकम् ॥ ४३ ॥

यदि केवल वायु के प्रकोप से पक्षाघात हो तो कृच्छ्रसाध्य होता और यदि किसी एक दोष के साथ हो तो साध्य एवं सन्निपात से जायमान हो तो यह पक्षाघात असाध्य हुआ करता है ॥ ४३ ॥

अर्दित के लक्षण ।

उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि वा ।
हसतो जृम्भतो वाऽपि भाराद्विषमशायिनः ॥ ४४ ॥

शिरोनासौष्ठचिबुकललाटेक्षणसन्धिगः ।
अर्दयत्यनिलो वक्त्रं मर्दितं जनयत्यतः ।
वक्रीभवति वक्त्रार्धं ग्रीवा चाप्यपवर्तते ॥ ४५ ॥
शिरश्चलति वाक्सङ्गो नेत्रादीनां च वैकृतम् ।
ग्रीवाचिबुकदन्तानां तस्मिन्पार्श्वे च वेदना ॥ ४६ ॥

ज्यादा ऊँचे स्वर से पढ़ने के कारण, कड़ी चीजें खाने से, हँसने, जँभाई लेने, किसी ऊँचे स्थान से नीचे उतरने और विना समय सोजाने से पवन कुपित होकर सिर, नाक, होंठ, ठुड्डियों, ललाट, आँखें तथा शरीर की जोड़ों में पहुँचता एवं मुख को विशेष पीडित करता है। ऐसी अवस्था में रोगी का मुँह टेढ़ा होजाता, ग्रीवा झुक जाती, माथा हीलने लगता और बोलना भी कठिन मालूम होता है, नेत्रादिकोंमें कई प्रकार के विकार होजाया करते हैं। ग्रीवा, दाढ़ी, दाँत, पसली आदि में भी पीड़ा होने लगती है ॥ ४४-४६ ॥

(यस्याग्रजो रोमहर्षो वेपथुर्नेत्रमाविलम् ।
वायुरूर्ध्वं त्वचि स्वापस्तोदो मन्याहनुग्रहः ॥ ४७ ॥
तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं व्याधिविचक्षणाः ।)

जिस के रोंगटे खड़े हो जायँ, शरीर काँपने लगजाय, आँखें साफ न रहजायँ, वायु कुपित होकर त्वचा में आजाय, किसी चीज से कोंचने के समान दर्द हो, नींद ज्यादा आए, पेट फूलजाय तो व्याधि के जानने में निपुण वैद्य गण ऐसे रोगको अर्दित रोग कहते हैं ॥ ४७ ॥

आर्दित के असाध्य लक्षण ।

क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः ॥ ४८ ॥
न सिध्यत्यर्दितं गाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च ।
गते वेगे भवेत् स्वास्थ्यं सर्वेष्वाक्षेपकादिषु ॥ ४९ ॥

जो रोगी विल्कुल क्षीण होगया हो, नेत्र से पलकें न मारी जाती

हों, साफ साफ बातें भी न कर सकता हो और तीन वर्ष तक शरीर बराबर काँपता रहा हो ऐसे रोगी के लिए यह अर्दित रोग असाध्य हुआ करता है। ऊपर कहे आक्षेपक आदि रोगों का वेग नष्ट हो जाता तो कुछ स्वास्थ्य लाभ होता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

हनुग्रह के लक्षण।

जिह्वानिर्लेखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः।
कुपितो हनुमूलस्थः स्रंसयित्वाऽनिलो हनुम् ॥ ५० ॥
करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम्।
हनुग्रहः स तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम् ॥ ५१ ॥

किसी सूखी लकड़ी की दातौन करके जीभी करने के कारण, सूखे अन्न खाने से या किसी प्रकार के अभिघात से चौभड़ की जड़ में रहने वाला वायु कुपित होजाता और दाढ़ को नीचे बिठाल देता है ऐसी हालत में मुँह या तो खुला का खुला रहजाता या बिल्कुल मुँदही जाता है फिर खुलने नहीं देता। इस रोग को लोग हनुग्रह रोग कहते हैं। इस के होने से प्राणी को कोई चीज़ चाबना या बात चीत करना तक मुश्किल होजाता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

मन्यास्तम्भ के लक्षण।

दिवास्वप्नासमस्थानविवृतोर्ध्वनिरीक्षणैः।
मन्यास्तम्भं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणाऽऽवृतः ॥ ५२ ॥

दिन में नीची ऊँची जगह शयन करने और आँखें फाड़ कर ऊपर की ओर निहारने से वायु कुपित होकर कफ से आवृत हो जाता एवं गर्दन के ऊपरी हिस्से को बिल्कुल तान दिया करता है इसी को मन्यास्तम्भ रोग कहते हैं ॥ ५२ ॥

जिह्वा स्तम्भके लक्षण।

वाग्वाहिनीसिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः।
जिह्वास्तम्भः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता ॥ ५३ ॥

बात चीत करानेवाली नसोंमें रहनेवाला वायु कुपित होकर जीभको जकड़ दिया करता है। इसीको लोग जिह्वास्तम्भ रोग कहते हैं। इसके होने से खाने पीने और बातचीत करनेमें प्राणी असमर्थ होजाता है ॥५३॥

सिराग्रह के लक्षण ।

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्धधराः सिराः ।
रूक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्यात्सिराग्रहः॥५४॥

सिरके ऊपरी भाग की नसोंके रक्तमें पहुँच कर वायु सारी नसोंको रूखी कृष्णवर्ण की एवं पीडायुक्त कर देता है। इस असाध्य रोगको लोग सिराग्रह रोग कहते हैं ॥ ५४ ॥

गृध्रसी के लक्षण ।

स्फिक्पूर्वा कटिपृष्ठोरुजानुजङ्घापदङ्क्रमात् ।
गृध्रसी स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पन्दते मुहुः ॥ ५५ ॥
वाताद्वातकफात्तन्द्रा गौरवारोचकान्विता ।
[वातजायां भवेत्तोदो देहस्यापि प्रवक्रता ।
जानुकट्यूरुसंधीनां स्फुरणं स्तब्धता भृशम् ॥ ५६ ॥
वातश्लेष्मोद्भवायां तु निमित्तं वह्निमार्दवम् ।
तन्द्रा मुखप्रसेकश्च भक्तद्वेषस्तथैव च ॥ ५७ ॥]

कमर से लेकर पीठ, ऊरु, घुटने, जाँघें, पैर आदिमें वायु क्रम क्रम से कड़ापन पैदा करता और अन्तमें चारों ओरसे जकड़ दिया करता है। इसे लोग गृध्रसी रोग कहते हैं। इसके होने पर कोंचने के समान वेदना होती, शरीर बार बार कँपा करता है। यह रोग केवल वायु से या वात और कफके मल से उत्पन्न होता है। इसमें शरीर भारी मालूम होता और कुछ खाने पीने की इच्छा नहीं रहती। [यदि केवल पवन के प्रकोप से यह रोग होता तो शरीरमें कोंचने की सी वेदना होती, देह, टेढ़ी बेढ़ी होजाती, घुटने, कमर, शरीर की जोड़ोंमें कँपकँपी आजाती या जकड़न पैदा होजाती है। यदि वात और श्लेष्मा, इन दोनोंके प्रकोपसे

उत्पन्न होता तो अग्नि मन्द पड़ जाती, तन्द्रा आती, मुखसे लार टपका करता और अन्न खाने की इच्छा नहीं होती ॥ ५५-५७ ॥]

विश्वाची के लक्षण ।

तलं प्रत्यङ्गुलीनां या कण्डुरा बाहुपृष्ठतः ॥ ५८ ॥
बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाची चेति सोच्यते ।

बाहुपृष्ठ (पखौरा) से लेकर उँगलियों के नीचे तक जो नस जाती है उसमें यदि वायु कुपित होकर रुक जाता तो हाथ बेकार होजाते हैं। इसकी विश्वाची संज्ञा है ॥ ५८ ॥

क्रोष्टुकशीर्ष के लक्षण ।

वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये महारुजः ॥ ५९ ॥
ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत् ।

वात तथा रक्त यदि कुपित होकर जाँघोंमें रुकजाते तो सियारके मुँह की तरह शोथ उत्पन्न होजाया करता है उसमें बड़ी वेदना होती है। लोग इसे क्रोष्टुकशीर्ष कहते हैं ॥ ५९ ॥

खञ्ज के लक्षण ।

वायुः कट्याश्रितः सक्थ्नः कण्डुरामाक्षिपेद्यदा ॥ ६० ॥
खञ्जस्तदा भवेज्जन्तुः पङ्गुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ।

कमरमें रहनेवाला वायु कुपित होकर जब किसी एक पैर की नसों को जकड़ लेता है तब प्राणी खञ्ज यानी लंगड़ा होजाता और जब दोनों पैरों की नसों को रोकलेता तो पंगु यानी हो पँगुला होजाता है ॥६०॥

खञ्जविशेष के लक्षण ।

प्रक्रामन् वेपते यस्तु खञ्जन्निव च गच्छति ॥ ६१ ॥
कलायखञ्जं तं विद्यान्मुक्तसन्धिप्रबन्धनम् ।

जो मनुष्य चलते फिरते काँपता रहता और लँगड़ाता है उसे लोग कलायखञ्ज कहते हैं। कहीं कहीं इसे खञ्जवात भी कहा गया है ॥ ६१ ॥

[वा]तकण्टक के लक्षण ।

रुक् पादे विषमन्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा॥ ६२ ॥
वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकण्टकम् ।
पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः॥ ६३ ॥
विशेषतश्चङ्क्रमतः पाददाहं तमादिशेत् ।

पैरमें दर्द होने के कारण अथवा किसी ऊँची नीची जगह पर पैर पड़जाने से वायु गाँठ को पकड़ले और पैर टेढ़ा बेढ़ा होजाय तो उसे लोग वातकण्टक कहते हैं ॥ ६२ ॥ जब वायु रक्त और पित्तसे मिल जाता तो पैरों में जलन पैदा हो जाती है। समय समय पर जलन की मात्रा घटती बढ़ती रहती है। लोग उसे पाददाह कहते हैं ॥ ६३ ॥

पादहर्ष के लक्षण ।

हृष्येते चरणौ यस्य भवेतां चापि सुप्तकौ ॥ ६४ ॥
पादहर्षः स विज्ञेयः कफवातप्रकोपतः ।

कफ और वात के प्रकोप से जिसके पैरोंमें झुनझुनाहट मालूम हो, पावों में शिथिलता आजाय, उसको लोग पादहर्ष रोग कहते हैं ॥ ६४ ॥

अपबाहुक के लक्षण ।

अंसदेशस्थितो वायुः शोषयेदंसबन्धनम् ॥ ६५ ॥
सिराश्चाकुञ्च्य तत्रस्थो जनयेदपबाहुकम् ।

अंसदेश (कन्धे) में रहनेवाला वायु दूषित होकर उस स्थानके बन्धनोंको सुखा देता और नसें बटोर कर वहाँ ही ठहर जाता है इसी कारण लोग उसे अपबाहुक रोग कहते हैं ॥ ६५ ॥

मूकलक्षण ।

आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्दवाहिनीः ॥६६॥
नरान्करोत्यक्रियकान्मूकमिन्मिनगद्गदान् ।

कफयुक्त वायु यदि शब्द व्यक्त करनेवाली नसों को समेट कर बेकार करदे तो मूक—मिन्मिन—गद्गद इन तीन रोगों को उत्पन्न

करता है। मूकसे मनुष्य गूँगा होजाता, मिन्मिन से मिनमिनाकर बोलता और गद्गद से बात चीत करते समय हँकलाता है ॥ ६६ ॥

तूनी के लक्षण ।

अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता ॥ ६७ ॥
भिन्दतीव गुदोपस्थं सा तूनी नाम नामतः ।

जो वेदना मल-मूत्राशय से उत्पन्न होकर लिंग, गुदा या भगको मानों चीड़ती फाड़ती चली जाय उसे लोग तूनी रोग कहते हैं ॥६७॥

प्रतूनी के लक्षण ।

गुदोपस्थोत्थिता या तु प्रतिलोमं प्रधाविता ॥ ६८ ॥
वेगैः पक्वाशयं याति प्रतितूनीति सोच्यते ।

यदि गुदा, लिंग अथवा भगसे पीड़ा उठकर वेगके साथ उलटा पक्वाशयकी ओर दौड़ती जाय उसको लोग प्रतूनी रोग कहते हैं ॥६८॥

आध्मान के लक्षण ।

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम् ॥ ६९ ॥
आध्मानमिति तं विद्याद्घोरं वातनिरोधजम् ।
विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम् ॥ ७० ॥
प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलितानिलम् ।

जिसमें वायु रुकजाने के कारण पेट फूल आवे और जोरोंके साथ पीड़ा हो अपान वायु बिल्कुल न निकले उसे आध्मान रोग कहते हैं। यह बड़ा विकट रोग माना गया है ॥ ६९ ॥ ऊपर कहे हुए आध्मानमें ही यदि पसलियाँ न दुखें और आमाशय से उसकी उत्पत्ति हो तो उसे प्रत्याध्मान रोग कहते हैं। यह कफ और वात के प्रकोप से हुआ करता है ॥ ७० ॥

अष्ठीला के लक्षण ।

नाभेरधस्तात्संजातः संचारी यदि वाऽचलः ॥ ७१ ॥
अष्ठीलावद्घनो ग्रन्थिरूर्ध्वमायत उन्नतः ।

वाताष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्मार्गावरोधिनीम् ॥ ७२ ॥

एतामेव रुजोपेतां वातविण्मूत्ररोधिनीम् ।

प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्यगुत्थिताम् ॥ ७३ ॥

जो वायु नाभिके नीचे भागसे उत्पन्न होकर रुकजाय या निकलता रहे, पत्थर के टुकड़े की तरह जिसमें गाँठें पड़ कर ऊपर को चढ़ती उतरती रहें और बाहरी मार्गों को रोकें तो उसे वाताष्ठीला रोग कहते हैं । जब इसीमें दर्द भी होने लगे, मल-मूत्र तथा अपानवायु रुकजायँ तो इसी को प्रत्यष्ठीला रोग कहते हैं । यह उदरमें तिरछी रहा करती है ॥७१॥७२॥७३॥

बस्तिगत वात के लक्षण ।

मारुतेऽनुगुणे बस्तौ मूत्रं सम्यक् प्रवर्तते ।

विकारा विविधाश्चात्र प्रतिलोमे भवन्ति च ॥ ७४ ॥

जब वायु बस्ति (पेडू) पर सीधी तौर से रहता तो पेशाब अच्छी तरह होता जिस रोग के होने पर शरीर के समस्त अंग काँपने लगें उसे लोग कम्प नामक वायु कहते हैं ॥ ७४ ॥

वेपथु वात के लक्षण ।

सर्वाङ्गकम्पः शिरसो वायुर्वेपथुसंज्ञकः ।

जिस वायुके दूषित होने से शरीरके समस्त अंग एवं मस्तक काँपने लगे तो लोग उसे वेपथुसंज्ञक वायु कहते हैं ।

खल्ली रोग के लक्षण ।

खल्ली तु पादजङ्घोरुकरमूलावमोटनी ॥ ७५ ॥

जिस रोग के होने पर पैर, जाँघ, घुटने पखौरेमें मूसल से कूटने की तरह पीड़ा होवे उसको खल्ली रोग कहते हैं ॥ ७५ ॥

(अधः प्रतिहतो वायुः श्लेष्मणा मारुतेन वा ।

करोत्युद्गारबाहुल्यमूर्ध्ववातः स उच्यते ॥ ७६ ॥)

(शरीरके निम्नभाग में श्लेष्माके साथ वायु रुककर बहुत सी डकारें लाता है । इस लिए लोग उसे ऊर्ध्ववातरोग कहते हैं ॥ ७६ ॥

स्थान नामादि से वातव्याधि के साध्यासाध्यत्व ।

स्थाननामानुरूपैश्च लिङ्गैः शेषान्विनिर्दिशेत् ।
सर्वेष्वेतेषु संसर्गं पित्ताद्यैरुपलक्षयेत् ॥ ७७ ॥
हनुस्तम्भार्दिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः ।
कालेन महता वाता यत्नात्सिध्यन्ति वा नवा ॥७८॥
नरान् बलवतस्त्वेतान् साधयेन्निरुपद्रवान् ।

शेष वात रोगोंका जिनका कि लक्षण यहाँ नहीं कहा गया है । उन्हें स्थान, नाम, रूप तथा लक्षणों से समझना चाहिए । वात पित्तादिकके संसर्गसे उनका उपलक्षण करना होगा ॥ ७७ ॥ हनुस्तम्भ, अर्दित, आक्षेपक, पक्षाघात और अपतानक यह महावात रोग यदि ज्यादा दिनोंके होजायँ तो शायद किसी यत्न विशेषसे अच्छे होजायँ लेकिन अधिकांश ये असाध्य ही हुआ करते हैं । यदि वात रोग नया हो और किसी प्रकार का असाधारण उपद्रव न खड़ा हुआ हो तो समझना चाहिए कि वह साध्य है, चिकित्सा करने से उसका निवारण किया जासकता है ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

वातरोग के उपद्रव ।

विसर्पदाहरुक्सङ्गमूर्च्छारुच्यग्निमार्दवैः ॥ ७९ ॥
क्षीणमांसबलं वाता घ्नन्ति पक्षवधादयः ।

जिन वातरोगोंमें रोग दिनों दिन बढ़ता जाता हो, दाहकी मात्रा विशेष रहे, पीड़ा भी होती रहे, मलमूत्र का निरोध रहे, जब तब मूर्च्छा आजाया करे, अरुचि बनी रहे, अग्नि मन्द पड़ जाय, मांस और बल क्षीण हो गया हो ऐसे रोगी को उपर्युक्त पक्षाघातादि रोग मार डालते हैं ॥ ७९ ॥

असाध्य लक्षण

शूनं सुप्तत्वचं भग्नं कम्पाध्माननिपीडितम् ।
रुजार्तिमन्तं च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् ॥ ८० ॥

यदि रोगी का समस्त शरीर शोथ आया हो, त्वचा शून्य होगई हो, हड्डियाँ फटने लगी हों, कँपकँपी आती रहे, पेट फूल जाया करे या ताव रहे, पीड़ा विशेष हो ऐसे रोगी को यह वातव्याधि मार ही डालती है ॥ ८० ॥

प्रकृतिस्थ वात के लक्षण ।

अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतिस्थितः ।
वायुः स्यात्सोऽधिकं जीवेद्वीतरोगः समाः शतम् ॥८१॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने वातव्याधिनिदानं समाप्तम् ॥ २२ ॥

जिस रोगी का पवन किसी जगह रुक न जाय प्रकृतिस्थ होकर बराबर अपना काम करता रहे । ऐसा मनुष्य जिसके किसी प्रकार का रोग न हुआ हो वह दीर्घजीवी होता है यानी सौ वर्ष तक उसकी आयु होती है ॥ ८१ ॥

इतिश्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने वातव्याधिनिदानम् ॥ २२ ॥

अथ वातरक्तनिदानम् ।

निदान ।

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः ।
क्लिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ १ ॥
कुलत्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः ।
दध्यारनालसौवीरशुक्ततक्रसुरासवैः ॥ २ ॥
विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः ।
प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम् ।
स्थूलानां सुखिनां चापि कुप्यते वातशोणितम् ॥ ३ ॥

नमकीन, खट्टा, कडुवा, खारा, चिकना, गरम और मात्रासे अधिक भोजन करनेके कारण, ज्यादा गीला या अधिक सूखा अथवा कच्चे मांसके खानेसे,

जलके समीप रहनेवाले जन्तुओंके मांस, तिल आदिके लड्डू, मूली, कुलथी, उड़द, जंगली शाक, मांस, ऊँख, दही अथवा दहीका पानी, सौवीर नामक मद्य, सिरका, मट्ठा, मद्य, ताड़ी आदि आसव का सेवन करनेके कारण प्रकृतिके विरुद्ध भोजन करने, क्रोध करने, दिनमें सोने और रातको जागनेसे, नाना प्रकारके मिथ्या आहार विहार करनेके कारण सुकुमार प्रकृतिवाले लोगों को अथवा जो लोग अधिक सुखी और मोटे शरीरवाले हैं उन पर इस वातरक्तरोगका प्रकोप हुआ करता है ॥१-३॥

संप्राप्ति ।

हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतश्चाश्नतश्च विदाह्यन्नं स विदाहोऽशनस्य ।
कृत्स्नं रक्तं विदहत्याशु तच्च स्रस्तं दुष्टं पादयोश्चीयते तु ।
तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन तत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम् ॥४॥

जो लोग हाथी, घोड़े, ऊँट आदिकी सवारी करते, ज्यादा दाह उत्पन्न करनेवाले अन्न खाते, ऐसे मनुष्योंका रक्त दूषित होकर काला होजाता एवं धीरे धीरे पैरकी तरफ उतरने लगता और फिर दूषित वायुसे मिलकर और भी प्रबलताके साथ दूषित होजाता इसी लिए लोग इसे वातरक्त रोग कहते हैं ॥ ४ ॥

वातरक्त का पूर्वरूप ।

स्वेदोऽत्यर्थं न वा कार्ष्ण्यं स्पर्शाज्ञत्वं क्षतेऽतिरुक् ।
सन्धिशैथिल्यमालस्यं सदनं पिडकोद्गमः ॥ ५ ॥
जानुजङ्घोरुकट्यंसहस्तपादाङ्गसन्धिषु ।
निस्तोदः स्फुरणं भेदो गुरुत्वं सुप्तिरेव च ॥ ६ ॥
कण्डूः सन्धिषु रुग्भूत्वा भूत्वा नश्यति चासकृत् ।
वैवर्ण्यं मण्डलोत्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम् ॥ ७ ॥

ज्यादा पसीना आना अथवा पसीने का बिल्कुल रुकजाना, शरीर का काला पड़जाना, शरीर शून्य होजाना, कहीं घाव लगजाने पर अतिशय वेदना होना, सन्धियोंका शिथिल पड़जाना, आलस्य आना, ग्लानि होना,

देहमें फुन्सियोंका निकलआना, जानु, पिण्डलियों, घुटनों, कमर, कन्धा, हाथ, पैर, प्रत्येक अङ्ग एवं जोड़ोंमें कोंचनेके समान दर्द होना, अंगों का फड़कना, शरीर का फटने लगना, देह का भारी या शून्य होजाना, सन्धियोंमें खुजलाहट होना, पीड़ा एवं दाह का थोड़ी देरमें उत्पन्न होकर नष्ट होजाना, आकृति भद्दी होजाना, शरीरमें स्थान स्थान पर मण्डल सा बँध जाना, जब मनुष्य को वातरक्त होनेवाला होता तो ये ही लक्षण हुआ करते हैं। ये इस रोगके पूर्वरूप कहे गए हैं ॥ ५-७ ॥

वाताधिक्य वातरक्त के लक्षण ।

वातेऽधिकेऽधिकं तत्र शूलस्फुरणभञ्जनम् ।
शोथस्य रौक्ष्यं कृष्णत्वं श्यावता वृद्धिहानयः ॥ ८ ॥
धमन्यङ्गुलिसन्धीनां संकोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक् ।
शीतद्वेषानुपशयौ स्तम्भवेपथुसुप्तयः ॥ ९ ॥

यदि इस वातरक्त रोगमें वातकी प्रबलता होती तो शूल उठता, अंग फड़कता, पेटमें सुईके समान चुभता, शोथ होता, शरीर रूखा होजाता, देहमें कालापन व श्यामता आजाती, रोगका वेग थोड़ी थोड़ी देरमें घटता बढ़ता, शरीरकी नसें, उगँलियाँ जोड़ें जकड़ जातीं, अंग फटने लगते और जोरोंसे पीड़ा होने लगती है। ठंढी चीजें अच्छा नहीं लगती, जब तब शरीरमें ऐंठन मालूम होने लगती, कँपकँपी आती और शरीर शून्य हो जाता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

रक्ते शोथोऽतिरुक्तोदस्ताम्रश्चिमचिमायते ।
स्निग्धरूक्षैः शमं नैति कण्डूक्लेदसमन्वितः ॥१०॥
पित्ते विदाहः संमोहः स्वेदो मूर्च्छा मदस्तृषा ।
स्पर्शासहत्वं रुग्रागः शोथः पाको भृशोष्मता ॥११॥
कफे स्तैमित्यगुरुतासुप्तिस्निग्धत्वशीतताः ।
कण्डूर्मन्दा च रुग्द्वन्द्वं सर्वलिङ्गं च संकरात् ॥१२॥

जिस वातरक्तमें रक्तकी अधिकता होती उसमें शरीर शोथ आता, अतिशय पीडा होती, ताम्रके समान रंगका रक्त बहता, किसी प्रकार चिकनी वस्तु या रूखी चीज से उसकी शान्ति नहीं होती, खुजली होजाती और मुखमें पानी छूटा करता है। पित्ताधिक वातरक्त रोग में दाह अधिक उठती, कभी कभी बेहोशी आजाया करती, पसीना अधिक आता, मूर्च्छा आती, रोगी मत्त होजाता, प्यास ज्यादा लगती, किसी चीज का स्पर्श अच्छा नहीं मालूम होता, पीड़ा विशेष होती, आकृति पर अधिकांश लाली आजाती, देह सूज जाती, जहाँ तहाँ पक भी जाया करता और गरमी विशेष मालूम होती है। जिस वातरक्तमें कफकी अधिकता होती तो शरीर ठंढा रहता, भारी मालूम होता, अंग सोथ जाते, चिकनापन रहता, शीतलता विशेष रहती और खुजलीके साथ साथ मामूली पीड़ा बनी रहती है। इसी तरह जिस वातरक्तमें दो दोषोंके लक्षण दीखें वह द्वन्द्वज और जिस में सब दोषोंके लक्षण दिखाई देवें उसे सान्निपातज वातरक्त समझना चाहिए ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

वातरक्त का साध्यासाध्यत्व।

पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि।
आखोर्विषमिव क्रुद्धं तद्देहमुपसर्पति ॥ १३ ॥
आजानुस्फुटितं यच्च प्रभिन्नं प्रस्रुतं च यत्।
उपद्रवैश्च यज्जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः ॥ १४ ॥
वातरक्तमसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम्।

जो वातरक्त पैरसे लेकर हाथतक पहुँच जाय तो वह चूहेके विषकी नाईं कुपित होकर शरीरके प्रत्येक अवयवों में फैलजाता है ॥ १३ ॥ जिस वातरक्तके गाँठ तक पहुँचते ही उस स्थानकी त्वचायें फट जायँ, उसमें से रक्त बहनेलगे, प्राण, मांस, क्षयादि उपद्रव साथ हों तो वह रोग असाध्य होता है और यदि एक वर्ष के भीतर का ही हो तो औषध आदि के द्वारा उसे निभाना चाहिए। इस के सिवाय बाकी सब असाध्य होते हैं ॥ १४ ॥

उपद्रव ।

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः ॥ १५ ॥
संमूर्छामदरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः ।
हिक्कापाङ्गुल्यवीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः ॥ १६ ॥
अङ्गुलीवक्रतास्फोटदाहमर्मग्रहार्बुदाः ।
एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यं मोहेनैकेन वाऽपि यत् ॥ १७ ॥

नींद न आना, किसी वस्तुमें रुचि न रहना, स्वासका वेग बना रहना, मांस का गलते रहना, सिरमें जकड़न होते रहना, मूर्च्छा तथा मन्द मन्द पीड़ा होते रहना, प्यास अधिक लगना, ज्वर मोह और कँपकँपी बना रहना, हिक्का, पंगुलापन, रोगोंका विस्तार होते रहना, शरीर का पकजाना, चक्कर आना, ग्लानि होना, अंगुलियों का टेंढ़ी बेंढ़ी होजाना, फोड़ा फुन्सी निकल आना, दाह होना, मर्मस्थानोंमें दर्द होना, गाँठोंमें पीड़ा होना, इन उपद्रवोंसे अथवा मोहसे युक्त वातरक्त रोग असाध्य हुआ करता है ॥ १५—१७ ॥

असाध्य, याप्य या साध्यके विचार ।

अकृत्स्नोपद्रवं याप्यं साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ।
वातरक्तमसाध्यं स्याद्यच्चातिक्रान्तवत्सरम् ॥ १८ ॥
एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम् ।
त्रिदोषजमसाध्यं स्याद्यस्य च स्युरुपद्रवाः ॥ १९ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने वातरक्तनिदानं समाप्तम् ॥ २३ ॥

ऊपर गिनाए समस्त उपद्रव जिस वातरक्त रोगमें न हों अथवा कोई भी उपद्रव न हो तो यह याप्य होता है । और जो वातरक्त एक वर्ष का पुराना होगया हो वह असाध्य है । जिसमें केवल एक दोष कुपित हो वह साध्य, जिसके दो दोष कुपित हों किन्तु नया हो तो याप्य, जिसमें तीनों दोष कुपित हों वह अथवा ऊपर लिखे समस्त उपद्रव जिसमें मौजूद हों वह वातरक्तरोग असाध्य हुआ करता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने वातरक्तनिदानम् ॥२३॥

अथ ऊरुस्तम्भनिदानम् ।

निदान ।

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः ।
जीर्णाजीर्णे तथाऽऽयासक्षोभस्वप्नप्रजागरैः ॥ १ ॥
सश्लेष्ममेदःपवनः साममत्यर्थसंचितम् ।
अभिभूयेतरं दोषमूरू चेत्प्रतिपद्यते ॥ २ ॥
सक्थ्यस्थिनी प्रपूर्यान्तः श्लेष्मणा स्तिमितेन च ।
तदा स्तम्नाति तेनोरू स्तब्धौ शीतावचेतनौ ॥ ३ ॥
परकीयाविव गुरू स्यातामतिभृशव्यथौ ।
ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतन्द्राच्छर्द्यरुचिज्वरैः ॥ ४ ॥
संयुक्तौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः ।
तमूरुस्तम्भमित्याहुराढ्यवातमथापरे ॥ ५ ॥

ठंढा, गरम, गीला, सूखा, भारी, चिकना, इस प्रकारके प्रकृतिविरुद्ध चीजोंके खानेसे, कच्चे पक्के अन्नोंके खानेसे, अधिक परिश्रम करने, अधिक क्रोध करने, अधिक सोने या अधिक जागनेसे श्लेष्मा और मेदके साथ वायु और अधिक इकट्ठा हुआ आम दूसरे दोषको दबा कर जांघमें जाकर ठहर जाता है। ऐसी हालतमें जांघकी हड्डियां भीतरही भीतर कफसे भरजातीं और उनको वायु अपने वशमें कर लिया करता है इसीसे जांघें जकड़ जातीं एवं ठंढी और निर्जीव होजाया करती हैं। उनमें भारीपन इतना आजाता है यानो वह अपनी हैं ही नहीं, पीडा भी बहुत होती है। यहां तक कि वह उठानेसे नहीं उठतीं, अंगमें मर्दन करानेकी इच्छा होती है। तन्द्रा आया करती, वमन होता, किसी वस्तुमें रुचि नहीं रहती, ज्वर आने लगता, जिसमें ये लक्षण दिखाई दें उसके पैरोंमें बड़ा पीड़ा होती, पैर मुश्किलसे उठते और शून्यसे हो जाते हैं। इस रोगको कोई ऊरुस्तम्भ एवं कोई कोई आढ्यवात कहते हैं॥ १-५ ॥

पूर्वरूप ।

प्राग्रूपं तस्य निद्राऽतिध्यानं स्तिमितता ज्वरः ।
रोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्जङ्घोर्वोः सदनं तथा ॥ ६ ॥

निद्रा अधिक आना, चिन्ता ज्यादा होना, देहका भारी रहना, ज्वर आजाया करना, जब तब रोंगटे खड़े होजाना, किसी वस्तुमें रुचि न रहना, कै होना, जांघ और घुटनोंमें पीड़ा होते रहना, जब ऊरुस्तम्भ होनेवाला होता तो ये लक्षण दिखाई देते हैं। ये ही इसके पूर्वरूप हैं ॥ ६ ॥

ऊरुस्तम्भके लक्षण ।

वातशङ्किभिरज्ञानात्तस्य स्यात्स्नेहनात्पुनः ।
पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं तथा ॥ ७ ॥
जङ्घोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वच्चानाहवेदने ।
पादं च व्यथते न्यस्तं शीतस्पर्शं न वेत्ति च ॥ ८ ॥
संस्थाने पीडने गत्यां चालने चाप्यनीश्वरः ।
अन्यस्येव हि संभग्नावूरू पादौ च मन्यते ॥ ९ ॥

इसके होने पर प्राणी अज्ञानतावश वात रोग की आशंका करता, यदि कोई औषधि की जाती तो यह और भी प्रबल पड़ जाता, पैरों में पीड़ा होती, अंग शून्य होजाते और पैर बड़ी कठिनाई से उठता है। जाँघ और पिण्डियों में एक प्रकार की ग्लानि सी होती, हमेशा दाह के साथ साथ पीड़ा हुआ करती, पैर उठा कर रखने में वेदना होती, किसी ठंढी वस्तु का स्पर्श करने पर भी नहीं मालूम होता, पैर के रखने और चलने में भी दर्द होती, होते होते चलना भी दूभर हो जाता, एक दिन यह भी नौबत आजाती कि कोई दूसरा उठा कर ले चले तो चला जाय और ऐसा मालूम होता कि पैर अपने काबू में नहीं हैं, बिल्कुल भग्न हो गए हैं ॥७-९॥

साध्यासाध्यत्व ।

यदा दाहार्तितोदार्तो वेपनः पुरुषो भवेत् ।

ऊरुस्तम्भस्तदा हन्यात्साधयेदन्यथा नवम् ॥ १० ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने ऊरुस्तम्भनिदानं समाप्तम् ॥ २४ ॥

जिस समय दाह के साथ साथ ज़ोरों से वेदना हो, रोगी थर थर काँपता रहे तो समझना चाहिए कि यह ऊरुस्तम्भ असाध्य हो गया है। विपरीत इसके यदि रोग पुराना न हुआ हो तो किसी प्रकार साध्य हो सकता है ॥ १० ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने ऊरुस्तम्भनिदानम् ॥ २४ ॥

अथ आमवातनिदानम् ।

आमवातका निदान तथा सम्प्राप्ति ।

विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च ।
स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा ॥ १ ॥
वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति ।
तेनात्यर्थं विदग्धोऽसौ धमनीः प्रतिपद्यते ॥ २ ॥
वातपित्तकफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः ।
स्रोतांस्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः ॥ ३ ॥
जनयत्याशु दौर्बल्यं गौरवं हृदयस्य च ।
व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुणः ॥ ४ ॥
युगपत्कुपितावन्तस्त्रिकसन्धिप्रवेपकौ ।
स्तब्धं च कुरुते गात्रमामवातः स उच्यते ॥ ५ ॥

जो पुरुष प्रकृति के विरुद्ध आहार विहार करता और जिसका औदर्य अग्नि मन्द पड़ गया है, जो हमेशा बैठा ही रहता है, ज्यादा स्निग्ध पदार्थ भोजन करता, अधिक व्यायाम करता इस प्रकार के प्राणियों का आम कुपित होकर वायु से प्रेरित हो श्लेष्मा के स्थान पर पहुँच जाता और वहाँ से विदग्ध हो शरीर की समस्त नसों में व्याप्त हो जाया करता है। इसके

अनन्तर अन्नज रस वात, पित्त और कफ से दूषित होकर शरीर के छिद्रों में भर जाता और स्रोतों को रोक लिया करता है । उसके कई रंग होजाते तथा चिकनेपन की भी मात्रा बढ़ जाया करती है । ऐसी अवस्था में प्राणी को मन्दाग्नि होजाता और हृदय भारी हो जाता है । यह आम सब प्रकार की बीमारियों का घर एवं बड़ा भयानक रोग है । जब वात और कफ दोनों एक साथ कुपित होकर पीठ के रीढ़ की सन्धियों में प्रवेश करते तो सारा शरीर अचल कर देते हैं । इसी रोग की आमवात संज्ञा है ॥१-५॥

आमवात के सामान्य लक्षण ।

अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णा ह्यालस्यं गौरवं ज्वरः ।
अपाकः शूनताऽङ्गानामामवातस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥

जब आमवात होता तो शरीर ऐंठने लगता, सब वस्तुओं से अरुचि होती, प्यास अधिक लगती, शरीर भारी होता, ज्वर आने लगता, खाया हुआ अन्न नहीं पचता और अंग शून्य होजाते हैं ॥ ६ ॥

अतिवृद्ध आमवात के लक्षण ।

स कष्टः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत् ।
हस्तपादशिरोगुल्फत्रिकाजानूरुसन्धिषु ॥ ७ ॥
करोति सरुजं शोथं यत्र दोषः प्रपद्यते ।
स देशो रुजतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः ॥ ८ ॥
जनयेत्सोऽग्निदौर्बल्यं प्रसेकारुचिगौरवम् ।
उत्साहहानिं वैरस्यं दाहं च बहुमूत्रताम् ॥ ९ ॥
कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्राविपर्ययम् ।
तृट्छर्दिभ्रममूर्च्छाश्च हृद्ग्रहं विड्विबद्धताम् ।
जाड्यान्त्रकूजमानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान् ॥ १० ॥

जब यह कुपित होता तो सब रोगों से इसमें विशेष कष्ट होता है, हाथ, पैर, मस्तक, फिल्लियाँ, रीढ़, जानु और ऊरु, कमर, गाँठ, जाँघ और

शरीर की प्रत्येक जोड़ों में जोरों से दर्द होती था जिस स्थान पर दोष विद्यमान होता वहाँ पर शोथ उत्पन्न होजाया करता है। उस जगह ऐसी पीड़ा होती है जैसे बीछियों नें डंक मार दिया हो, इसके होने से अग्नि मन्द पड़जाता मुँह से पानी गिरने लगता, खाने पीने में रुचि नहीं रहती, उदर तथा शरीर के समस्त अंग भारी होजाते, उत्साह नहीं रहजाता, मुँह का स्वाद बिगड़ जाता, दाह उत्पन्न होता और पेशाब अधिक होने लगता है। कोख में काठिनता आजाती, शूल उठने लगता, निद्रा नहीं आती, प्यास ज्यादा लगती, कभी कभी वमन होता, चक्कर के साथ बेहोशी आजाया करती, हृदय जकड़ उठता, मल बँध जाता, शरीर में भारीपन आजाता, प्राणी को जड़ता घेरलेती, आँतें घलघलाने लगतीं, पेट तन जाता, इनके सिवाय और भी कई प्रकार के उपद्रव घेर लिया करते हैं ॥ ७-१० ॥

विशेष लक्षण।

पित्तात्सदाहरागं च सशूलं पवनानुगम्।
स्तिमितं गुरुकण्डू च कफदुष्टं तमादिशेत् ॥ ११ ॥

पित्त के दोष से जायमान आमवात में दाह के साथ साथ ललाई होती, वायु के प्रकोप से उत्पन्न आमवात में शूल उठता और कफ से उत्पन्न आमवात से शरीर में भारीपन तथा शीतलता बनी रहती और कभी कभी खुजली उठा करती है ॥ ११ ॥

साध्यासाध्यत्व।

एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते।
सर्वदेहचरः शोथः स कृच्छ्रः सान्निपातिकः ॥ १२ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने आमवातनिदानं समाप्तम् ॥ २५ ॥

यदि किसी एक दोष के प्रकोप से इस रोग की उत्पत्ति हुई हो तो वह साध्य होता दो दोषों के प्रकोप से उत्पन्न आमवात याप्य एवं तीन दोषों से पैदा हुआ आमवात सारी शरीर में शोथ उत्पन्न करनेवाला कृच्छ्रसाध्य हुआ करता है ॥ १२ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने आमवातनिदानम् ॥ २५ ॥

अथ शूलनिदानम् ।

निदान और संख्या ।

दोषैः पृथक् समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत् ।
सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः ॥ १ ॥

वातपित्तादि तीनों दोषों अथवा एक एक करके अलग अलग दोषों से उत्पन्न शूलरोग आठ प्रकारका होता है । प्रायः इन आठों शूलोंमें वात दोषकी ही प्रधानता रहती है ॥ १ ॥

वातज शूल ।

व्यायामयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छीतजलातिपानात् ।
कलायमुद्गाढकिकोरदूषादत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात् ॥२॥
कषायतिक्तातिविरूढजान्नविरुद्धवल्लूरकशुष्कशाकात् ।
विट्शुक्रमूत्रानिलवेगरोधाच्छोकोपवासादतिहास्यभाष्यात् ॥३॥
वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं हृत्पार्श्वपृष्ठत्रिकबस्तिदेशे ।
जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च शीते च कोपं समुपैति गाढम् ॥ ४ ॥
मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपी विड्वातसंस्तम्भनतोदभेदैः ।
संस्वेदनाभ्यञ्जनमर्दनाद्यैः स्निग्धोष्णभोज्यैश्च शमं प्रयाति ॥ ५ ॥

अधिक व्यायाम करने, ज्यादा रास्ता चलने, अधिक मैथुन करने, अधिक जागने, ज्यादातर ठंढा पानी पीने, मटर, मूँग, अरहर, कोदौ, आदि रूखे अन्नोंको अधिकांशमें खाने, कसैला, कड़वा, जिसमें अखुए निकल आए हों, जो प्रकृतिसे विरुद्ध हो, ऐसे अन्न, सूखे साग, सूखे मांस खाने, मल, मूत्र एवं वीर्यका वेग रोकनेसे, किसी प्रकार का शोक करने, उपवास करने, ज्यादा हँसने, अधिक भाषण करनेके कारण वायुका वेग बढ़ जाता और हृदय, पसलियाँ, पीठकी रीढ़ और पेटमें शूल उठने लगता है । भोजन पच जानेके बाद, संध्यासमयमें, बरसातके समय, जाड़े

में शूलका अधिक प्रकोप हुआ करता है यह रोग बार बार शान्त होता और उभड़ता रहता है। मल तथा अपान वायु रुक जाती और उदरमें कुछ चुभने सा लगता है। पसीना विशेष होता है, शरीर में उबटन लगाने, दबवाने तथा चिकनी और गरम चीजें इस्तेमाल करनेसे शान्ति मिलती है ॥ १-५ ॥

पित्तज शूल।

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्याककुलत्थयूषैः।
कट्वम्लसौवीरसुराविकारैः क्रोधानलायासरविप्रतापैः ॥ ६ ॥
ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः पित्तं प्रकुप्याशु करोति शूलम्।
तृण्मोहदाहार्तिकरं हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छाभ्रमचोषयुक्तम्॥७॥
मध्यन्दिने कुप्यति चार्धरात्रे विदाहकाले जलदात्यये च।
शीते च शीतैः समुपैति शान्तिं सुस्वादुशीतैरपि भोजनैश्च ॥८॥

ज्यादा खारी चीजें खाने, बहुत तीखी, दाह पैदा करने वाली और तेल का अधिक सेवन करने, जंगली साग खाने, तिलका लड्डू आदि खाने तथा कुलथी का पानी पीने, कड़वा, खट्टा एवं शराब सिरका आदि पीनेसे, अधिक कोप करने, आगके सामने अधिक बैठने, घाम ज्यादा खाने, अतिशय स्त्रीप्रसंग करने और जली भुनी चीजें खानेसे पित्त अतिशय कुपित होकर और इस शूल रोग को उत्पन्न कर दिया करता है। इसके होने पर प्यास, मूर्च्छा, दाह और नाभिमें पीड़ा होने लगती है साथ ही पसीना, मूर्च्छा, भ्रम, पेटमें कोंचनेके समान दर्द भी हुआ करती है। यह रोग दोपहरके समय अथवा आधी रात को, ग्रीष्म ऋतुमें, वर्षाकालके बीत जाने पर, शीतकालमें, ठंढे, मीठे अन्नों को खाने अथवा सुस्वादु वस्तुओंके भोजन करनेसे शान्ति मिला करती है ॥ ६-८ ॥

श्लैष्मिक शूल।

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारै-
र्मांसेक्षुपिष्टकृशरातिलशष्कुलीभिः।

अन्यैर्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च
श्लेष्मा प्रकोपमुपगम्य करोति शूलम् ॥ ९ ॥
हृल्लासकाससदनारुचिसंप्रसेकै-
रामाशये स्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः ।
भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं
सूर्योदयेऽथ शिशिरे कुसुमागमे च ॥ १० ॥

तालाबके किनारे रहनेवाले पक्षियों का मांस खाने, नई ब्याई हुई गाय अथवा भैंसके दूधकी बनी खिझरी, दही, दूध, खोवा आदि खाने, मांस, ऊँख, पीठीके बने बड़े आदि, खिचड़ी, तिल, पूड़ी तथा और कोई ऐसी चीज जिससे कफकी वृद्धि होती हो, खानेके कारण कफ कुपित हो कर शूल रोगको उत्पन्न किया करता है । इसके होने पर जी मिचलाता, खाँसी आती, देह टूटती, किसी वस्तुमें रुचि नहीं रहती, मुखसे पानी बहा करता, पेट घलघलाता और सिर भारी रहा करता है, भोजन करलेनेके बाद हमेशा शरीर अधिक दुखा करता और सूर्योदय तथा जाड़े या बसन्तऋतुमें इसका विशेष प्रकोप हुआ करता है ॥ ९ ॥ १० ॥

आमशूल ।

सर्वेषु दोषेषु च सर्वलिङ्गं विद्याद्भिषक्सर्वभवं हि शूलम् ।
सुकष्टमेनं विषवज्रकल्पं विवर्जनीयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥११॥
आटोपहृल्लासवमीगुरुत्वस्तैमित्यकानाहकफप्रसेकैः ।
कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्गमामोद्भवं शूलमुदाहरन्ति ॥१२॥

जिस शूलरोगमें वात, पित्त, कफ, ये तीनों दोष कुपित हों और इनके लक्षण स्पष्ट दीखें उसे सन्निपातात्मक शूल समझना चाहिए । यह शूल विष वज्रके समान अत्यन्त कष्टसाध्य हुआ करता है । इसी लिए इसके मर्म को जानने वाले वैद्य गण ऐसे रोगी को परित्याग करने की राय देते है ॥११॥ जिस शूलमें पेट गडगड़ाय, जीमिचलाय, वमन हो, शरीर भारी रहे, मन मरा सा जान पड़े, पेट फूला रहे, कफ गिरा करे, ऐसे लक्षणों

वाला शूल आमशूल कहलाता है ॥ १२ ॥

वातज शूलों के स्थान ।

बस्तौ हृत्पार्श्वपृष्ठेषु स शूलः कफवातिकः ।
कुक्षौ हृन्नाभिमध्येषु स शूलः कफपैत्तिकः ॥ १३ ॥
दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वातपैत्तिकः* ।

जो शूल दो दोषों के प्रकोपसे उत्पन्न हो उसकी द्विदोषज संज्ञा है । जिसमें पेड़ू हृदय, कण्ठ और पसलियोंमें दर्द हो उसे कफवातिक शूल समझना चाहिए । कोख, हृदय, नाभीमें दर्द हो तो कफपैत्तिक शूल समझना चाहिए और जिसमें दाह तथा ज्वर हो उसे वातपैत्तिक शूल समझे ॥ १३ ॥

साध्यासाध्यत्व ।

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ॥ १४ ॥
सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ।

जो शूल एक दोष से उत्पन्न हो वह साध्य, दो दोषोंसे जायमान कष्टसाध्य एवं तीन दोषोंवाला शूल असाध्य हुआ करता है और पीड़ा, प्यास, मूर्च्छा, पेट तना रहना, शरीर भारी रहना, किसी वस्तु पर रुचि न होना, खाँसी आते रहना, श्वास और हिचकी का दौर दौरा बना रहना, इस प्रकार बहुत से उपद्रव जिसमें दिखाई दें उसे भी असाध्य समझना चाहिए ॥ १४ ॥

परिणामशूल ।

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायुः संनिहितस्तदा ॥ १५ ॥
कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद्बली ।
भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् ॥ १६ ॥
तस्य लक्षणमप्येतत्समासेनाभिधीयते ।

अपने ही कारणोंसे वायु कुपित होकर जब कफ तथा पित्तके निकट

---

* द्विदोषलक्षणैरेतैविद्याच्छूलं द्विदोषजम् । इत्यपि केचित् पठन्ति ।

पहुँचकर उसे घेरके बली एवं शूल उत्पन्न करनेवाला होजाता है। जो शूल भोजन करलेने के बाद उभड़ा करे उसे लोग परिणामज शूल कहते हैं। उसका लक्षण भी संक्षिप्त रूपसे बतलाते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

वातादिभेद से परिणामज शूल के लक्षण।

आध्मानाटोपविण्मूत्रविबन्धारतिवेपनैः ॥ १७ ॥
स्निग्धोष्णोपशमप्रायं वातिकं तद्वदेद्भिषक् ।
तृष्णादाहारतिस्वेदं कट्वम्ललवणोत्तरम् ॥ १८ ॥
शूलं शीतशमप्रायं पैत्तिकं लक्षयेद्बुधः ।
छर्दिर्हृल्लाससंमोहं स्वल्परुग्दीर्घसन्तति ॥ १९ ॥
कटुतिक्तोपशान्तं च तच्च ज्ञेयं कफात्मकम् ।
संसृष्टलक्षणं बुद्ध्वा द्विदोषं परिकल्पयेत् ॥ २० ॥
त्रिदोषजमसाध्यं तु क्षीणमांसबलानलम् ।

जिसके होने पर पेट फूलजाय या गड़गड़ाता रहे, मलमूत्रका अवरोध होजाय, किसी चीज़में रुचि न रहे, कँपकपी आती रहे, चिकनी, और गरम चीजें खाने से शान्त हो जाया करे, उसे वातज परिणामशूल कहते हैं। जब प्यास ज्यादा लगे, दाह उत्पन्न हो जाय, सब चीज़ों से तबीयत हट जाय, पसीना आता रहे, कड़ुई, नमकीन और खट्टी चीज़ों से जिसका वेग अधिक बढ़ता हो और ठंढी चीज़ोंसे शान्त हो जाया करता हो उसे पित्तज परिणामशूल कहते हैं। जिसमें वमन हुआ करे, रोगी जीभ चलाता रहे, इन्द्रियाँ मुग्ध होजाया करें, साधारण पीड़ा हमेशा बनी रहे, शूल अधिक उठा करे, कड़ुई और तीक्ष्ण वस्तुओं से जो शान्त हो जाया करता हो उसे श्लैष्मिक परिणाम शूल जानना चाहिए। जिसमें दो दोषों के लक्षण मिले जुले दिखाई दें उसे द्विदोषज एवं जिसमें तीनों दोषों के लक्षण स्पष्ट दीखें वह मांस, बल तथा औदर्य अग्नि को क्षीण करनेवाला और असाध्य सान्निपातिक परिणामशूल कहलाता है ॥ १७-२० ॥

अन्नद्रवशूलके लक्षण।

जीर्णे जीर्यत्यजीर्णे वा यच्छूलमुपजायते ॥ २१ ॥
पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन च।
न शमं याति नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः ॥ २२ ॥
अन्नद्रवाख्यशूलेषु न तावत्स्वास्थ्यमश्नुते।
वान्तमात्रे जरत्पित्तं शूलमाशु व्यपोहति ॥ २३ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने शूलपरिणामशूलान्नद्रव-
शूलनिदानं समाप्तम् ॥ २६ ॥

खाया हुआ अन्न पचजाने पर या पच रहा हो ऐसे समय जो शूल उत्पन्न हुआ हो पथ्य, अपथ्य, भोजन अथवा उपवास करने पर भी नियम-पूर्वक शान्त न हो उसे अन्नद्रव नामक शूल कहते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ यह अन्नद्रव शूल तब तक शान्त नहीं होता जब तक वमन न होजाय, वमन हो जानेपर रुका हुआ पित्त गिरजाता और शूल आपसे आप शान्त होजाया करता है ॥ २३ ॥

इति श्रीरामतेजपाण्डेयविरचितमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते
माधवनिदाने शूलनिदानम् ॥ २६ ॥

अथ उदावर्तनिदानम्।

निदान।

वातविण्मूत्रजृम्भास्रक्षवोद्गारवमीन्द्रिय-।
क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्तसंभवः ॥ १ ॥

जो वायु, मल-मूत्र, जँभाई, आँसू, छींक, डकार, वमन तथा इन्द्रिय से होनेवाले वीर्यपात, भूख, प्यास, उच्छ्वास और नींद को रोकने से उत्पन्न हो उसे लोग उदावर्त रोग कहते हैं ॥ १ ॥

अपानवायुके निरोधसे उत्पन्न उदावर्त।

वातमूत्रपुरीषाणां सङ्गो ध्मानं क्लमो रुजा।

जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥ २ ॥

अपान वायु के रोकने से वात, मूत्र और मल रुक जाते हैं, पेट तन जाता है, बड़ी पीड़ा होती है। इसी प्रकार वायु से उत्पन्न होनेवाले और भी रोग खड़े होजाया करते हैं ॥ २ ॥

मलनिरोधज उदावर्त।

आटोपशूलौ परिकर्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः।
पुरीषमास्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ ३ ॥

पुरीष (मल)के रोकने से पेट में गुडगुड़ाहट होती, शूल उठता, पेट में कैंची से कतरने के समान पीड़ा होती, मल रुकजाता, पवन ऊपर की ओर चढ़ने लगता, डकारें आतीं और कभी कभी तो मल मुख के रास्ते से निकलने लगता है ॥ ३ ॥

मूत्रनिरोधज उदावर्त।

बस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा।
विनमो वङ्क्षणानाहः स्याल्लिङ्गं मूत्रनिग्रहे ॥ ४ ॥

मूत्र के रोकने से पेड़ू और लिङ्ग में शूल उठने लगता, पेशाब उतरनेमें बड़ी कठिनाई होती, सिर दुखने लगता, शरीर झुकजाता, शरीरकी सन्धियाँ और पट्ठे जकड़ जाते तथा पेट तन जाया करता है। ये सब लक्षण तब दिखाई देते हैं जब मूत्र का वेग रुक जाता है ॥ ४ ॥

जृम्भानिरोध से उदावर्त।

मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा जृम्भोपघातात्पवनात्मकाः स्युः।
तथाऽक्षिनासावदनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह कर्णरोगैः॥५॥

जँभुआई का वेग रुकने से गर्दन और गले की नसें जकड़ जातीं, सिर दुखने लगता, इसी प्रकार और भी वातसम्बन्धी रोग खड़े होजाया करते हैं। इसके अतिरिक्त आँख, नाक, मुख तथा कानोंमें भी वायु से जायमान रोग उभड़ जाते हैं ॥ ५ ॥

अश्रुनिरोधज उदावर्त।

आनन्दजं वाऽप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुञ्चतो हि।

शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥६॥

किसी प्रकार निकलते हुए आँसूका भी वेग रोकने से सिरमें वेदना होती, नेत्र में अनेक रोग खड़े होजाते असह्य वेदना होती है। पीनस रोग भी उमड़ जाया करता है ॥ ६ ॥

छींक रोकने से उदावर्त।

मन्यास्तम्भः शिरःशूलमर्दितार्धावभेदकौ।
इन्द्रियाणां च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधारणात् ॥७॥

यदि कोई प्राणी आती हुई छींक का वेग रोकता तो गर्दन तन जाती, सिर दुखने लगता, आधा शरीर टेढ़ा होजाता या आधाशीशी होजाया करती है और शरीरकी सब इन्द्रियाँ दुर्बल होजाती हैं ॥ ७ ॥

डकार रोकने से उदावर्त।

कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च वायोरथवाऽप्रवृत्तिः।
उद्गारवेगेऽभिहते भवन्ति घोरा विकाराः पवनप्रसूताः ॥८॥

डकार रोकने से कण्ठ तथा गला भर जाता, शूल से कोंचने के समान व्यथा होती, पेटमें गुड़गुड़ी होने लगती, वायुकी गति बाहर की ओर झुक जाती और वात से उत्पन्न होनेवाले विविध प्रकारके रोग खड़े होजाया करते हैं ॥ ८ ॥

वमनरोकने से उत्पन्न उदावर्त।

कण्डूकोठारुचिव्यङ्गशोथपाण्ड्वामयज्वराः।
कुष्ठवीसर्पहृल्लासाश्छर्दिनिग्रहजा गदाः ॥ ९ ॥

वमनके वेग रोकने से खुजली उत्पन्न होती, शरीरमें जहाँ तहाँ दरारे पड़ जाया करते, किसी चीजमें तबीयत नहीं लगती, अंग शून्य होजाते, शोथ होजाता, पाण्डुरोग, ज्वर, कुष्ठ, जीमें मिचलाहट, विसर्प रोग, इतने रोग हुआ करते है ॥ ९ ॥

शुक्रनिरोधज उदावर्त।

मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोथो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च।

शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेच्च ते ते विकारा विहते च शुक्रे ॥ १० ॥

वीर्य का वेग रोकने से लिङ्ग, अण्डकोश तथा गुदा सूज जाती, इन स्थानोंमें व्यथा होती, पेशाब नहीं होता, मूत्रस्थानमें चिलक उठने लगती, एक प्रकार का पथरीरोग उत्पन्न होजाता, इसके अनन्तर प्रमेह होकर वीर्य बहने लगता है ॥ १० ॥

क्षुधातृष्णानिरोधज उदावर्त ।

तन्द्राङ्गमर्दावरुचिः श्रमश्च क्षुधाभिघातात्कृशता च दृष्टेः ।
कण्ठास्यशोषः श्रवणावरोधस्तृष्णाविघाताद्धृदये व्यथा च ॥११

भूख को रोकने से तन्द्रा आती, शरीरके अङ्ग ऐंठने लगते, किसी चीजमें रुचि नहीं रहती, थकावट मालूम पड़ती और दृष्टि क्षीण होजाया करती है। उसी तरह प्यासको रोकने से गला और मुँह सूख जाता, कानके छिद्र बन्द होजाते और हृदयमें वेदना होने लगती है ॥ ११ ॥

श्वासनिद्रानिरोधज उदावर्त ।

श्रान्तस्य निश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथवाऽपि गुल्मः ।
जृम्भाऽङ्गमर्दोऽक्षिशिरोतिजाड्यं निद्राभिघातादथवाऽपि तन्द्रा

यदि कोई प्राणी थकावट, कसरत आदिसे उत्पन्न हुए श्वासके वेगको रोक लेता तो हृदयमें कोई रोग होजाता, मोह होता अथवा कहीं पर गुल्म निकल आता है। नींद को रोकने से जँभुआई जोरों से आने लगती, अङ्ग टूटने लगते, आँखों और सिरमें जड़ता आती और तन्द्रा भी आने लगती है ॥ १२ ॥

कुपितवातज उदावर्त ।

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षैः कषायकटुतिक्तकैः ।
भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्तं करोति हि ॥ १३ ॥

जब कोई प्राणी रूखे, कसैले अथवा कड़वे पदार्थों को खाता तो कोठेमें रहनेवाला वायु कुपित होकर उदावर्त नामक रोग को उत्पन्न किया करता है ॥ १३ ॥

उदावर्त के लक्षण।

वातमूत्रपुरीषासृक्कफमेदोवहानि वै।
स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं चातिवर्तयेत् ॥ १४ ॥
ततो हृद्बस्तिशूलार्तो हृल्लासारतिपीडितः।
वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः ॥ १५ ॥
श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहतृषाज्वरान्।
वमिहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान्।
बहूनन्यांश्च लभते विकारान् वातकोपजान् ॥ १६ ॥

यह उदावर्त रोग वात, मूत्र, मल, आँसू, कोष्ठ तथा मेद्को बहाने वाली नीड़ियों को रोक देता साथ ही पुरीषको भी सुखा देता है। इसके अनन्तर रोगी हृदय तथा पेडूकी पीड़ा से बहुत दुखी होता, जी मिचलाने लगता और सुस्ती आजाया करती है ऐसी अवस्थामें वात, मल, मूत्र आदि बड़ी मुश्किल से उतरते हैं। इनके अतिरिक्त श्वास, कास, प्रतिश्याय (जुकाम) दाह, मोह, तृष्णा, ज्वर, वमन, हिचकी, सिरकी, पीड़ा, मन का भ्रम आदि वात से जायमान अनेक उपद्रव खड़े हो जाया करते हैं ॥१४-१६॥

आनाह के लक्षण।

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानलेन।
प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥१७॥

आम अथवा मल इकट्ठा होकर दूषित वायुसे बँध जाता एवं सूख जाया करता है। ऐसी अवस्थामें ये ठीक तौर से बाहर नहीं आने पाते। इसी को आनाह कहते हैं ॥ १७ ॥

आमज आनाह।

तस्मिन् भवन्त्यामसमुद्भवे तु तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहः।
आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृत्स्तम्भ उद्गारविघातनं च ॥१८॥

जो आनाह रोग आमके प्रकोप से उत्पन्न होता उसमें तृष्णा, जुकाम,

सिरकी पीड़ा, आमाशयमें शूल उठना, शरीर का भारी रहना, जीमिचलाना, डकार न आना, ये उपद्रव दिखाई देते हैं ॥ १८ ॥

मलसंचयज आनाह ।

स्तम्भः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोऽथ मूर्च्छा शकृतश्च छर्दिः ।
शोथश्च पक्वाशयजे भवन्ति तथाऽलसोक्तानि च लक्षणानि ॥१९॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने उदवर्तानाहनिदानं समाप्तम् ।

मलके संचित होनेपर जो आनाह होता उसमें कमर, पीठ तथा मलमूत्रके मार्गोंमें चिलक, मूर्च्छा, विष्ठा का वमन, श्वास आदि उपद्रव आमाशयमें उत्पन्न हुआ करते हैं साथ ही अलसक रोगके जो लक्षण बतलाए हैं वे भी इसमें दिखाई देते हैं* ॥ १९ ॥

असाध्य लक्षण ।

तृष्णार्दितं परिक्लिष्टं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम् ।
शकृद्वमन्तं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥ २० ॥

यदि आनाह रोग का रोगी तृष्णासे पीडित हो, ज्यादा तकलीफ हो रही हो, शरीर क्षीण हो गया हो, शूल का भी उपद्रव जारी रहे, विष्ठाका वमन होवे तो बुद्धिमान् वैद्यको चाहिए कि ऐसे रोगी का परित्याग कर दे ॥ २० ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासमन्विते माधवनिदाने उदावर्तनिदानम् ॥२७॥

अथ गुल्मनिदानम् ।

गुल्मकी संख्या, स्थान एवं सामान्यरूप ।

दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारः ।

---

* कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्येत्परिकूजति ।
निरुद्धो मारुतश्चापि कुक्षावुपरि धावति ॥ १ ॥
वातवर्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं भवेदपि ।
तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारौ च यस्य तु ॥ २ ॥

अत्रापि केचित् पठान्त ।

कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपिणम् ।
तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृन्नाभिबस्तयः ॥ १ ॥
हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः संचारि यदि वाऽचलः ।
वृत्तश्चयापचयवान् स गुल्म इति कीर्तितः ॥ २ ॥

मिथ्या आहार विहारके कारण जब वातपित्तादि दोष दूषित हो जाते तो कोठेमें एक ग्रन्थि सी बना कर गुल्मरोग को उत्पन्न करते हैं। वह पाँच प्रकार का होता है और पसलियाँ हृदय, नाभि, पेड़ू, हृदय और नाभीके बीचकी जगह ये पाँच ही गुल्म उत्पन्न होनेके स्थान हुआ करते हैं। यह ग्रन्थि दो तरह की होती है एक चल दूसरी अचल। इसका स्वरूप गोल होता तथा हमेशा बढ़नेवाली होतीहै। इसी रोग को लोग गुल्मरोग कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

गुल्म के पाँच प्रकार ।

स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः ।
पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ॥ ३ ॥

ऊपर इस रोगके जो पाँच प्रकार कहे हैं वे इस प्रकार जानने चाहिए:—पहला वातपित्तसे, दूसरा वातकफसे, तीसरा कफ पित्तसे, चौथा वात पित्त कफ इन तीनोंसे, पाँचवाँ केवल स्त्रियोंके रक्त दूषित होजानेके कारण हुआ करता है। बाकी पुरुषों और स्त्रियों दोनोंके लिए हैं ॥ ३ ॥

गुल्म के पूर्वरूप ।

उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धतृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि ।
आटोप आध्मानमपक्तिशक्तिरासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥४॥

डकार ज्यादा आना, मलमूत्र का रुक जाना, कुछ खाने पीने की इच्छा न होना, चित्तका चञ्चल रहना अँतड़ियोंमें घळघळाहट होना, पेट तना रहना, अग्निका मन्द पड़ जाना, ये सब उपद्रव तब होते हैं जब गुल्म रोग होने वाला होता है। ये इस रोग के पूर्वरूप कहे गए हैं ॥ ४ ॥

साधारण रूप ।

अरुचिः कृच्छ्रविण्मूत्रावतताऽन्त्रविकूजनम् ।
आनाहश्चोर्ध्ववातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्षयेत् ॥ ५ ॥

किसी चीज़ में रुचि न रहना, मलमूत्र का मुश्किल से उतरना, अपान वायु का रुकजाना, पेट का तन जाना, वायु का उपर चढ़ने लगना, ये लक्षण प्रत्येक गुल्मरोग में हुआ करते हैं ॥ ५ ॥

वातज गुल्म के लक्षण ।

रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च ।
शोकोऽभिघातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नता चानिलगुल्महेतुः ॥६॥

रूखा अन्न पान खाने पीने और विना समय भोजन करने के कारण, सामर्थ्य के बाहर परिश्रम करने से, मलमूत्र आदि के वेग रोकने से, शोक करने के कारण, अधिक मल गिरने से अथवा उपवास करने के कारण वातज गुल्म की उत्पत्ति हुआ करती है ॥ ६ ॥

यः स्थानसंस्थानरुजां विकल्पं विड्वातसङ्गं गलवक्त्रशोषम् ।
श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरं च हृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजं च॥७॥
करोति जीर्णे त्वधिकं प्रकोपं भुक्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च ।
वातात्स गुल्मो न च तत्र रूक्षं कषायतिक्तं कटु चोपशेते ॥ ८ ॥

जो रोग किसी स्थान पर रुकने की पाबन्दी न रक्खे, मल अथवा अपान वायु जिसमें ठीक तरह से न उतरे, गला और मुँह सूख जाय, शरीर की आकृति काली या लाल होजाय, शीत ज्वर चढ़ा रहे, हृदय, कोख, पसलियाँ, कन्धे और सिरमें पीड़ा आदि उपद्रव होतेहैं । जो गुल्म रोग खाया हुआ अन्न पच जाने पर ज्यादा कुपित हो और भोजन करने पर शान्त होजाय उसे वातप्रधान गुल्म रोग समझना चाहिए । इस गुल्म रोग में रूखा, कसैला, तीखा और कड़ुवा पदार्थ खाने से विशेष कष्ट होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

पित्तज के लक्षण ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा ।

आमाभिघातो रुधिरं च दुष्टं पैत्तस्य गुल्मस्य निमित्तमुक्तम् ॥९॥
ज्वरः पिपासा वदनाङ्गरागः शूलं महज्जीर्यति भोजने च ।
स्वेदो विदाहो व्रणवच्च गुल्मः स्पर्शासहः पैत्तिकगुल्मरूपम् ॥१०॥

कडुवा, खट्टा, तीखा, गरम, दाहकारी और रूखा भोजन करने, अतिशय क्रोध करने, अधिक शराब पीने, घाम में अधिक बैठने या आग्नि के अधिक तापने, जले हुए अन्न रस के सेवन करने के कारण, किसी प्रकार की चोट लगने से रक्त दूषित होकर पित्तज गुल्म को उत्पन्न करता है ॥ ९ ॥ पित्त से जायमान गुल्मरोग में प्यास अधिक लगती मुँह एवं शरीर के प्रत्येक अंग लाल होजाते, भोजन पच जानेके अनन्तर जोरोंसे शूल उठता, पसीना आता रहता, दाह होती, गुल्म में घाव के समान वेदना होती, अत एव छुआ भी नहीं जाता ये पित्त से जायमान गुल्म के लक्षण हैं ॥ १० ॥

कफज के लक्षण ।

शीतं गुरु स्निग्धमचेष्टनं च संपूरणं प्रस्वपनं दिवा च ।
गुल्मस्य हेतुः कफसंभवस्य सर्वस्तु दुष्टो निचयात्मकस्य ॥११॥
स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि ।
शैत्यं रुगल्पा कठिनोन्नतत्वं गुल्मस्य रूपाणि कफात्मकस्य॥१२॥

शीतल, भारी, स्निग्ध पदार्थों के खाने से, कोई प्रकार की मिहनत करने से, पेट भर जाने पर भी भोजन करने से, दिन में सोने के कारण कफसे गुल्मरोगकी उत्पत्ति हुआ करती है । जिस गुल्ममें उपर्युक्त वात, पित्त और कफ इन तीनोंके लक्षण दीखें उसे सन्निपातज गुल्म रोग समझना चाहिए । यह सन्निपातज गुल्म बड़ा भीषण होता है ॥ ११ ॥ शरीर हमेशा भीगा सा मालूम पड़े, शीतज्वरका अंश बना रहे, अंगोंमें पीड़ा होती रहे, जी मिचलाया करे, खांसी आती रहे, किसी चीज में रुचि न हो, शरीर भारी रहे, शरीर शीतल रहे, साधारणतया पीडा होती रहे, गुल्म ऊँचा और कठिन मालूम हो, ये कफसे जायमान गुल्म रोगके लक्षण बतलाए हैं ॥ १२ ॥

द्वन्द्वज गुल्म के लक्षण ।

निमित्तरूपाण्युपलभ्य गुल्मे द्विदोषजे दोषबलाबलं च ।
व्यामिश्रलिङ्गानपरांश्च गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥१३॥

यदि गुल्म रोग दो दोषोंका हो तो वैद्यको चाहिए कि रोगका कारण, लक्षण तथा दोषोंके बलाबलका खूब अच्छी तरह विचार करके औषधिकी व्यवस्था करे । इसी प्रकार सन्निपातज गुल्ममें भी औषधि देते समय बलाबल पर पूर्णतया ध्यान रखना चाहिए ॥ १३ ॥

सान्निपातिक गुल्म के लक्षण ।

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्घनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम् ।
मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत्॥१४॥

जिसमें जोरोंके साथ पीड़ा हो, सारा शरीर जल रहा हो, निकला हुआ गुल्म पत्थरकी तरह कड़ा हो और कभी कभी एकाएक जलन उत्पन्न होजाया करे, जो बड़ा दारुण हो, मन शरीर और बलका नाशक हो ऐसे गुल्मरोग को सन्निपातज जानना चाहिए । यह असाध्य माना गया है ॥१४॥

रक्तजगुल्म के लक्षण ।

नवप्रसूताऽहितभोजना या या चामगर्भं विसृजेदृतौ वा ।
वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम् ।
पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं विशेषणं चाप्यपरं निबोध ॥१५॥
यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः ।
स रौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः॥१६॥

जिस स्त्रीके बचा पैदा हुए थोड़ेही दिन हुए हों और वह कुपथ्य भोजन करने लगे, या कच्चाही गर्भ गिरजाय, ऋतुप्राप्तिके समय भी पथ्यविहीन पदार्थ खाती रहे तो वायु कुपित होकर रक्तसे मिलजाता एवं जलन तथा पीडायुक्त गुल्मको उत्पन्न कर दिया करता है । इसे रक्तज गुल्म कहते हैं । इसके समस्त लक्षण पित्तज गुल्मसे मिलते जुलते रहते हैं जो थोडी बहुत विशेषता रहती है उसे भी बतलाते हैं सो सुनो—जिस स्त्री

का उत्पन्न हुआ रक्तज गुल्मका पिण्ड इधर उधर डोलता रहे किन्तु शरीर के अंगोंसे ऐसा न मालूम पड़े, जिसमें गर्भके समस्त लक्षण दिखाई देवें, वह स्त्रियोंको होनेवाला रक्तज गुल्म दस महीना बीत जाने के बाद चिकित्सा करनेके लायक होता है मतलब यह कि बच्चा होजाने के बाद उसकी दवा करे ॥ १५-१६ ॥

गुल्मरोग के साध्यासाध्यत्व ।

संचितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः ।
कृतमूलः सिरानद्धो यदा कूर्म इवोत्थितः ॥ १७ ॥
दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासच्छर्द्यरतिज्वरैः ।
तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यते स न सिध्यति ॥ १८ ॥
गृहीत्वा सज्वरं श्वासच्छर्द्यतीसारपीडितम् ।
हृन्नाभिहस्तपादेषु शोथः कर्षति गुल्मिनम् ॥ १९ ॥
श्वासः शूलं पिपासाऽन्नविद्वेषो ग्रन्थिमूढता ।
जायते दुर्बलत्वं च गुल्मिनो मरणाय वै ॥ २० ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने गुल्मनिदानं समाप्तम् ॥ २८ ॥

यदि यह गुल्मरोग क्रमशः बढ़ता हुआ पुराना होजाय और महावस्तु यानी वीर्यसे मिलजाय, बहुतसी नसें चारों ओरसे उसे घेर लें, गुल्म कछुए की तरह ऊँचा होजाय, शरीर दुर्बल होजावे, किसी वस्तुमें चित्त न लगे, जी मिचलाता रहे, खांसी आया करे, कभी कभी वमन भी होजाय, ओकाई आवे, मन खिन्न रहे, ज्वरभी आवे, प्यास लगे, तन्द्रा आवे, जुकाम होजाय तो उस गुल्मरोग को असाध्य समझना चाहिए। जिस गुल्मरोगीके ज्वरके साथ दमा उभड़ आए, छर्दि (वमन) तथा अतीसार (दस्त) का भी वेग अधिक हो, हृदय, नाभि, हाथ और पैर सूजजावें, श्वास, शूल, प्यास, अन्नसे अरुचि, गुल्मवाली ग्रन्थि और बस्ति कड़ी होजाय, शरीरमें दुर्बलता आजाय तो समझना चाहिए कि यह गुल्मरोग रोगीको मारनेके लिए ही उत्पन्न हुआ है ॥ १७-२० ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासमन्विते माधवनिदाने गुल्मरोगनिदानम् ॥ २८ ॥

अथ हृद्रोगनिदानम् ।

निदान और संख्या ।

अत्युष्णगुर्वन्नकषायतिक्तश्रमाभिघाताध्यशनप्रसङ्गैः ।
संचिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पञ्चविधः प्रदिष्टः ॥१॥

बहुत गरम, अधिक गुरु, खट्टा, कसैला, कड़ुवा पदार्थ सेवन करने, अधिक परिश्रम करने, किसी प्रकार की चोट लगने, अतिशय बल करने, ज्यादा ज़ोर ज़ोर से पढ़ने, अधिक चिन्ता करने, मल मूत्र एवं अपान वायुके रोकनेके कारण हृदयमें रोग हो जाता है। वह पाँच प्रकारका होता है ॥ १ ॥

हृद्रोग की संप्राप्ति ।

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ।
हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ २ ॥

वातपित्तादि दोष दूषित होकर रस को दूषित कर देते और हृदयमें पहुँच कर नाना प्रकारके उपद्रव खड़ा करते हैं। उसी को लोग हृद्रोग कहते हैं ॥ २ ॥

वातज हृद्रोग के लक्षण ।

आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा ।
निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोट्यते पाट्यतेऽपि च ॥ ३ ॥

वायुके प्रकोप से उत्पन्न हृद्रोगमें हृदय तन जाता, सुईके समान कुछ चुभा करता, हृदयमें मन्थन सा होता रहता, चिरने सा लगता, फटा सा जाता एवं कुल्हाड़ी आदि से चीरने के समान व्यथा होती है ॥ ३ ॥

पैत्तिक हृद्रोग के लक्षण ।

तृष्णोष्मादाहचोषाः स्युः पैत्तिके हृदयक्लमः ।
धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च ॥ ४ ॥

पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न हृद्रोगमें प्यास लगती, गरमी ज्यादा मालूम पड़ती, दाह होती, मोह होता, ग्लानि होती, खट्टी डकार आती रहती, मूर्च्छा आजाती, पसीना आने लगता, मुँह सूख जाता, ये ही सब लक्षण

दिखाई देते हैं ॥ ४ ॥

श्लैष्मिक हृद्रोग के लक्षण।

गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तम्भोऽग्निमार्दवम्।
माधुर्यमपि चास्यस्य बलासावतते हृदि ॥ ५ ॥

कफके प्रकोप से उत्पन्न हृद्रोगमें देह भारी होजाती, हमेशा मुख कफ गिरा करता, सब ओर से अरुचि रहती, हृदय पर बोझ रक्खा रहता, अग्नि मन्द पड़ जाता और मुँह मीठा सा मालूम होता है ॥ ५ ॥

सान्निपातिक हृद्रोग के लक्षण।

विद्यात्त्रिदोषं त्वपि सर्वलिङ्गं तीव्रार्तितोदं क्रिमिजं सकण्डूम्
उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः।
अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोथश्च क्रिमिजे भवेत् ॥ ६ ॥

जिस हृद्रोगमें ऊपर कहे हुए वात पित्त और कफ इन तीनोंके लक्ष दिखाई दें उसे सन्निपातज हृद्रोग समझना चाहिए। इस सन्निपातज हृद्रो में तीव्र वेदनाके साथ साथ कृमि उत्पन्न होजाते और खुजलाहट हुआ करती है। इसके अतिरिक्त बार बार उबकाई आती, थुकथुकी ल रहती, ज़ोरों से पीड़ा होती, कभी कभी शूल उठा करता, जी मिचलात रहता, आँखों के आगे अँधेरा छाजाता, सब चीज़ों से अरुचि होती, आँ काली होजातीं, और शरीर सूज जाया करता है ॥ ६ ॥

उपद्रव।

क्लमः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः।
क्रिमिजे क्रिमिजातीनां श्लैष्मिकाणां च ये मताः ॥ ७ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने हृद्रोगनिदानं समाप्तम् ॥ ७ ॥

मनमें ग्लानि होना, शरीरमें पीड़ा होना, चक्कर आना, शरीरका सू जाना ये हृद्रोग के उपद्रव हैं। इन के सिवाय "गौरवं कफ संस्रावः" आ कफज हृद्रोगमें जो लक्षण कह आए हैं वे ही कृमिज हृद्रोगमें हुआ करते हैं॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने हृद्रोगनिदानम् ॥२९॥

अथ मूत्रकृच्छ्रनिदानम् ।

उत्पत्ति और कारण ।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसङ्गनित्यद्रुतपृष्ठयानात् ।
आनूपमांसाध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणां तथाऽष्टौ ॥१॥
पृथङ्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथवा कोपमुपेत्य बस्तौ ।
मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥ २ ॥

अधिक व्यायाम करने, कोई तीखी दवा खाने, किसी रूखी वस्तुके सेवन करने, शराब पीने, नाचने, अधिक स्त्रीप्रसंग करने, वेग के साथ किसी के पीछे दौड़ने, जलके समीप रहनेवाले जीवों अथवा मछली खाने और अजीर्ण होने पर प्राणी को यह मूत्रकृच्छ्र रोग होजाया करता है॥१॥ अपने अपने निदानों से वातादि दोष पृथक् पृथक् अथवा एक बारगी कुपित होकर वास्ति (पेडू) में रुक जाते और मूत्रके रास्ते को रोक कर प्राणी को बड़ा कष्ट देते हैं इससे मूत्र बड़ी कठिनाई से उतरता है ॥ २ ॥

वातपित्तकफज तथा सन्निपातज मूत्रकृच्छ्र के लक्षण ।

तीव्रार्तिरुग्वङ्क्षणबस्तिमेढ्रे स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात् ।
पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात् ॥३॥
बस्तेः सलिङ्गस्य गुरुत्वशोथौ मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे ।
सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपाताद्भवन्ति तत्कृच्छ्रतमं हि कृच्छ्रम् ॥४॥

वात के प्रकोपसे उत्पन्न मूत्रकृच्छ्रमें फोतों की सन्धियों, मूत्राशय तथा लिङ्गमें बड़ी पीड़ा होती थोड़ी थोड़ी देरमें थोड़ा थोड़ा पेशाब होता है। पित्तके प्रकोप से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्रमें पीले रंगका, लाल, जलनके साथ पीड़ा करता हुआ मूत्र वेगके साथ आया करता है। कफके कुपित होने पर उत्पन्न मूत्रकृच्छ्रमें मूत्राशय और लिङ्गमें गुरुता आजाती तथा मूत्रमें चिकनापन होता है। सन्निपात से जायमान मूत्रकृच्छ्रमें ऊपर

कहे हुए प्रत्येक दोषोंके लक्षण दीखते हैं और यह सन्निपातज मूत्रकृ-
बड़ा कठिन होता है यानी जल्दी इसका निवारण नहीं होने आता ॥३॥४

शल्यज मूत्रकृच्छ्र के लक्षण ।

मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु वा ।
मूत्रकृच्छ्रं तदाघाताज्जायते भृशदारुणम् ॥ ५ ॥
वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिङ्गानि निर्दिशेत् ।

यदि मूत्रको संचालन करनेवाली नसोंमें किसी प्रकार चोट आजाती त
उसके आघातसे बड़ा भीषण मूत्रकृच्छ्र रोग उत्पन्न होता है। इसे लो
शल्यज मूत्रकृच्छ्र कहते हैं। इसके सारे लक्षण वातज मूत्रकृच्छ्र के समा
होते हैं ॥ ५ ॥

पुरीषज के लक्षण ।

शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः ॥ ६ ॥
आध्मानं वातशूलं च मूत्रसङ्गं करोति च ।

यदि कभी किसी तरह मल के ऊपर आघात पहुँचता तो वायु दूषि
होकर उलटा चलने लगता जिससे पेट तन जाता, शूल उठने लगत
और मूत्रके बहाव को रोक दिया करता है। इसे लोग पुरीषज मूत्रकृच्छ्र
कहते हैं ॥ ६ ॥

मूत्रकृच्छ्र के लक्षण ।

अश्मरीहेतु तत्पूर्वं मूत्रकृच्छ्रमुदाहरेत् ॥ ७ ॥
शुक्रे दोषैरुपहते मूत्रमार्गे विधाविते ।
सशुक्रं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्बस्तिमेहनशूलवान् ॥ ८ ॥

यदि अश्मरी (पथरी) के कारण मूत्र के उतरनेमें रुकावट हो तो उसे
लोग अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्र कहते हैं। उसी प्रकार यदि शुक्र (वीर्य) में
वातादि समस्त दोषों का प्रकोप होता तो मूत्राशयमें एक प्रकार का
घाव होजाता अथवा वीर्यके साथ मूत्र उतरता और पेशाब करते समय
पेडू और अण्डकोषमें शूल सा चुभने लगता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

शर्कराजन्य मूत्रकृच्छ्र के लक्षण ।

अश्मरी शर्करा चैव तुल्यसंभवलक्षणे ।
विशेषणं शर्करायाः शृणु कीर्तयतो मम ॥ ९ ॥
पच्यमानाऽश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च वायुना ।
विमुक्तकफसन्धाना क्षरन्ती शर्करा मता ॥ १० ॥
हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षावग्निश्च दुर्बलः ।
तया भवति मूर्च्छा च मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् ॥ ११ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने मूत्रकृच्छ्रनिदानं समाप्तम् ॥ ३० ॥

अश्मरी और शर्करासे जायमान मूत्रकृच्छ्रके लक्षण एकही तरहके होते हैं । शर्करामें जो विशेषताएं होती हैं उन्हें अलग बतलाता हूं, सुनिए, जब कि पित्त अश्मरीको पकाता हो और वायु उसे सुखा रहाहो उसमें यदि कफका मेल न हो ऐसी अश्मरी यदि मूत्रके मार्गसे रेतके समान झरने लगे तो उसे लोग शर्करा कहते हैं । उस शर्कराके योगसे हृदयमें पीड़ा होती, शरीर काँपने लगता, कोखमें शूल उठता, अग्नि मन्द पड़ जाता, और कभी कभी गश भी आजाती है । यह बड़ाही भयानक मूत्रकृच्छ्र रोग है ॥ ९–११ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने मूत्रकृच्छ्रनिदानम् ॥ ३० ॥

अथ मूत्राघातनिदानम् ।

निदान और संख्या ।

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश ।
प्रायो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिकादयः ॥ १ ॥

वातादि दोषोंके कुपित होने अथवा मलमूत्रका वेग रोकनेके कारण वातकुण्डलिकादि तेरह प्रकारका मूत्राघात रोग होता है ॥ १ ॥

वातकुण्डलिक मूत्राघात के लक्षण ।

रौक्ष्याद्वेगविघाताद्वा वायुर्बस्तौ सवेदनः ।

मूत्रमाविश्य चरति विगुणः कुण्डलीकृतः ॥ २ ॥
मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं संप्रवर्तते ।
वातकुण्डलिकां तां तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणम् ॥ ३

रुखाईके कारण अथवा मलमूत्रका वेग रोकनेसे वेदनायुक्त वायु बा (पेडू)के रास्तेसे मूत्रमें प्रविष्ट होता और दूषित होकर कुण्डलाकार रूप उसमें घूमने लगता है । ऐसी हालतमें बहुत थोड़ा थोड़ा मूत्र बड़ी पीड़ साथ बाहर आता है । इसे लोग वातकुण्डलिका नामक मूत्राघात रो कहते हैं । यह बड़ा दारुण रोग होता है ॥ २ ॥ ३ ॥

अष्ठीलानामक मूत्राघात के लक्षण ।

आध्मापयन्बस्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्चलोन्नताम् ।
कुर्यात्तीव्रार्तिमष्ठीलां मूत्रविण्मार्गरोधिनीम् ॥ ४ ॥

वायु दूषित होकर पेडू, गुदा तथा मूत्राशयको तान कर इधर उधर च वाला ऊँचा, कष्ट देनेवाला, मलमूत्रके मार्गको रोकने वाला अष्ठीलानाम रोगको जन्म देता है ॥ ४ ॥

वातबस्ति मूत्राघात के लक्षण ।

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः ।
निरुणद्धि मुखं तस्य बस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः ॥ ५ ॥
मूत्रसङ्गो भवेत्तेन बस्तिकुक्षिनिपीडितः ।
वातबस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥ ६ ।

जो गँवार मूत्र रोकनेसे होनेवाली हानियोंको न जानता हु मूत्रको रोकलेता है तो मूत्राशयमें रहनेवाला वायु दूषित होकर मूत्राश का मुँह बन्द कर देता है अत एव मूत्रका भी उतरना रुकजाता औ मूत्राशय तथा कोठेमें प्रविष्ट होकर वह वायु पेडू और कोखमें जोरोंकी वेदना उत्पन्न कर दिया करता है । इसे लोग वातबस्तिनामक मूत्राघात रोग कहते हैं । यह बड़ी कठिनाईसे साध्य होता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

मूत्रातीत के लक्षण।

चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्तते।
मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते॥ ७॥

यदि कोई देरतक पेशाब रोक करके पेशाब करने बैठे तो मूत्र जल्द नहीं उतरता बल्के धीरे २ आता है। इसे लोग मूत्रातीत नामक मूत्राघात रोग कहते है॥ ७॥

मूत्रजठर के लक्षण।

मूत्रस्य वेगेऽभिहते तदुदावर्तहेतुकः।
अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्भृशम्॥ ८॥
नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनम्।
तन्मूत्रजठरं विद्यादधोबस्तिनिरोधनम्॥ ९॥

यदि पेशाबका वेग रुक जाता तो उदावर्त रोग होजाया करता और अपान वायु कुपित होकर उदरमें भरजाता है। ऐसी अवस्थामें नाभिके नीचे भाग यानी पेडू फूल जाता और उसमें भीषण वेदना होने लगती है। इसे लोग मूत्रजठर रोग कहते हैं यह वस्तिके नीचेवाले मूत्राशयको वन्द कर दिया करता है॥ ८॥ ९॥

मूत्रोत्सङ्ग के लक्षण।

बस्तौ वाऽप्यथवा नाले मणौ वा यस्य देहिनः।
मूत्रं प्रमुक्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः॥ १०॥
स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाऽथ नीरुजम्।
विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः॥ ११॥

यदि किसी प्राणीके पेडूमें पेशावको उतारनेवाली नलियोंमें अथवा मणि (मूत्राशयकी सुपारीमें) मूत्र आकर रुक जाय या पेशाब रक्तको लिए हुए उतरे, थोड़ा थोड़ा मूत्र आवे, मूत्र उतरनेके साथ पीड़ा हो या विल्कुल दर्द न हो तो दूषित वायुसे उत्पन्न यह मूत्रोत्संग नामक रोग कहलाता है॥ १०॥ ११॥

मूत्रक्षय के लक्षण ।

रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ ।
मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम् ॥ १२ ॥

जिसका शरीर रूखा होगया या थक गया है उसके पित्त तथा पवन वस्ति स्थानमें पहुंचकर मूत्रक्षय नामक रोगको उत्पन्न करदेते हैं । इसके होने पर मूत्राशयमें बड़ी पीड़ा और दाह होती है ॥ १२ ॥

मूत्रग्रन्थि के लक्षण ।

अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् ।
अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥ १३ ॥

यदि पेड़ूके नीचे और मूत्राशयके ऊपर एकाएक गोल छोटीसी गांठ निकल आवे और उसमें अश्मरी रोग (पथरी) के सदृश वेदना हो तो उसे लोग मूत्रग्रन्थि रोग कहते हैं ॥ १३ ॥

शुक्रमूत्र के लक्षण ।

मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम् ।
स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक् पश्चाद्वा प्रवर्तते ॥ १४ ॥
भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ।

यदि पेशाव लगाहो और उसे रोक कर स्त्रीप्रसंग करने लगे तो ऐसे प्राणीका वायु कुपित होकर वीर्यको अपनी जगहसे हटाकर दूसरे स्थान पर पहुँचा देता है फिर जब वह पेशाव करने लगता तब पहले या पेशाव करलेनेके बाद वीर्य निकलता है । उस समय उसका स्वरूप राखीसे घुले हुए पानीके समान होता है । इसे लोग मूत्रशुक्र रोग कहते हैं ॥१४॥

उष्णवात के लक्षण ।

व्यायामाध्वातपैः पित्तं बस्तिं प्राप्यानिलान्वितम् ॥१५॥
बस्तिं मेढ्रं गुदं चैव प्रदहेत्स्रावयेदथ ।
मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव च ॥ १६ ॥
कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जन्तोरुष्णवातं ब्रुवन्ति तम् ।

मूत्रसाद के लक्षण ।

पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्येतेऽनिलेन चेत् ॥ १७ ॥
कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं श्वेतं रक्तं घनं सृजेत् ।
सदाहं रोचनाशङ्खचूर्णवर्णं भवेत्तु तत् ॥ १८ ॥
शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ।

अधिक परिश्रम करने, ज्यादा रास्ता चलने और घाम लगनेके कारण पित्त वायुको अपने साथ लेकर पेडूमें पहुँच जाता उस समय वह बस्ति, अण्डकोश तथा गुदाको जलाता हुआ मूत्रको धीरे धीरे उतारता है । मूत्रका रंग उस समय हल्दीके समान पीला, रक्तसे मिला हुआ अथवा बिल्कुल रक्त जैसा होता है और बड़ी कठिनाईसे बार बार थोड़ा थोड़ा पेशाब उतरता है । इसे लोग उष्णवात नामक रोग कहते हैं ॥१५-१६॥ जिस समय पित्त या कफ अथवा दोनोंही जाकर वायुसे मिलजाते हैं तो बड़ी कठिनाईसे पीला, लाल अथवा सफेद और गाढ़ा पेशाब हुआ करता है । पेशाव जलनके साथ उतरता और थोड़ीही देर में गोरोचन अथवा शंखके चूर्णकी तरह सफेद रंगका भुराभुरा सा होजाता अथवा सूखजानेके अनन्तर उसमें कई रंग दीखने लगते हैं । इसकी मूत्रसाद संज्ञा है ॥ १७ ॥ १८ ॥

विड्विघात के लक्षण ।

रूक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावृत्तं शकृद्यदा ॥ १९ ॥
मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत विट्संसृष्टं तदा नरः ।
विड्गन्धं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातं विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

रूखा अन्न खानेवाले एवं दुर्बल मनुष्यके मलको वायु उड़ा कर मूत्रस्थान पर ले आता है ऐसी अवस्थामें मूत्रका मार्ग रुकजाता और यदि आता भी है तो मूत्र विष्ठाकी दुर्गन्धिसे मिला हुआ रहता और पेशाब करते समय बड़ा कष्ट होता है । लोग इसे विड्विघात कहते हैं ॥१९॥२०॥

बस्तिकुण्डलिक के लक्षण ।

द्रुताध्वलङ्घनायासैरभिघातात्प्रपीडनात् ।

स्वस्थानाद्बस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥ २१ ॥
शूलस्पन्दनदाहार्तो बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि ।
पीडितस्तु सृजेद्धारां संस्तम्भोद्वेष्टनार्तिमान् ॥ २२ ॥
बस्तिकुण्डलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम् ।
पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारमबुद्धिभिः ।
तस्मिन्पित्तान्विते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता ॥ २३ ॥
श्लेष्मणा गौरवं शोथः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम् ।

जल्दी जल्दी रास्ता चलने, उपवास करने, ज्यादा परिश्रम करने, किसी प्रकारकी चोट लगने, कहीं पर दब या कुचल जानेके कारण मूत्रको संचालन करनेवाली वस्ति अपनी जगहसे हट कर ऊपरकी ओर चली जाती और फूलकर गर्भकी तरह होजाया करती है। इसके कारण कुछ शूल उठने लगता, गात्र फड़कने लगते, दाह होने लगती, पेशाब बूँद बूँद करके उतरने लगता है। यदि पेशाब रुक जाता तो बड़ी वेदना होने लगती है। इसे लोग वस्तिकुण्डलिक कहते हैं। यह विष तथा शस्त्रके समान भीषण होता है। इस रोगमें वातकी प्रधानता होती और साधारण बुद्धि रखनेवाले वैद्योंके लिए इसका निवारण करना कठिन होता है। यदि यह वस्तिकुण्डलिक पित्तप्रधान हो तो दाह होती, शूल उठता, मूत्र का रंग कई तरहका होता है। यदि श्लेष्म युक्त हो तो पेशाब सफेद, चिकना और गाढ़ा होता है किन्तु मूत्रस्थान पर सूजन होजाया करती है॥

मूत्राघात के साध्यासाध्यत्व।

श्लेष्मरुद्धबिलो बस्तिः पित्तोदीर्णो न सिध्यति ॥ २४ ॥
अविभ्रान्तबिलः साध्यो न तु यः कुण्डलीकृतः ।

जिस रोगी के मूत्राशय का छिद्र कफसे रुँधजाता या पित्त प्रबल होता तो वह रोग असाध्य होता है। लेकिन जिसके मूत्राशय का छिद्र खुला रहता वह साध्य हुआ करता उसी तरह जो मूत्राशय कुण्डलीकृत नहीं होता वह भी साध्य हुआ करता है ॥ २४ ॥

कुण्डलीभूत मूत्राघात के लक्षण।

स्याद्बस्तौ कुण्डलीभूते तृण्मोहः श्वास एव च ॥२५॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने मूत्राघातनिदानं समाप्तम्।

मूत्राशयके कुण्डलीकृत होने पर प्यास ज्यादा लगती, रोगी कभी कभी बेहोश होजाया करता और श्वासका वेग प्रबल होता है ॥ २५ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने मूत्राघातनिदानम् ॥ १ ॥

अथाश्मरीनिदानम्।

अश्मरी (पथरी) की उत्पत्ति और संख्या।

वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजाऽपरा।
प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा अश्मर्यः स्युर्यमोपमाः ॥ १ ॥

वात पित्त और कफ इन तीनों दोषों से तीन प्रकार की अश्मरी (पथरी) होती चौथी शुक्र (वीर्य) के दोष से होती है। प्रायः सब प्रकार की अश्मरीमें कफकी ही प्रधानता रहती और ये सब के सब यमकी तरह भयानक हैं ॥ १ ॥

विशोषयेद्बस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा।
यदा तदाऽश्मर्युपजायते तु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥२॥

जब वायु मूत्राशयमें पहुँच कर पित्त समेत शुक्र (वीर्य) के साथ साथ मूत्र एवं कफ को सुखा देता तो वही जमकर पथरी का रूप धारण कर लिया करता है। जिस तरह गाय के पित्तमें रुक कर मूत्र गोरोचन बन जाता है ॥ २ ॥

पूर्वरूप।

नैकदोषाश्रयाः सर्वाः अथासां पूर्वलक्षणम्।
बस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक् ॥ ३ ॥
मूत्रे बस्तिसगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः।

किसी भी अश्मरीमें कोई एक दोष नहीं कुपित होता बल्के कई दोष एक साथ उभड़ते हैं । इन का पूर्वरूप इस प्रकार है:—समस्त अश्मरियों में पेडू फूल जाते, उसके आस पास की जगहोंमें पीड़ा होने लगती, पेशाब में बकरे के मूतकी तरह दुर्गन्धि आती, मूत्र बड़ी कठिनाई से उतरता, बुखार आजाता और किसी चीज़में तबीयत नहीं लगती है ॥ ३ ॥

सामान्य लक्षण ।

सामान्यलिङ्गं रुङ्नाभिसेवनीवस्तिमूर्धसु ॥ ४ ॥
विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गे निरोधिते ।
तद्व्यपायात्सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम् ॥ ५ ॥
तत्संक्षोभात्क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत् ।

नाभि और मूत्राशय के ऊपरी भागमें पीडा होती पेशाब करते समय मूत्र की धार फट फट कर बहती और पेशाब का मार्ग रुक जाया करता है । जब कभी पथरी अपने स्थान से हट जाती तो पेशाब सुखसे उतरता अर्थात् कोई तरह की वेदना नहीं होती । मूत्र का रंग भी साफ होता है । यदि पथरी टलजाने की वजह से घाव होजाता तो मूत्र रुधिरके साथ निकला करता है यदि कोई तरह जोर किया जाता तो वेदना और भी जोरोंके साथ होने लगती है ॥४॥५॥

वातज अश्मरी के लक्षण ।

तत्र वाताद्भृशं चार्तो दन्तान् खादति वेपते ॥ ६ ॥
मृद्नाति मेहनं नाभिं पीडयत्यनिशं क्वणन् ।
सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः ॥ ७ ॥
श्यावारुणाऽश्मरी चास्य स्याच्चिता कण्टकैरिव ।

वायुके प्रकोपसे उत्पन्न पथरी रोगमें अतिशय पीडा होती, रोगी मारे व्यथाके दाँत पीसने और थरथराने लगता है । पेशाब करते समय नाभि और पेडूको सहलाता तथा काँखता जाता है । पाखानेके समय अपान वायु के साथ मल उतरता और एक एक बूंद पेशाब गिरा करता है ।

कदाचित् भीतर से पथरी भी निकल आती है। लाल काला मिला हुआ उसका रंग होता और वह चारों ओर से कँटीली सी मालूम होती है ॥६॥७॥

पित्तज अश्मरी के लक्षण ।

पित्तेन दह्यते बस्तिः पच्यमान इवोष्मवान् ॥ ८ ॥
भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्तपीताऽसिताऽश्मरी ।

पित्तके प्रकोप से उत्पन्न अश्मरीमें पेडू जलने लगता और गरमी इतनी ज्यादा मालूम होती जैसे कोई पकाए डालता हो। जब पथरी निकलती तो उसका स्वरूप भिलावे के समान लाल पीला तथा सफेद होता है॥८॥

कफज अश्मरी के लक्षण ।

बस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः ॥ ९ ॥
अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाऽथवा सिता ।
एता भवन्ति बालानां तेषामेव च भूयसा ॥ १० ॥
आश्रयोपचयाल्पत्वाद्ग्रहणाहरणे सुखा ।

कफके प्रकोपसे जायमान अश्मरी से मूत्राशयमें कोंचने की तरह वेदना होती, मूत्राशयका स्थान कफके कारण शीतल तथा भारी हुआ करता है। इसकी पथरी बड़ी, चिकनी, शहदके समान रंगवाली तथा सफेद होती है ॥ ९ ॥ अधिकांशमें ऊपर कही हुई सब पथरियां बच्चों को ही होती हैं क्यों कि उनका भोजन आदि भारी एवं शीतल होता मूत्राशय छोटा और मुलायम रहता अत एव जल्दी ग्रन्थि पड़ जाती है और उसके ग्रहण करनेमें भी किसी प्रकारकी अड़चन नहीं पड़ती बड़े सुखसे ग्रहण होजाया करती है ॥ १० ॥

शुक्राश्मरी की सम्प्राप्ति ।

शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात् ॥ ११ ॥
स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः ।
शोषयत्युपसंगृह्य शुक्रं तच्छुक्रमश्मरी ॥ १२ ॥

शुक्राश्मरी उन बड़े लोगों को ही होती है जिनके कि वीर्य उत्पन्न

होजाता है और वीर्यके रोकने से ही इस की उत्पत्ति होती है। जैसे मैथुन करते समय वीर्य ऊपर से नीचे की ओर चला किन्तु किसी कारण वश निकला नहीं, लिंगमें ही रुक गया तो वही वीर्य दोनों अण्डकोशोंके बीचमें पहुँच कर सूख जाता और शुक्राश्मरी का रूप धारण कर लिया करता है ॥११॥१२॥

शुक्राश्मरी के लक्षण।

बस्तिरुङ्मूत्रकृच्छ्रत्वमुष्कश्वयथुकारिणी।
तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ॥ १३ ॥
पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन् अश्मर्य्येव च शर्करा।
अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे॥ १४ ॥
निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे निरुध्यते।
मूत्रस्रोतः प्रवृत्ता सा सक्ता कुर्यादुपद्रवान् ॥ १५ ॥

मूत्रस्थान में व्यथा होना, मूत्र का बड़ी कठिनाई से उतरना, अण्ड कोशों में सूजन होजाना ये शुक्राश्मरी के लक्षण हैं। इन के अतिरिक्त इस शुक्राश्मरी के उत्पन्न होते ही वीर्य आता तो नष्ट हो जाया करता है। उस के नष्ट होने का कारण यह है कि उस के स्थान को दबाने से वीर्य पानी की तरह पतला हो कर बह जाया करता है। आगे चलकर वही शुक्राश्मरी शर्करा का रूप धारण कर लिया करती है। उसी को कोई कोई सिकता भी कहते हैं। जब शुक्राश्मरी में वायु प्रविष्ट होकर उसे जमा कर चीनी की तरह बना देता तो वह पेशाब के साथ निकलने लगता है इसी लिए इसका शर्करारोग नाम पड़ा। प्रविष्ट होते समय वायु यदि सीधा रहा तब तो जैसा ऊपर बतलाए हैं वैसा बन कर पेशाब के रास्ते से गिरने लगता किन्तु वायु उल्टा प्रविष्ट होता तो मूत्र बँध जाता और शर्करा भी रुक कर मूत्रवाहिनी नसों में ठहर जाती एवं नाना प्रकार के उपद्रव खड़ा कर दिया करती है ॥ १३–१५ ॥

अश्मरी के उपद्रव।

दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिशूलमथारुचिम्।

पाण्डुत्वमुष्णवातं च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम् ॥ १६ ॥

इस अश्मरी रोग के होने पर प्राणी दुर्बल होजाता, मन में ग्लानि होती, देह कृश हो जाती, पेट में शूल उठने लगता, किसी वस्तु में तबीयत नहीं लगती, आकृति पीली पड़ जाती, वायु गरम हो जाता, प्यास लगती, हृदय में पीड़ा होती और बार बार उबकाई आती या वमन होजाया करता है ॥ १६ ॥

अश्मरी एवं शर्करा के असाध्य लक्षण ।

प्रशूननाभिवृषणं बद्धमूत्रं रुजातुरम् ।
अश्मरी क्षपयत्याशु सिकता शर्करान्विता ॥ १७ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदानेऽश्मरीनिदानं समाप्तम् ॥ ३२ ॥

जिस अश्मरी रोग में नाभि तथा अण्डकोश सूज आएँ, पेशाब बन्द होजाय, पीड़ा ज़ोरों से हो, इस प्रकार की पथरी अथवा सिकता रोगी को मार डाला करती है ॥ १७ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासमन्विते माधवनिदाने अश्मरीरोगनिदानम् ॥ ३२ ॥

अथ प्रमेहनिदानम् ।

प्रमेह के मूल कारण ।

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्यौदकानूपरसाः पयांसि ।
नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥ १ ॥

बैठे बैठे दुःख होना, स्वप्न में आनन्दित होना, दही, अथवा गावँ का पानी या जल में रहने वाली मछली आदि के खाने अथवा दूध अधिक सेवन करने के कारण, नया अन्न पानी खाने पीने, गुड़ से बनी चीजें खाने और कफ को प्रकुपित करनेवाले पदार्थ खाने से इस प्रमेह रोग की उत्पत्ति हुआ करती है। ये ही सब इस रोग के मूल कारण माने गए हैं ॥ १ ॥

वातपित्तादि से प्रमेह की संप्राप्ति ।

मेदश्च मांसं च शरीरजं च क्लेदं कफो बस्तिगतः प्रदूष्य ।

करोति मेहान् समुदीर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि॥२॥
क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य धातून्संदूष्य मेदान् कुरुतेऽनिलश्च।

कफ मूत्राशय को दूषित करके मेद, मांस एवं शरीर से उत्पन्न रस स्वरूप जल को दूषित करता हुआ प्रमेह को उत्पन्न करता है। उसी प्रकार गरम चीज़ें खाने से पित्त कुपित हो कर उपयुक्त मेद मांसादि को दूषित कर के प्रमेह को जन्म देता है। एवं रीत्या यदि समस्त दोष क्षीण होजाते तो धातु को दूषित करके तथा खींच कर वायु प्रमेह को उत्पन्न करता है॥ २॥

समस्त प्रमेहों के दूष्य दूषकों का संग्रह।

साध्याः कफोत्था दश पित्तजाः षड्
याप्या न साध्यः पवनाच्चतुष्कः॥ ३॥
समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्च यथाक्रमं ते॥
कफः सपित्तः पवनश्च दोषा मेदोऽस्रशुक्राम्बुवसालसीकाः।
मज्जा रसौजः पिशितं च दूष्याः प्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः॥४॥

कफ से उत्पन्न दस प्रकार के प्रमेह साध्य होते हैं उसी तरह पित्त से उत्पन्न छ प्रकार के प्रमेह याप्य यानी कष्टसाध्य माने गए हैं। वायु से उत्पन्न चार प्रकार के प्रमेह असाध्य होते हैं इसमें कारण यह है कि कफ से उत्पन्न प्रमेह की क्रिया सम, पित्तज प्रमेह की क्रिया विषम एवं वातज प्रमेह की क्रिया बड़ी ही भयंकर होती है, कफ, पित्त और वायु ये तीन दोष हैं। मेद, अस्थि (हड्डी) शुक्र (वीर्य) जल, वसा, लासा, मज्जा, रस तथा ओज और मांस ये दूष्य होते हैं। इन्हीं भेदों से यह प्रमेह रोग बीस प्रकार का होता है॥ ३॥ ४॥

प्रमेह का पूर्वरूप।

दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः।
दाहश्चिक्कणता देहे तृट् स्वाद्वास्यं च जायते॥५॥

दाँतों और जीभमें मैल जमजाना, हाथ पैरमें जलन होना, शरीरमें विशेष चिकनापन होना, प्यास लगना, मुँहका स्वादिष्ठ रहना ये सब लक्षण तब दिखाई देते हैं जब प्रमेह होने को होता है। ये इस रोगके पूर्वरूप बतलाए गए हैं ॥ ५ ॥

प्रमेह के सामान्य लक्षण।

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता।
दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ॥ ६ ॥

प्रत्येक प्रमेह का साधारण लक्षण यह होता है कि पेशाब ज्यादा आता और उसका रंग मटमैला हुआ करता है। यद्यपि ऊपर कहे हुए दोष और दूष्यमें कोई विशेषता नहीं है किन्तु उनके संयोगविशेष से तथा मूत्रादिकोंके वर्णभेदसे प्रमेहके कई भेद हुआ करते हैं ॥ ६ ॥

कफज प्रमेह के भेद और लक्षण।

मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते।
अच्छं बहु सितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् ॥ ७ ॥
मेहत्युदकमेहेन किंचिदाविलपिच्छिलम्।
इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः ॥ ८ ॥
सान्द्रीभवेत् पर्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति।
सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम् ॥ ९ ॥
संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम्।
शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति ॥ १० ॥
मूर्ताणून् सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान्।
शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम् ॥ ११ ॥
शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति।
लालातन्तुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ १२ ॥

(१) कफके प्रकोप से उत्पन्न प्रमेहमें पेशाबका रंग बहुत सफेद, ठंढा, गन्धविहीन, पानीके समान, कुछ मटमैला और चिकना हुआ करता है। इसे लोग उदकमेह कहते हैं।

(२) जिस प्रमेहमें ऊँखके रसकी तरह बहुत मीठा मूत्र हो उसको इक्षुमेह कहते हैं।

(३) यदि मूत्र कारोरा शीशीमें कुछ देर रखनेसे जमजाय तो उसे सान्द्रमेह समझे।

(४) यदि मूत्र मदिराके समान ऊपर साफ तथा नीचे गाढ़ा रहे तो उसे सुरामेह समझना चाहिए।

(५) यदि पेशाब करते समय रोमाञ्च होजाय तथा चावलके आँटे की तरह सफेद और मीठा मूत्र आवे तो उसे पिष्टमेह जानना चाहिए।

(६) यदि मूत्र वीर्यके समान रूप रंगका हो या वीर्य से मिला हो तो उसे शुक्रप्रमेह समझे।

(७) यदि मूत्रके साथ साथ कुछ रेत भी आया करे तो उसे सिकता प्रमेह जाने।

(८) यदि पेशाब अतिशय ठंढा, मीठा तथा अधिकता से हो तो उसे शीतप्रमेह जाने।

(९) यदि पेशाब बहुत ठहर ठहर कर आवे तो उसे शनैः प्रमेह समझना चाहिए।

(१०) यदि मूत्र लारके समान चटचटाता हुआ उतरे तो उसे लाला-प्रमेह जानना चाहिए॥ ७-१२॥

पित्तज प्रमेह के प्रकार एवं लक्षण।

गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत्।
नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मसीनिभम्॥ १३॥
हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासंनिभं दहत्।
विस्रं माञ्जिष्ठमेहेन मञ्जिष्ठसलिलोपमम्॥ १४॥
विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः।

(१) पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न छ प्रकार के प्रमेहोंमें जिसमें पेशाब का गन्ध, वर्ण, रस और स्पर्श खारे पानीके समान खारा हो उसे क्षार-प्रमेह कहते हैं ।

(२) नीले रंग का मूत्र हो तो उसे नीलप्रमेह समझे ।

(३) जिसका पेशाब बिल्कुल काले रंगका हो उसे कालप्रमेह जाने ।

(४) जिसमें हल्दीके समान पीला और कडुवापन लिए हुए पेशाब हो उसे हारिद्रप्रमेह समझना चाहिए ।

(५) जिस पेशावमें कच्चे मांसके सड़नेकी तरह बू आवे और मंजीठके काढ़ेके समान रंग हो उसे मांजिष्ठप्रमेह समझना चाहिए ।

(६) जिसके मूत्रमें से सड़े मांसके समान दुर्गन्ध आवे एवं स्वाद खारा हो तथा रंग रक्तके समान लाल हो तो उसे रक्तप्रमेह समझे॥१३॥१४॥

वातजप्रमेह के प्रकार तथा लक्षण ।

वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः ॥ १५ ॥
मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः ।
कषायं मधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहं वदेद्बुधः ॥ १६ ॥
हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम् ।
सलसीकं विबद्धं च हस्तिमेही प्रमेहति ॥ १७ ॥

(१) वायुके प्रकोपसे उत्पन्न प्रमेहमें जिस का मूत्र वसा मिला हुआ और वसाके समान ही रूप रंगका हो तो उसे वसाप्रमेह समझना चाहिए ।

(२) मज्जाके समान या मज्जा से मिला हुआ जिसके पेशाब उतरे उसे मज्जाप्रमेही समझना चाहिए ।

(३) जिसका पेशाब गेरुए रंगके समान और मीठा हो उसे क्षौद्र-प्रमेह जाने ।

(४) जिसका पेशाब मतवाले हाथीके पेशाबके समान कुछ चटचटाता सा बँधा भया हमेशा धीरे २ हो उसे हस्तिप्रमेह समझना चाहिए॥१५॥१६॥१७॥

वातपित्तकफजप्रमेह के उपद्रव।

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्रा कासः सपीनसः।
उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥ १८ ॥
बस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः।
दाहस्तृष्णाऽम्लिका मूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥१
वातजानामुदावर्तः कम्पहृद्ग्रहलोलताः।
शूलमुन्निद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ॥ २० ।

कफसे जायमान प्रमेहोंमें अन्न नहीं पचता, किसी वस्तुमें रुचि रहती, जब तब वमन भी होता रहता है। ज्वर, खाँसी, पीनसरो तथा नाक बहने का भी उपद्रव जारी रहता है इसी प्रकार पित्तज प्रमे से वस्ति (मूत्राशय) तथा लिङ्गमें पीड़ा होती, ज्वर, दाह, तृष्णा ग्लानि, मूर्च्छा आती एवं पतला दस्त हुआ करता है। वायु से उत्त प्रमेह में उदावर्त, शरीरमें कँपकँपी, हृदयमें जकड़न, सब प्रकारकी ची खाने की इच्छा होना, पेटमें शूल उठना, नींद न आना, देह सूख जाना खाँसी आना और श्वास का वेग आना इतने प्रकार के उपद्रव हो हैं ॥१८॥१९॥२०॥

असाध्य लक्षण।

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्रुतमेव च।
पिडकापीडितं गाढः प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ २१ ॥

ऊपर वातप्रमेहके लक्षण कह आए हैं वे जिस प्रमेहमें मौजूद हों, पेशाब अधिक हो, फोड़ा फुन्सी भी अधिक मात्रामें निकल आए तो इ प्रकार का प्रमेह रोगी को मार डालता है ॥ २१ ॥

प्रमेह का दूसरा असाध्य लक्षण।

जातः प्रमेही मधुमेहिनो वा
न साध्य उक्तः स हि बीजदोषात्।

ये चापि केचित्कुलजा विकारा
भवन्ति तांस्तान् प्रवदन्त्यसाध्यान् ॥ २२ ॥

मधुप्रमेहवालों को उसके साथ ही यदि कोई दूसरा प्रमेह भी खड़ा हो जाय तो वीर्यके दोषसे उस का प्रमेह असाध्य हो जाया करता है। इसके अतिरिक्त जिसके कुलपरम्परा से यह प्रमेह रोग होता चला आरहा हो उसके लिए भी यह रोग असाध्य होजाता है ॥ २२ ॥

मधुमेह की उत्पत्ति तथा लक्षण ।

सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः ।
मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि ॥ २३ ॥
मधुमेहे मधुसमं जायते स किल द्विधा ।
क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा ॥ २४ ॥
आवृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन् ।
क्षणात्क्षीणः क्षणात्पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥ २५ ॥
मधुरं यच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति ।
सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः ॥ २६ ॥

जितने भी प्रमेह कह आए हैं यदि ठीकसे उनके प्रतीकार का उपाय न किया जाय तो वे सब मधुप्रमेह होकर असाध्य होजाया करते हैं। मधुमेह मधुके समान दो प्रकार का होता है। पहला धातुके क्रुद्ध होने पर और दूसरा धातुओंके नष्टहोने अथवा वायुके दूषित होजाने पर हुआ करता है। जो प्रमेह वातके दूषित होजाने पर वातपित्त आदि जिन दोषोंसे उत्पन्न होता उनके लक्षण दीखते रहते हैं वह कभी क्षीण होता और कभी पूर्ण हो जाया करता है लोग इस प्रमेह को कृच्छ्रसाध्य कहते हैं। इस मधुप्रमेहके होने पर रोगी प्रायः मीठा ही पेशाब करता है और शरीरके प्रत्येक अवयव मीठे होजाते हैं इसी लिए लोग इसे मधुमेह कहा करते हैं॥२३-२६॥

प्रमेह पिडकाओं के भेद ।

शराविका कच्छपिका जालिनी विनताऽलजी ।
मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका ॥ २७ ॥
विद्रधिश्चेति पिडकाः प्रमेहोपेक्षया दश ।
सन्धिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥ २८ ॥

यदि प्रमेह की उपेक्षा कीजाती तो शराविका, कच्छपिका, जालिनी विनता, अलजी, मसूरिका, पुत्रिणी, विदारिका और विद्रधि ये दस प्रकार की पिडिका यानी फुन्सियाँ निकलती हैं। ये प्रायः सन्धियों के सुकुमार स्थानोंमें तथा जो स्थान विशेष मांसल होते हैं वहाँ ही उत्पन्न हुआ करती हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

पिडकाओं के लक्षण ।

अन्तोन्नता तु तद्रूपा निम्नमध्या शराविका ।
गौरसर्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा च सर्षपी ॥ २९ ॥
सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ।
जालिनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता ॥ ३० ॥
अवगाढरुजाक्लेदा पृष्ठे वाऽप्युदरेऽपि वा ।
महती पिडका नीला विनता नाम सा स्मृता ॥३१
महत्यल्पाचिताज्ञेया पिडका चापि पुत्रिणी ।
मसूराकृतिसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका ॥ ३२ ॥
रक्ता सिता स्फोटचिता दारुणा त्वलजी भवेत् ।
विदारीकन्दवद्वृत्ता कठिना च विदारिका ॥ ३३ ॥

जो फुन्सियाँ अन्तमें ऊँची और बीचमें खाली हों वे शराविका कहलाती हैं। जिसमें कछुए की पीठके समान ऊँचाई हो उसे कच्छपिका कहते हैं। इसमें जलनकी मात्रा विशेष रहती है । उसी प्रकार जालिनी ना

वाली फुन्सियोंमें भी दाह होती और वह मांससे ढकी रहती है । साथही पीड़ा भी विशेष होती है। विनतानामवाली फुन्सियोंमें भी पीड़ा होती, और वह विशेष कर पेट या पीठ में हुआकरती है । इसका आकार बड़ा रंग नीला तथा लाल और उजला रंग मिला हुआ होता है इसके आस पास और भी बहुत सी फुन्सियाँ निकला आयाकरतीं एवं वे बड़ी भीषण हुआ करती हैं । मसूरिका नाम की फुन्सियोंमें मसूरके दाल की तरह दाने निकल आते हैं इसी लिए इसकानाम मसूरिका पड़ा है । उसी प्रकार सर्षपिकामें सरसोंके दानेकी तरह फुन्सियाँ निकलती हैं । पुत्रिणी नाम की फुन्सियाँ बड़े आकार प्रकार की होतीं एवं उसके आस पास बहुत सी छोटी छोटी फुन्सियाँ निकल आया करती हैं । विदारिका विदारी कन्दके समान कड़ी और गोल होती है । ऊपर कहे हुए विद्रधि नामवाले लक्षण जिसमें दीखे उसे विद्रधि नामक फुन्सी कहते हैं यह अक्सर फिल्लियों ही में हुआ करती है ॥ २६–३३ ॥

पिडका के मूलकारण और असाध्य लक्षण ।

ये यन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः ॥ ३४ ॥
विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः ।
तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहः ॥ ३५ ॥
गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिताः ।
सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिडकाः परिवर्जयेत् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने प्रमेहपिडकानिदानं समाप्तम् ॥ ३३ ॥

ऊपर कहे हुए प्रमेहोंमें जिस प्रमेह का कफ पित्तादिकोंमें जो कारण माना गया हो इसमें भी वेही कारण हुआ करते हैं । कहीं कहीं ऐसा भी होता है कि बिना प्रमेह वालों को भी जिनका मेदा खराब होगया है उन के ये फुन्सियाँ होजाया करती हैं और जब तक ये बड़े आकार की नहीं होजातीं तबतक दिखाई भी नहीं देतीं । ये गुदा, हृदय, मस्तक, पीठ एवं मर्मस्थानमें अनेक उपद्रवों के साथ उत्पन्न हों और रोगी का औदर्य अग्नि भी मन्द पड़ गया हो तो उस का परित्याग कर देना चाहिए ॥३४–३६॥

इति श्रीमंजुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने प्रमेहनिदानम् ॥ ३३ ॥

अथ मेदोरोगनिदानम् ।

मेदोरोग की सम्प्राप्ति तथा उत्पत्ति ।

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः ।
मधुरोऽन्नरसः प्रायः स्नेहान्मेदः प्रवर्धयेत् ॥ १ ॥
मेदसाऽऽवृतमार्गत्वात् पुष्यन्त्यन्ये न धातवः ।
मेदस्तु चीयते तस्मादशक्तः सर्वकर्मसु ॥ २ ॥

किसी प्रकारका परिश्रम न करने, दिनमें सोने, कफकारी चीजें खा वाले लोगों का अन्नरस मीठा तथा चिकना होता और वह मेद यानी च को बढ़ा दिया करता है। मेद के बढ़जाने पर शरीरके समस्त मार्ग रु जाते इस कारण और धातुएँ पुष्ट नहीं हो पातीं। मेद यहाँ तक बढ़ जात है कि जिससे पुरुष अपने सब कार्यों के करने में असमर्थ सा होजाय करता है ॥ १ ॥ २ ॥

क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नक्रथनसादनैः ।
युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गन्ध्यैरल्पप्राणोऽल्पमैथुनः ॥ ३ ॥
मेदस्तु सर्वभूतानामुदरेष्वस्थिषु स्थितम् ।
अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ ४ ॥

जिस पुरुष का मेद बढ़जाता तो उसके क्षुद्रश्वास रोग होजाता, प्यास ज्यादा लगती, जब तब मोह होजाता, नींद ज्यादा आती, कभी क श्वास रुकजाता, शरीर शिथिल होजाता, भूख लगती, पसीना बद द निकलने लगता, थोड़ेसे परिश्रममें भी दम आने लगता और मैथुन कर की शक्ति थोड़ी ही रहजाती है। मेद मनुष्य की हड्डियों तथा पे में रहा करता है और जब वह ज्यादा बढ़ जाता तो प्राणी को तोंद निक आया करती है ॥ ३ ॥ ४ ॥

मेद बढ़ जाने के विकार ।

मेदसाऽऽवृतमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः ।

चरन् सन्धुक्षयत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि ॥ ५ ॥
तस्मात् स शीघ्रं जरयत्याहारमभिकाङ्क्षति ।
विकारांश्चाप्नुते घोरान् कांश्चित् कालव्यतिक्रमात् ॥६॥
एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ ।
एतौ तु दहतः स्थूलं वनदावो वनं यथा ॥ ७ ॥
मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः ।
विकारान् दारुणान् कृत्वा नाशयन्त्याशु जीवितम् ॥८॥

जब मेदके कारण मार्ग रुकजाते तो वायु पेटमें रुक कर कोठोंमें घूमा करती है इससे औदर्य अग्नि ज्यादा प्रबल पड़ जाता और आहारको शीघ्र सोख लिया करता है। इससे अन्न जल्दी पचजाता तथा फिर भोजनकरनेकी इच्छा होजाती है। ऐसा करने पर भोजनके समयकी कोई पाबन्दी नहीं रह जाती और बड़े बड़े भयंकर विकार उठ खड़े हो जाया करते हैं। इसमें अग्नि तथा वात विशेष कर ये ही दोनों उपद्रव करते हैं। ये तोंदवाले मोटे ताजे मनुष्यों को ऐसे जला देते हैं जैसे आग वनको जला डालती है ॥ ५-७ ॥ बढ़ते बढ़ते मेद जब बहुत बढ़जाता तो सहसा वातपित्तादिक दोष एक बारगी कुपित होकर दारुण विकारों को उत्पन्न करते एवं रोगीके जीवन को भी ले बीतते हैं ॥ ८ ॥

अतिशयस्थूल के लक्षण ।

मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः ।
अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ९ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने मेदोनिदानं समाप्तम् ॥ ९ ॥

जिसके मेद व मांस बढ़जानेके कारण नितम्ब, पेट तथा स्तन थुलथुलाने लग शरीरमें किसी प्रकार का उत्साह न रहजाय ऐसे प्राणी को लोग अतिस्थूल कहते हैं ॥ ९ ॥

इति श्रीमन्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने मेदोरोगनिदानम् ॥ ३४ ॥

अथोदरनिदानम् ।

उदररोग का कारण ।

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च ।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसंचयात् ॥ १ ॥

प्रायः उदरसम्बन्धी समस्त रोग अग्निके मन्द पड़ने, अजी होने, अथवा सड़े गले अन्नों को खाने या मल के सञ्चित होने प होते हैं ॥ १ ॥

संप्राप्ति ।

रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि संचिताः
प्राणाग्न्यपानान्संदूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥ २ ॥

पसीने को बहानेवाली नसों का मुख बन्द करके जब वात पित्ता दि दोष प्राण, अपान, वायु तथा उदर्य अग्नि को दूषित कर दिय करते हैं तब मनुष्य के शरीरमें उदर रोग की उत्पत्ति हुआ करतीहै ॥२॥

सामान्यरूप ।

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता ।
शोथः सदनमङ्गानां सङ्गो वातपुरीषयोः ॥ ३ ॥
दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि ।
पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः ॥ ४ ॥
संभवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिङ्गं पृथक् शृणु ।

सब उदर रोगोंमें प्रायः पेट फूलजाता, चलने फिरने की शक्ति नहीं रहजाती, शरीर दुर्बल होजाता, अग्नि मन्द पड़जाती, शरीर शोथ जाता, अपान वायु तथा मलका निरोध होजाता, पेटमें एक प्रकार की जलन सी होने लगती और तन्द्रा आती है ॥ ३ ॥ वात, पित्त तथा कफ इन तीनोंके अलग २ दूषित होने पर तीन प्रकार का उदररोग हुआ, फिर तीनोंके मिलजाने पर एक प्रकार का सन्निपातज हुआ । सब मिलाकर चार

फिर प्लीहोदर, क्षतोदर, बद्धोदर तथा जलोदर इन चार भेदों को मिला देने से उदर रोगके कुल आठ भेद हुए उनके लक्षण अलग अलग करके बतलाते हैं, सुनो ॥ ४ ॥

वातज उदररोग के लक्षण ।

तत्र वातोदरे शोथः पाणिपान्नाभिकुक्षिषु ॥ ५ ॥
कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक् पर्वभेदनम् ।
शुष्ककासोऽङ्गमर्दोऽधो गुरुता मलसंग्रहः ॥ ६ ॥
श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्वृद्धिह्रासवत् ।
सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णसिराततम् ॥ ७ ॥
आध्मानदृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च ।
वायुश्चात्र सरुक्शब्दो विचरेत्सर्वतो गतिः ॥ ८ ॥

वात के प्रकोपसे जायमान उदररोगमें हाथ, पैर, नाभि, कोख, पसलियाँ, उदर, कमर तथा पीठमें दर्द होती है और शरीर की सारी जोड़ों में हड़फूटन सी मालूम पड़ती है। सूखी खाँसी आती, गात्रोंमें पीड़ा होती, शरीर का निचला भाग भारी जान पड़ता, मल साफ नहीं उतरता, शरीरकी त्वचाका रंग काला और लाल रंगसे मिला हुआ होता, पेट कभी फूलजाता और कभी आपसे आप पचक भी जाया करता है। पेट चुभा करता और पेटमें इधर उधर काली काली नसें निकली तथा तनी दिखाई देने लगती हैं। पेट फूलजाता तो ठोंकनेसे ढोलके समान आवाज भी उसमेंसे निकलती है। वायु पेटके भीतर वेदना और गुड़गुड़ाहटके साथ चारों ओर घूमा करता है ॥ ५–८ ॥

पित्तज उदररोग के लक्षण ।

पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता ।
भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरित् ॥ ९ ॥
पीतताम्रसिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते ।

धूमायते मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १० ॥

पित्तके कुपित होने पर उत्पन्न उदररोगमें ज्वर आता, मूर्च्छा आजाया करती, दाह होती, प्यास ज्यादा लगती, मुँह कड़ुवा रहा करता चक्कर आया करता, पतला दस्त होता, शरीर की चमड़ी आदि पीली पड़जाती और उदर हरित वर्णका होजाया करता है। पीली और लाल नसें सारे शरीरमें तन जाती हैं, पसीना ज्यादा आता, गरमीके साथ साथ शरीरमें दाह होती, खट्टी डकारें आतीं, नसें छूनेमें मुलायम जान पड़तीं, खाया हुआ अन्न शीघ्र पचजाता और उदरमें विशेष पीड़ा हुआ करती है ॥ ९ ॥ १० ॥

कफज उदररोग के लक्षण।

श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं स्वापश्वयथुगौरवम्।
निद्रोत्क्लेशोऽरुचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता ॥११॥
उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजीततं महत्।
चिराभिवृद्धं कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥ १२ ॥

श्लेष्माके प्रकोप से उत्पन्न उदर रोगमें अङ्ग शिथिल होजाते, नींद अधिक आती, आलस्य हमेशा मौजूद रहती, शरीर भारी रहता, झपकी सी आती रहती, तबीयत उचटी रहती, किसी वस्तुमें मन नहीं लगता श्वास आया करता, जब तब खाँसी आती, शरीर की त्वचा तथा नख आदि सफेद पड़ जाते उदर चिकना निश्चल तथा उज्ज्वल रहा करता और हमेशा तना सा रहता एवं बड़ी देर तक उसमें कड़ाई डटी रहा करती है, पेट छूने में ठंडा, भारी और स्थिर मालूम होता है ॥११॥१२॥

सन्निपातज उदररोग के लक्षण।

स्त्रियोऽन्नपानं नखलोममूत्रविडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः।
यस्मै प्रयच्छन्त्यरयो गरांश्च दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाद्वा ॥ १३ ॥
तेनाशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्युः सुघोरं जठरं त्रिलिङ्गम्।
तच्छीतवाते भृशदुर्दिने च विशेषतः कुप्यति दह्यते च ॥ १४ ॥

स चातुरो मुह्यति हि प्रसक्तं पाण्डुः कृशः शुष्यति तृष्णया च ।
दूष्योदरं कीर्तितमेतदेव प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ १५ ॥

जब कि दुष्ट स्त्रियां किसी मनुष्य को नख, रोम, मूत्र, विष्ठा, ऋतुकाल का रक्त, इन से मिला हुआ कोई अन्न खिला देतीं या पानी पीला देती हैं अथवा कोई शत्रु विष खिला पिला दे या कोई विषैली वस्तु स्वयं विना जाने खाली ले तो तुरन्त वात पित्तादि दोष कुपित होकर पेटको भारी कर देते हैं इससे तीनों दोषोंके लक्षणसे मिला हुआ सन्निपातज जठररोग खड़ा होजाता है। यह रोग अधिकांश में जाड़ेके दिनों या आँधी ववंडरके दिनोंमें अथवा पानी बूँदीवाले दिनोंमें कुपित होता एवं जलने लगता है। ऐसी अवस्थामें रोगी बहुत आतुर होकर मूर्च्छित होजाता, शरीर पीला पड़जाता, अंग दुर्बल होजाते और बेचारा प्यासके मारे धीरे धीरे सूखने लगता है। इसे लोगोंने दूष्योदर रोग कहा है। अब आगे प्लीहोदर रोगके लक्षण बतलाते हैं, उन्हें सुनो॥१३-१५॥

प्लीहोदर के लक्षण ।

विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जन्तोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक् कफश्च ।
प्लीहाभिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धौ प्लीहोत्थमेतज्जठरं वदन्ति ॥ १६ ॥
तद्वामपार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र ।
मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिङ्गैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपाण्डुः ।
सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रवृद्धे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव ॥ १७ ॥

अतिशय दाहकारी तथा बहुतायत गीली वस्तुएँ अधिक सेवन करनेवाले प्राणी का रक्त और कफ दूषित होकर पिलही को बढ़ा देता है। इसी को लोग प्लीहोदर कहा करते हैं। यह पिलही ज्यादातर बाईं ओर होती और दिनो दिन बढ़ती जाती है। रोगी इससे बहुत दुःखित होता है। प्लीहोदरवाले को प्रायः हमेशा थोड़ा ज्वर बना रहता, अग्नि मन्द पड़ जाती, कफज तथा पित्तज उदररोगके लक्षण दीखते रहते हैं। शरीरका बल क्षीण होजाता, और देह बिल्कुल पीली पड़ जाया करती है। यदि ऊपर

कही रीतिके अनुसार पेटमें दहिनी ओर पिलही बढ़ जाय तो उसे लोग यकृद्दाल्युदर नामक उदररोग कहते हैं ॥१६॥१७॥

दोषों का सम्बन्ध ।

उदावर्तरुजानाहैर्मोहतृड्दहनज्वरैः ।
गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्र मलान् क्रमात् ॥ १८ ॥

उदावर्त, शूल, आनाह, मोह, तृष्णा, ज्वर, शरीरका भारीपन, अरुचि, कठिनता इनका क्रमसे वात पित्त कफ इन तीनों दोषों क सम्बन्ध रहा करता है । जैसे—उदावर्त, शूल और आनाह इन तीनों क वायु से सम्बन्ध रहता है । मोह, तृष्णा, दाह एवं ज्वर इन का पित्त सम्बन्ध रहता है । शरीर का भारीपन, अरुचि तथा कठिनता इन क कफ से सम्बन्ध जानना चाहिए ॥ १८ ॥

बद्धगुदोदर के लक्षण ।

यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा बालाश्मभिर्वा पिहितं यथावत् ।
संचीयते तस्य मलः सदोषः शनैः शनैः संकरवच्च नाड्याम्॥१
निरुध्यते तस्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम् ।
हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति ॥ २० ॥

जिस मनुष्य की अँताड़ियाँ स्निग्ध अन्न अथवा नन्हीं नन्हीं पथरिय से रुँद जातीं तो उसके सदोष मल धीरे २ नाड़ियोंमें आकर इस प्रका इकट्ठा होजाते हैं जैसे झाड़ू देने से कतवार इकट्ठा हो जाया करता है ऐसी अवस्थामें उसका पुरीष गुदामें रुकजाता और बड़ी कठिनाईसे थोड़ थोड़ा करके निकलताहै । इसी कारण हृदय और नाभिका मध्यभाग ब जाया करता है इसी को लोग बद्धगुदोदर नामक रोग कहते हैं ॥१९॥२

क्षतोदर के लक्षण ।

शल्यं तथाऽन्नोपहितं यदन्त्रं भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा ।
तस्मात्स्रुतोऽन्त्रात्सलिलप्रकाशः स्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः॥२
नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रम् ।

एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं दकोदरं कीर्तयतो निबोध ।

कंकड़ पत्थर से मिले हुए अन्न के खाने से जब वह अन्न आँतों में पहुँचता और वहाँ उलटता पुलटता है तो आँतों में एक प्रकार का घाव होजाता एवं उसमें से पानी बहने लगता है वह पानी धीरे २ गुदा के मार्ग से बाहर आने लगता है । इस हालत में नाभी के निचले भाग की वृद्धि होजाती और उसमें सुई से कोंचने के समान अत्यन्त वेदना होती है । इसी को लोग परिस्राव्युदर या क्षतोदर कहते हैं । इसके आगे अब दकोदर (जलोदर) के लक्षण बतलाते हैं, सुनो–॥ २१ ॥ २२ ॥

जलोदर के लक्षण ।

यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वान्तो विरक्तोऽप्यथवा निरूढः ।
पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दूष्यन्ति हि तद्वहानि ॥२३॥
स्नेहोपलिप्तेष्वथवापि तेषु दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति ।
स्निग्धं महत्तत्परिवृत्तनाभि समाततं पूर्णमिवाम्बुना च ।
यथा दृतिः क्षुभ्यति कम्पते च शब्दायते चापि दकोदरं तत्॥२४॥

जो प्राणी तेल घी आदि कोई स्निग्ध पदार्थ पीता, अनुवासन, वमन या विरेचन करता और उसके ऊपर तुरन्त ठंडा पानी पीलेता तो उसकी जल वहन करने वाली नाडियाँ दूषित होजातीं और जब वे स्निग्ध वस्तुएँ जाकर उनमें लिपटजातीं तो जैसा मैं पहले कह आया हूँ उसके अनुसार दकोदर यानी जलोदर नामक रोग की उत्पत्ति हुआ करती है । ऐसी अवस्था में नाभि की बाईं ओर से तान कर उदर भर में जल ही जल भर जाता है । ऐसा होने पर जैसे मसक में पानी भर जाता तो वह फूल कर काँपने व थुलथुलाने लगता है उसी तरह पेट भी काँपने, थुलथुलाने व शब्द करने लगता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

उदररोग के साध्यासाध्यत्व ।

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम् ।
बलिनस्तदजाताम्बु यत्नसाध्यं नवोत्थितम् ॥ २५ ॥

पश्चाद्बद्धगुदं तूर्ध्वं सर्वं जातोदकं तथा ।
प्रायो भवत्यभावाय छिद्रान्त्रं चोदरं नृणाम् ॥ २६

जो जलोदर जन्म के साथ ही उत्पन्न हुआ हो वह प्रायः कष्टसा हुआ करता है । किन्तु यदि यह रोग किसी बली प्राणी को नया नया उत्पन्न हुआ हो और जल न उतर पाया हो इसी बीच में इस चिकित्सा प्रारम्भ कर दीजाय तो साध्य भी हो जाता है । ऊपर क हुआ बद्धगुदोदररोग केवल पन्द्रह दिन का होवे तभी उसका प्रतीक कियाजाय तो साध्य होता है । इसके विपरीत जिस किसी जलो रोग में जब पानी पेट में उतर आता तो वह असाध्य हुआ करता है इसके अतिरिक्त जिस उदररोग में भीतर घाव होजाय वह साध्य होकर प्राणी के प्राणों का अन्त करने के लिए होता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

असाध्य उदररोग के लक्षण ।

शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नं तनुत्वचम् ।
बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणं च वर्जयेत् ॥ २७ ॥
पार्श्वभङ्गान्नविद्वेषशोथातीसारपीडितम् ।
विरिक्तं चाप्युदरिणं पूर्यमाणं विवर्जयेत् ॥ २८ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने उदररोगनिदानं समाप्तम् ॥ ३५ ॥

जिस उदररोगी की आँखें फूल आएँ, लिंग टेढ़ा होजाय, शरीर त्वचाएँ नीरस होजायँ, बल, रुधिर, मांस तथा औदर्य अग्नि क्षीण होग हो ऐसे रोगी का परित्याग कर देना चाहिए इसके सिवाय जिस रोगी की पसलियाँ टूट गई हों, कुछ खाने पीने की इच्छा न रह जाय, शरीर शोथ आए, पतले दस्त होते रहें, विरेचन आदि करने पर भी उदर ज्योंका त्यों भरजाया करता हो तो ऐसे रोगी का परित्याग करदेना चाहिए ॥ २७ ॥ २८ ॥

इतिश्रीमञ्जुलाख्यभाषाटिकासहिते माधवनिदाने उदररोगनिदानम् ॥ ३५ ॥
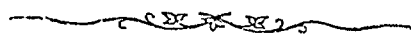
अथ शोथनिदानम् ।

शोथ की संप्राप्ति और लक्षण ।

रक्तपित्तकफान् वायुर्दुष्टो दुष्टान् बहिःसिराः ।
नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् ॥ १ ॥
उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादतः ।
सर्वं हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम् ॥ २ ॥
दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि ।

दूषित वायु दूषित रक्त, पित्त एवं कफ को ऊपर की नसों में लाकर भर देता और उनके मार्गों को दूषित करके त्वचा और मांस के आश्रयभूत हो जाता एवं इस शोथ रोग को उत्पन्न कर दिया करता है। यह शोथ उन्नत, कठिन एवं उपर्युक्त चारों दोषों से मिला हुआ होता है। अनेक कारणों से इसकी उत्पत्ति होती सब का रूपभेद अलग करने पर यह नौ प्रकार होता है। जैसे–वात–पित्त–कफ, इनसे तीन प्रकार का, दो प्रकार का द्वन्द्वज मिलाकर पाँच प्रकार हुए। तीन प्रकार का सन्निपातात्मक और एक प्रकार का अभिघातज एवं विषज ये ही इसके नौ भेद हैं ॥ १ ॥ २ ॥

पूर्वरूप ।

तत्पूर्वरूपं दवथुः सिरायामोऽङ्गगौरवम् ॥ ३ ॥

जब शरीर की नसें जलने लगें और शरीर भारी होजाय तब समझना चाहिए कि अब शोथ होनेवाला है ॥ ३ ॥

शोथ के हेतु ।

शुद्ध्यामयाभुक्तकृशाबलानां क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा ।
दध्यामसृच्छाकविरोधिदुष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणं च ॥ ४ ॥
अर्शांस्यचेष्टा न च देहशुद्धिर्मर्मोपघातो विषमा प्रसूतिः ।

मिथ्योपचारः प्रतिकर्मणां च निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः ॥

जब कोई प्राणी विरेचन वमन आदि द्वारा शरीर को शुद्ध अथवा ज्वरादि होने पर लंघन के कारण दुर्बल होजाय और उसके ऊ खारी, खट्टी, तीखी, गरम एवं गुरुतर चीजों का सेवन करे अथ दही, कच्ची चीजें, मट्ठा, शाक, दूध मछली आदि एक साथ भोजन कर अथवा इस प्रकारका और कोई गरिष्ठ पदार्थ या परस्पर प्रकृतिविरुद्ध चं खाता है उसके या जिसके अर्श (बवासीर) होजाय, वह प्राणी किसी प्रक का परिश्रम न करता हो, देहशुद्धि न करता हो, किसी मर्मस्थानमें चो लग गई हो, स्त्री का यदि गर्भपात होजाय, विरेक, वमन आदि का ठी से उपचार न किया जाय तो इस शोथरोग की उत्पत्ति हुआ कर है। ये ही सब इसकी उत्पत्ति के कारण माने गए हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

सामान्य लक्षण।

सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमूष्माऽथ सिरातनुत्वम्।
सलोमहर्षश्च विवर्णता च सामान्यलिङ्गं श्वयथोः प्रदिष्टम् ॥ ६

शरीर का भारी होजाना, चित्त का व्याकुल रहना, सूजन रहना, गरमी का मौजूद रहना, नसें पतली हो जाना, रोंगटे खड़े ह जाया करना, शरीर का रंग बदल जाना, ये इस शोथरोगके साधार लक्षण हुआ करते हैं ॥ ६ ॥

वातज शोथ के लक्षण।

चलस्तनुत्वक् परुषोऽरुणोऽसितः सुषुप्तिहर्षार्तियुतोऽनिमित्ततः
प्रशाम्यति प्रोन्नमति प्रपीडितो दिवाबली च श्वयथुः समीरणात्

वायु के प्रकोप से उत्पन्न शोथ में चञ्चलता विशेष रहती, शरीर की त्वचाएँ पतली और रूखी हो जातीं, शरीर का रंग लाल और काला हो जाता, शरीर सुन्न हो जाता, कभी हर्ष होता फिर थोड़ी देर में पीड़ा होने लगती है। उभड़ा हुआ शोथ दबाने से दब जाता किन्तु छोड़ देने पर फिर ज्यों का त्यों हो जाया करता है। इस का दिन में विशेष प्रकोप हुआ करता है ॥ १० ॥

पित्तज शोथ के लक्षण ।

मृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवान् भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः ।
य उष्यते स्पर्शरुगक्षिरागकृत् स पित्तशोथो भृशदाहपाकवान् ॥८॥

पित्त से जायमान शोथ मुलायम, कुछ दुर्गन्ध लिए हुए काले और पीले रंग का होता है। इस में चक्कर आता, ज्वर बना रहता, ग्लानि, तृष्णा तथा मद मौजूद रहता है । उस के छूने से पीड़ा होती, आँखें लाल हो जातीं, अतिशय दाह होने के कारण पक्क भी जाया करता है ॥८॥

कफज शोथ के लक्षण ।

गुरुः स्थिरः पाण्डुररोचकान्वितः प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्द्यकृत् ।
स कृच्छ्रजन्मप्रशमो निपीडितो न चोन्नमेद्रात्रिबली कफात्मकः ९

कफ के प्रकोप से उत्पन्न शोथ गुरु, स्थिर, पाण्डु रंगवाला, अरुचियुक्त होता है। इस शोथवाले के हमेशा लार टपकता रहता, नींद विशेष आती, जब तब वमन हुआ करता, अग्नि मन्द पड़ जाती और कठिनाई के साथ उत्पन्न होकर शीघ्र ही शान्त हो जाया करता है। यह दबानेसे फिर नहीं उभड़ता बल्कि ज्यों का त्यों बना रहता और रात्रि के समय विशेष प्रबल हो जाता है ॥ ९ ॥

द्वन्द्वज तथा सन्निपातज शोथ के लक्षण ।

निदानाकृतिसंसर्गाच्छ्वयथुः स्याद्द्विदोषजः ।
सर्वाकृतिः सन्निपाताच्छोथो व्यामिश्रलक्षणः ॥ १० ॥
अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः ।
हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुकैः ॥ ११ ॥
रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवान् ।
भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥ १२ ॥

जिस शोथमें वात पित्त अथवा पित्त कफ या वात कफ आदि दो दोषों के लक्षण दिखाई दें उसे द्वन्द्वज शोथ कहते हैं । यह शोथ तब होता है

जब किसी प्रकारका घाव लग जाय, कोई शस्त्र आदिके प्रहारसे कहीं कट जाय या ऐसे ही फट जाय, किसी बर्फीली जगह या समुद्रके किनारे की हवा लग जाय, भिलावा तथा केवाँचका वायु व धुआँ लग जाय या केवाँचके काँटे गड़ जायँ तो शोथ उत्पन्न होकर चारों ओर फैलने लगता है। उसमें उष्णता की विशेष मात्रा रहती है। उसका रंग लाल रहता और पित्त के प्रकोप से उत्पन्न शोथ के समस्त लक्षण दिखाई देते हैं ॥ १०-१२ ॥

विषज शोथ के लक्षण।

विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात्।
दंष्ट्रादन्तनखाघातादविषप्राणिनामपि ॥ १३ ॥
विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्रसंकरात्।
विषवृक्षानिलस्पर्शाद्गरयोगावचूर्णनात् ॥ १४ ॥
मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहरुजाकरः।

किसी विषैले जीवके अपने ऊपरसे रेंग जाने से या मूत देने पर अथवा विषविहीन प्राणियोंके भी दाँत या नख आदि लगजाने पर और विषैले जीवोंकी विष्ठा, मूत्र तथा शुक्रसे छूजाने पर या मैली चीजोंका व्यवहार करनेसे, किसी विषैले वृक्षकी हवा लगनेसे, विषसे मिली किसी वस्तुके शरीरमें लगजानेसे जिस शोथकी उत्पत्ति होती है। वह विषज शोथ कहलाता है। वह शोथ छूनेमें कोमल, फरफराता हुआ, विस्तृत रूपमें शीघ्र बढ़नेवाला होता है और उसमें दाह तथा पीड़ा भी हुआ करती है॥१३-१४॥

दोषों की स्थितिवश शोथ के स्थान।

दोषाः श्वयथुमूर्ध्वं हि कुर्वन्त्यामाशयस्थिताः ॥ १५ ॥
पक्वाशयस्था मध्ये तु वर्चःस्थानगतास्त्वधः।
कृत्स्नदेहमनुप्राप्ताः कुर्युः सर्वसरं तथा ॥ १६ ॥

यदि दोष आमाशयमें रहता तो शरीरके ऊपरी भागमें शोथ होता है। यदि दोष पक्वाशयमें रहता तो शरीरके मध्यभागमें शोथ होता है। छातीमें रहता तो शरीर के निचले भागमें शोथ हुआ करता है। यदि

सारे शरीरमें दोष होता तो सारा शरीर शोथ आया करता है ॥१५॥१६॥

शोथ के साध्यासाध्यत्व ।

यो मध्यदेशे श्वयथुः स कष्टः सर्वगश्च यः ।
अर्धाङ्गेऽरिष्टभूतः स्याद्यश्चोर्ध्वं परिसर्पति ॥ १७ ॥

जो शोथ रोग शरीरके मध्यभाग अथवा समस्त शरीरमें हो वह कष्ट-साध्य होता और जो शरीरके निचले भागमें हो वह तथा निचले भागमें हो कर ऊपरकी ओर बढ़ रहा हो वह असाध्य हुआ करता है ॥ १७ ॥

अन्य असाध्य लक्षण ।

श्वासः पिपासा छर्दिश्च दौर्बल्यं ज्वर एव च ।
यस्य चान्ने रुचिर्नास्ति श्वयथुं तं विवर्जयेत् ॥ १८ ॥
अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुत्थितः ।
पुरुषं हन्ति नारीं च मुखजो गुह्यजो द्वयम् ॥ १९ ॥
नवोऽनुपद्रवः शोथः साध्योऽसाध्यः पुरेरितः ॥ २० ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने शोथनिदानं समाप्तम् ॥ ३६ ॥

जिस शोथ रोगीके श्वास आता रहे, प्यास लगती रहे, जब तब वमन भी हो जाया करे, शरीर दुर्बल हो जाय, ज्वर आता रहे, अन्नमें रुचि न रहे, ऐसे शोथ रोगी का परित्याग कर देना चाहिए और किसी रोगसे नहीं केवल शोथ रोगके ही उपद्रवसे शोथ यदि पैरोंमें उत्पन्न हो कर ऊपरकी ओर चढ़ने लगे तो समझ लेना चाहिए यह शोथ पुरुषको मार डालेगा । जो मुखमें उत्पन्न होकर नीचे की ओर चलता वह स्त्री को नष्ट कर डालता है । जो गुदामें हो कर सारे शरीरमें होजाय वह पुरुष तथा स्त्री दोनोंका नाशकारी कहा गया है । जो शोथ नया हो उसमें किसी प्रकारके उपद्रव उठकर न खड़े हुए हों तो वह शोथ साध्य हुआ करता है । इसकी साध्यता एवं असाध्यताके विषयमें पहले ही बहुत कुछ कह आए हैं ॥ १८–२० ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासमन्विते माधवनिदाने शोथनिदानम् ॥ ३६ ॥

अथ अण्डवृद्धिनिदानम् ।

अण्डवृद्धि की संप्राप्ति ।

क्रुद्धोऽनूर्ध्वगतिर्वायुः शोथशूलकरश्चरन् ।
मुष्कौ वङ्क्षणतः प्राप्य फलकोषाभिवाहिनीः ॥ १ ॥
प्रपीड्य धमनीर्वृद्धिं करोति फलकोषयोः ।
दोषास्रमेदोमूत्रान्त्रैः स वृद्धिः सप्तधा गदः ॥ २ ॥
मूत्रान्त्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलम् ।

जब कि वात कुपित होकर ऊपरसे नीचेकी तरफ शोथ और शूल करता हुआ उतरने लगता तो कोष्ठमें जाता हुआ वायु अण्डकोशकी सन्धियों तथा अण्डकोश तक जानेवाली नसोंको पीडित करता हुआ अण्डकोशों को बढ़ा दिया करता है। वात पित्तादि तीनों दोष, रुधिर, मेद, मूत्र तथा अँतड़िया, ये अण्डवृद्धिके सात भेद बताए गए हैं। इन सबोंमें मूत्र से जायमान अथवा अन्त्रज ये वायुके ही प्रकोपसे होते हैं केवल हेतुमात्र का भेद है ॥ १ ॥ २ ॥

वातजादि अण्डवृद्धियों के लक्षण ।

वातपूर्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुरुक् ॥ ३ ॥
पक्वोदुम्बरसंकाशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान् ।
कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कण्डूमान् कठिनोऽल्परुक्॥४॥
कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिङ्गश्च रक्तजः ।
कफवन्मेदसा वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः ॥ ५ ॥
मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः ।
अम्भोभिः पूर्णदृतिवत् क्षोभं याति सरुङ्मृदुः ॥ ६ ॥
मूत्रकृच्छ्रमधः स्याच्च चालयन् फलकोशयोः ।

जो अण्डकोश छूने पर वायुसे भरे चमड़ेके थैलेके समान मालूम हो

विना किसी प्रयोजनके ही पीडा होती रहे उसे वातज रोग समझना चाहिए। जो देखने में पकी हुई गूलरके समान जान पड़े और हमेशा दाह बनी रहे तथा पक जाय उसे पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न अण्डवृद्धि समझे। जो अण्डकोश भारी, ठंडा, चिकना, खुजलाहट लिए कड़ा तथा साधारण वेदना समेत हो उसे कफज अण्डवृद्धि जाने। जिसमें काली काली फुन्सियाँ पड़जायँ, पित्तज अण्डवृद्धिके लक्षण दिखाई देते हों इसे रक्तज अण्डवृद्धि समझना चाहिए, जिसमें कफज अण्डवृद्धिके लक्षण दीखें, छूनेमें मुलायम हो, देखनेमें ताड़के फलकी नाईं हो, उसे मेदोज अण्डवृद्धि कहते हैं। जो मनुष्य लगे हुए पेशाब को जबर्दस्ती रोक लेता है उसके मूत्रज अण्डवृद्धि होती है। यह पानीसे भरे मशकके समान मालूम होता और जब वह प्राणी चलता है तो मशकके समान ही इसमें शब्द होता, साधारण पीडा होती और छूनेमें मुलायम जान पड़ता है। ऐसी अवस्थामें प्राणी पेशाब करने लगता तो बड़ी कठिनाईसे उतरता और चलते समय दोनों अण्ड-कोश इधर उधर झूलते रहते हैं ॥ ३–६ ॥

अन्त्रवृद्धि के लक्षण ।

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगहनैः ॥ ७ ॥
धारणेरणभाराध्वविषमाङ्गप्रवर्तनैः ।
क्षोभणैः क्षोभितोऽन्यैश्च क्षुद्रान्त्रावयवं यदा ॥ ८ ॥
पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् ।
कुर्याद्वङ्क्षणसन्धिस्थो ग्रन्थ्याभं श्वयथुं तदा ॥ ९ ॥

वात को कुपित करनेवाली चीजें खाने, ठण्डे जल से स्नान करने के कारण, मल मूत्र का वेग रोकनेसे या मलमूत्रके लगे विना ही जबर्दस्ती मल मूत्र छोड़ने की कोशिश करने से, भारी बोझा उठाने से, ज्यादा मार्ग चलने के कारण, शरीर को बुरी तरह ऐंठने से अथवा और कोई बुरी हरकत करने से वात कुपित होकर छोटी २ अँतड़ियोंमें चला जाता और उन्हें अपने स्थानसे नीचे उतार देता है। इस हालत में अण्डकोश के ऊपर गाँठ सी पड़ जाती और वह फूल जाता है ॥ ७–९ ॥

उपेक्षमाणस्य च मुष्कवृद्धिमाध्मानरुक्स्तम्भवतीं स वायुः।
प्रपीडितोऽन्तःस्वनवान् प्रयाति प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्तः॥१

यदि इस रोग की उपेक्षा की जाती तो अण्डकोश खूब बढ़ कर फू जाते, उन में पीड़ा होती रहती और वायु बढ़ कर ठहर जाया करता है यदि दबाया जाता तो उस में कुछ शब्द होता और वायु अँतड़ियों साथ ऊपर की ओर चला जाता है। किन्तु छोड़ देने पर वह फिर ज्य का त्यों अपने स्थान पर आजाता है॥ १०॥

असाध्य लक्षण।

यस्यान्त्रावयवाश्लेषान्मुष्कयोरतिसंचयात्।
ज्वरशूलांगसादाढ्यं तं वर्ध्ममिति निर्दिशेत्॥ ११॥
अन्त्रवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः।

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने अण्डवृद्धिनिदानं समाप्तम्॥ ३७॥

जिस अण्डवृद्धिमें अँतड़ियों तथा वायुका अधिक संचय हो और इसी कारण कभी कभी ज्वर, शूल, अंगों का टूटना, ये दोष उत्पन्न हो जायँ, उसको वर्ध्मनामक अण्डवृद्धि रोग कहते हैं। वातवृद्धिके समान ही यह वर्ध्म रोग होता है और लोग इसे असाध्य बतलाते हैं॥ ११॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने अण्डवृद्धिनिदानम्॥३७॥

अथ गलगण्डगण्डमालादिनिदानम्।

गलगण्ड के सामान्य लक्षण।

निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले।
महान् वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डं तमादिशेत्॥ १॥

जिस प्राणीके गलेमें अण्डकोशके समान फूलकर थैली सी लटकने लगे वह बड़ी हो चाहे छोटी उसे लोग गलगण्ड यानी घेघा कहते हैं॥१॥

संप्राप्ति।

वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टो मन्ये च संश्रित्य तथैव मेदः।

कुर्वन्ति गण्डं क्रमशः स्वलिङ्गैः समन्वितं तं गलगण्डमाहुः ॥२॥

वात, मेद तथा कफ कुपित होकर गलेमें अपने २ लक्षणोंसे युक्त आकर रुक जाते और वहाँ पर शोथ को उत्पन्न कर दिया करते हैं। उसी की गलगण्ड संज्ञा है ॥ २ ॥

वातज गलगण्ड के लक्षण ।

तोदान्वितः कृष्णसिरावनद्धः श्यावोऽरुणो वा पवनात्मकस्तु ।
पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्ध्यपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥३॥
वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ।

वातके प्रकोपसे उत्पन्न घेघे में किसी चीजसे कोंचनेके समान पीड़ा होती, घेघेकी एकत्रित नसें काले रंगकी होतीं, कहीं कहीं श्याम और लाल रंग भी देखा जाता है, उसमें कड़ाई मौजूद रहती है, वह बहुत दिनोंमें बढ़ता और पकता है, पहले तो वह पकता ही नहीं और यदि कभी पकता है तो अपनी ही इच्छासे । इसके होनेपर मुख नीरस हो जाता और गलगण्ड-वाले रोगीका तालु और गलप्रदेश सूख जाया करता है ॥ ३ ॥

श्लेष्मजगलगण्डके लक्षण ।

स्थिरः सवर्णो गुरुरुग्रकण्डूः शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु ॥४॥
चिराभिवृद्धिं भजते चिराद्वा प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित् ।
माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥ ५ ॥

कफके प्रकोपसे उत्पन्न घेघा स्थिर रहता, रंग भी साधारणतया शरीर के ही रंगसे मिलता जुलता रहता, खुजली की मात्रा विशेष रहती, हमेशा उसमें ठण्डक बनी रहती और उसका आकार बड़ा होता है । वह भी बहुत दिनोंमें बढ़ता और पकता है साथही थोड़ी थोड़ी पीड़ा भी बनी रहती है । इस रोगीका मुँह हमेशा मीठा रहता और तालु तथा गला चटचटाता रहता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

मेदोज के लक्षण ।

स्निग्धो गुरुः पाण्डुरनिष्टगन्धो मेदोभवः कण्डुयुतोऽल्परुक् च ।

प्रलम्बतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥ ६ ॥
स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेऽनुशब्दं कुरुते च नित्यम् ।

मेदज गलगण्ड रोगमें चिकनापन एवं गम्भीरता विशेष रहती है, रंग पीला रहता, हमेशा एक प्रकारकी दुर्गन्धि आया करती, साधारण पीड़ा किन्तु खुजलाहट विशेष मौजूद रहती है। यह गलगण्ड अलाबू (लौवा) की तरह लटककता रहता और जड़ बहुत पतली रहा करती है। इसका रंग अपने शरीरके रंगसे मिलता ही रहता है, यह कभी अपने आप घट और बढ़ भी जाता है। मुँहमें लवाब सा आया करता और उस घेघेसे टकराकर गेगलाता हुआ शब्द निकला करता है ॥ ६ ॥

गलगण्डरोग की असाध्यता ।

कृच्छ्राच्छ्वसन्तं मृदुसर्वगात्रं संवत्सरातीतमरोचकार्तम् ॥ ७ ॥
क्षीणं च वैद्यो गलगण्डयुक्तं भिन्नस्वरं चापि विवर्जयेच्च ।

जो घेघेवाला रोगी बड़ी काठिनाईसे साँस लेता हो, सारा शरीर कोमल हो, यह रोग एक वर्षका पुराना हो गया हो, किसी वस्तुमें तबीयत न लगती हो, शक्ति क्षीण हो चली हो और आवाज़ भर्राकर निकलती हो तो ऐसे रोगीका परित्याग कर देना चाहिए ॥ ७ ॥

गण्डमाला के लक्षण ।

कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवङ्क्षणेषु ॥ ८ ॥
मेदः कफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद्गण्डमाला बहुभिश्च गण्डैः ।

जब मेद और कफके दूषित हो जाने पर काँख, कन्धा, गला तथा अण्डकोशकी जड़ोंमें बेर अथवा आँवलेके समान बहुत दिनोंमें धीरे धीरे पकनेवाले गण्ड उत्पन्न हो जायँ तो उसको लोग गण्डमाला रोग कहते हैं॥८॥

अपची के लक्षण ।

ते ग्रन्थयः केचिदवाप्तपाकाः स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये॥९॥
कालानुबन्धं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।
साध्याः स्मृताः पीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुतास्त्वसाध्याः ।

कुछ विद्वानोंका कहना है कि जब उपर्युक्त गण्डमालावाली गाँठ पक जाय, बहने लगे, अपने आप नष्ट होकर फिर उत्पन्न हो जाय और दिनों की कोई पाबन्दी न रह जाय तो उसे लोग अपची नामक रोग कहा करते हैं। यह अपची रोग हमेशा साध्य होता है किन्तु इसमें यदि पीनस, पार्श्व-शूल, खाँसी, ज्वर, और वमन भी होने लगे तो असाध्य हो जाया करता है ॥ ९ ॥ १० ॥

ग्रन्थि के लक्षण ।

वातादयो मांसमसृक् प्रदुष्टाः संदूष्य मेदश्च तथा सिराश्च ।
वृत्तोन्नतं विग्रथितं च शोथं कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥११॥

जब तीनों दोष दूषित होकर मांस एवं रक्तको दूषित करते हुए मेदे तथा नाड़ियों को भी खराब कर देते हैं तो गोल और ऊँची गाँठके समान शोथ कर दिया करते हैं। इसी को लोग ग्रन्थि कहते हैं ॥ ११ ॥

अनिलग्रन्थि के लक्षण ।

आयम्यते वृश्च्यति तुद्यते च प्रत्यस्यते मथ्यति भिद्यते च ।
कृष्णो मृदुर्बस्तिरिवाततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम्॥१२॥

वातके प्रकोपसे उत्पन्न यह ग्रन्थि अपने चारों ओर फैलती, सुईके समान चुभती, कोंचनेके सदृश दर्द करती, उखाड़नेके समान पीड़ा करती, उसमें मन्थन सा होता और मानों कोई चीरे डालता है इस प्रकारकी वेदना हुआ करती है । उसका रंग काला होता और छूने में कोमल एवं वस्ति के समान फैली हुई होती है। जब फूट जाती तो उसमें से बहुत साफ खून निकला करता है ॥ १२ ॥

पित्तज ग्रन्थि के लक्षण ।

दन्दह्यते धूप्यति वृश्च्यते च पापच्यते प्रज्वलतीव चापि ।
रक्तः सपीतोऽप्यथवाऽपि पित्ताद्भिन्नः स्रवेदुष्णमतीव चास्रम्॥१३॥

पित्त के प्रकोप से उत्पन्न ग्रन्थि में दाह होती, उसमें से धुएँ के समान कुछ निकला करता, फाड़ने के समान पीड़ा होती, पकने के समान टपकन मालूम होती और कभी आग के माफिक जलने लगती है। इसका

रंग लाल अथवा पीला होता और इसके फूटने पर बड़ा बुरा निकलता है ॥ १३ ॥

कफज ग्रन्थि के लक्षण ।

शीतोऽविवर्णोऽल्परुजोऽतिकण्डूः पाषाणवत् संहननोपपन्नः ।
चिराभिवृद्धश्च कफप्रकोपाद्भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम् ॥ १४ ॥

कफ के प्रकोप से जायमान ग्रन्थिमें शीतलता विशेष रहती, इसका रंग शरीर के रंग से नहीं मिलता, साधारण पीड़ा भी हुआ करती, खुजली ज्यादा होती एवं यह पत्थर के समान कड़ी तथा ऊँची होती है । यह धीरे धीरे बहुत दिनों में बढ़ती और इसके फूटने पर सफेद, गाढ़ा और फटा हुआ पीब निकलता है ॥ १४ ॥

मेदोग्रन्थि के लक्षण ।

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान् कण्डुयुतोऽरुजश्च ।
मेदःकृतो गच्छति चात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिःप्रतिमं तु मेदः ॥ १५ ॥

मेदके दूषित होजाने पर जो ग्रन्थि उत्पन्न होती वह शरीर की मोटाई एवं दुर्बलता से दुर्बल होती है । वह चिकनी, मोटी, खुजलीयुक्त और साधारण पीडाके साथ होती है। जब यह फूटती तो इसमेंसे सफेद तिलके समान चर्बी निकलती है ॥ १५ ॥

सिराज ग्रन्थि के लक्षण ।

व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुस्तु सिराप्रतानम् ।
संकुच्य संपिण्ड्य विशोष्य चापि ग्रन्थिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥ १६ ॥
ग्रन्थिः सिराजः स तु कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात् सरुजश्चलश्च ।
स चारुजश्चाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः ॥ १७ ॥

यदि कोई निर्बल प्राणी अपनी शक्तिसे अधिक काम करता तो उन कामोंसे कुपित होकर वायु नसोंको बटोरकर जालकी तरह बुन दिया करता है इसके बाद उन्हें सिकोड़ और सुखाकर ऊँची तथा गोल ग्रन्थि बना दिया करता है ॥ १६ ॥ यदि वह सिरा से उत्पन्न ग्रन्थि पीड़ाके

साथ चंचल हो तो कष्टसाध्य हुआ करती है । लेकिन यदि यह ग्रन्थि पीडाविहीन, स्थिर, बड़ी तथा किसी मर्मस्थानपर उत्पन्न हुई हो तो इसका परित्याग कर देना चाहिए ॥ १७ ॥

संप्राप्ति ।

गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः संमूर्च्छिता मांसमसृक् प्रदूष्य ।
वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्ध्यपाकम् ॥१८॥
कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाधं तदर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति ।
वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा वा ॥ १९ ॥
तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थेः समानानि सदा भवन्ति ।

देहके किसी प्रदेश में पित्तादि तीनों दोष दूषित होकर मांस और रक्त को भी दूषितकर दिया करते हैं इस कारण गोल, मृदु, साधारण पीडा-युक्त, बड़ी भारी, जड़में अधिक विस्तृत, बहुत दिनोंमें बढ़ने और पकनेवाली एक गोली निकल आती है उसीको लोग अर्बुद (बतौरी) कहा करते हैं। यह अर्बुद रोग वात, पित्त, कफ, रक्त, मांस तथा मेद इन छ कारणोंसे उत्पन्न होता इस लिये इसके छ ही प्रकार भी होते हैं और इनके लक्षण पूर्वोक्त वातजादि ग्रन्थियोंकी ही तरह हुआ करते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

रक्तार्बुद के लक्षण ।

दोषः प्रदुष्टो रुधिरं सिराश्च संकुच्य संपिण्ड्य ततस्त्वपाकम्॥२०॥
सास्रावमुन्नह्यति मांसपिण्डं मांसाङ्कुरैराचितमाशु वृद्धम् ।
करोत्यजस्रं रुधिरप्रवृत्तिमसाध्यमेतद्रुधिरात्मकं तु ॥ २१ ॥
रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात् पाण्डुर्भवेदर्बुदपीडितस्तु ।

वातादिकोंमें से कोई एक दोष दूषित होकर रुधिर और नाड़ियोंको बटोरकर अथवा सम्पीडित करके आमाशयमें पहुँचता तो वहाँसे एक मांसका पिण्ड ऊपरकी ओर उठने लगता है, उसमेंसे रुधिर टपकता रहता, चारों ओर मांसके अंकुर निकले होते और वह शीघ्र बढ़ता रहता

है। यदि उसमेंसे सदा रक्त बहा करे तो वह रक्तार्बुद रोग असाध्य हुआ करता है एवं रक्तक्षयरूप उपद्रवसे पीडित होनेके कारण रोगीका शरीर पीला पड़ जाता है ॥ २० ॥ २१ ॥

मांसज अर्बुद की संप्राप्ति तथा साध्यासाध्यत्व।

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽङ्गे मांसं प्रदुष्टं जनयेद्धि शोथम् ॥ २२ ॥
अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम्।
प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ २३ ॥
मांसार्बुदं त्वेतदसाध्यमुक्तं साध्येष्वपीमानि तु वर्जयेच्च।
संप्रस्रुतं मर्मणि यच्च जातं स्रोतःसु वा यच्च भवेदचाल्यम् ॥ २४ ॥

शरीरके किसी स्थानपर मुका आदि मारनेसे मांस अतिशय दूषित होजाता और शोथको उत्पन्नकर देता है। उसमें कुछ पीडा नहीं होती, ऊपर चिकनापन मौजूद रहता, रंग शरीरके रंगसे ही मिला जुला रहता, वह पकता भी नहीं और पत्थरके समान कड़ा तथा स्थिर बना रहता है ॥ २२ ॥ जिस प्राणीके मांस दूषित हो जाँय या मांस भक्षण करनेवाले को यदि इस अर्बुदरोगकी उत्पत्ति होती तो वह असाध्य माना जाता है। इसके सिवाय आगे जो साध्य कहे जावेंगे उनमें भी बहुतसे असाध्य होजाते हैं। जो अर्बुद हमेशा बहता रहे या किसी सुकुमार स्थानमें उत्पन्न हुआ हो अथवा नासिका मुख आदि स्थानोंमें उत्पन्न भया हो और जो हमेशा अचल बना रहे उसका परित्याग कर देना चाहिए ॥ २३ ॥ २४ ॥

अध्यर्बुद के लक्षण।

यज्जायतेऽन्यत् खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः।
यद्द्वन्द्वजातं युगपत् क्रमाद्वा द्विरर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ २५ ॥

जिस जगह पहले अर्बुद रोग उत्पन्न हुआ हो फिर वहाँ ही यह रोग उत्पन्न होजावे तो उसे लोग अध्यर्बुद रोग कहते हैं। जो दो दोषों के कुपित होने पर एक ही जगह एकबारगी या आगे पीछे उत्पन्न हो तो उसे लोग द्विरर्बुद रोग कहते है। यह द्विरर्बुद भी असाध्य ही होता है ॥ २५ ॥

अर्बुद के न पकने का कारण ।

न पाकमायान्ति कफाधिकत्वान्मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु ।
दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च तेषां सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ २६ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने गलगण्डगण्डमालापची-
ग्रन्थ्यर्बुदनिदानं समाप्तम् ॥ ३८ ॥

कफ तथा मेद की अधिकता के कारण, दोष के स्थिर रहने से अथवा गाँठ पड़ जाने की वजह से प्रायः सब प्रकार के अर्बुद कभी पकते नहीं । यह उनकी स्वाभाविक प्रकृति है ॥ २६ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने गलगण्डगण्डमालादिनिदानम्॥ ३८॥

अथ श्लीपदनिदानम् ।

संप्राप्ति ।

यः सज्वरो वङ्क्षणजो भृशार्तिः शोथो नृणां पादगतः क्रमेण ।
तच्छ्लीपदं स्यात् करकर्णनेत्रशिश्नौष्ठनासास्वपि केचिदाहुः॥१॥

जो शोथ बड़ी पीड़ा के साथ अण्डकोशों में होवे फिर धीरे २ पैर तक पहुँच जाय और ज्वर भी रहे उसे लोग श्लीपद रोग कहते हैं । यह हाथ, कान, आँख, लिंग, होंठ तथा नाक में भी होता है । यह कुछ लोग कहते हैं* ॥ १ ॥

वातजं कृष्णरूक्षं च स्फुटितं तीव्रवेदनम् ।
अनिमित्तरुजं तस्य बहुशो ज्वर एव च ॥ २ ॥
पित्तजं पीतसंकाशं दाहज्वरयुतं मृदु ।
श्लैष्मिकं स्निग्धवर्णं च श्वेतं पाण्डु गुरु स्थिरम् ॥ ३ ॥

---

* मेदोमांसाश्रयं शोथम्पादयोः श्लीपदस्मवेत् ।
स्वलिंगदर्शिभिर्दोषैस्त्रिधा स्याच्च कफोत्तरम् ॥ १ ॥

जो शोथ पैरों में मेद तथा मांस के आश्रयभूत होता है उसकी श्लीपद संज्ञा है । वह अपने दोष भेद से तीन प्रकार का होता और इस रोग में कफ की प्रधानता रहती है ॥ १ ॥ (कुछ पोथियोंमें यह श्लोक भी सम्मिलित है)

वात के प्रकोप से उत्पन्न श्लीपद में कालापन और रुखाई होती इससे जहाँ तहाँ फट जाता और उसमें बड़ी वेदना हुआ करती है। पीड़ा होने का कोई खास कारण नहीं होता ज्वर का भी प्रबल अंश बना रहता है ॥ २ ॥ पित्त के प्रकोप से जायमान श्लीपद में पीलापन रहता, दाह तथा ज्वर भी विद्यमान रहता और श्लेष्मा से उत्पन्न श्लीपद में चिकनापन रहता सफेद और पीला रंग होता एवं वह गुरु तथा स्थिर हुआ करता है ॥ ३ ॥

श्लीपद की असाध्यता।

वल्मीकमिव संजातं कण्टकैरुपचीयते।
अब्दात्मकं महत्तच्च वर्जनीयं विशेषतः ॥ ४ ॥

यदि यह श्लीपद वल्मीक (बिमौट) के समान होजाय और चारों ओर काँटे उत्पन्न होजायँ, वातज, पित्तज तथा कफज इन तीनों के लक्षण मिलते जुलते होवें तो उसे श्लीपद का विशेषतया परित्याग कर देना चाहिए ॥ ४ ॥

श्लीपद में कफ की प्रधानता।

त्रीण्यप्येतानि जानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात्।
गुरुत्वं च महत्त्वं च यस्मान्नास्ति कफं विना ॥ ५ ॥

ऊपर कहे हुए तीनों दोषों से जायमान श्लीपद कफप्रधान हुआ करता है क्योंकि कफ की प्रधानता के विना उसमें गुरुता एवं बड़ापन हो ही नहीं सकता। कफ के ही कारण उन में बड़ापन और भारीपन रहा करता है ॥ ५ ॥

श्लीपद का देश।

पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्तुषु च शीतलाः।
ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ ६ ॥

जिस देश में बरसात के दिनों में विशेष वृष्टि होती और हमेशा पुराना पानी भरा रहता है और जहाँ हमेशा ठंढक पड़ती रहती है ऐसे देशों में यह श्लीपद रोग विशेषतया उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

असाध्यत्वके लक्षण ।

यच्छ्लेष्मलाहारविहारजातं पुंसः प्रकृत्याऽपि कफात्मकस्य ।
सास्रावमत्युन्नतसर्वलिङ्गं सकण्डुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्यम् ॥ ७ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने श्लीपदनिदानं समाप्तम् ॥ ३९ ॥

जो श्लीपद कफकारी पदार्थोंके खाने पीनेसे उत्पन्न होता, कफ प्रकृतिवाले पुरुषके उत्पन्न होता, जिसमेंसे पानी, रुधिर तथा पीब आदि कुछ टपकता रहता अथवा जिस दोषसे यह उत्पन्न हो उसकी मात्रा विशेष बढ़ गई हो, साथही खुजलाहट विशेष मौजूद रहे ऐसे कफप्रधान श्लीपद रोगका परित्याग कर देना चाहिए ॥ ७ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने श्लीपदनिदानम् ॥ ३९ ॥

अथ विद्रधिनिदानम् ।

विद्रधि की संप्राप्ति ।

त्वग्रक्तमांसमेदांसि संदूष्यास्थिसमाश्रिता ।
दोषाः शोथं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम् ॥ १ ॥
महामूलं रुजावन्तं वृत्तं वाऽप्यथवाऽऽयतम् ।
स विद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेयः षड्विधश्च सः ॥ २ ॥
पृथग्दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा ।
षण्णामपि हि तेषां तु लक्षणं संप्रवक्ष्यते ॥ ३ ॥

जब कि वात, पित्त तथा कफ ये तीनों दोष कुपित होकर हड्डियोंमें रुक जाते तो धीरे २ उस स्थानपर बहुत भारी और ऊँचा शोथ उत्पन्न कर दिया करते हैं ॥ १ ॥ ये मूलमें बड़े विस्तारवाले, अतिशय पीड़ायुक्त, गोल तथा लम्बे चौड़े होते हैं । इसे लोग विद्रधि (फोड़ा) कहते हैं और यह छ प्रकारका होता है। जैसे–वात, पित्त तथा कफ इन तीनोंसे तीन प्रकारका। चौथा सन्निपातज, पाँचवाँ क्षतज और छठाँ रक्तज ये ही छ प्रकार हैं । इनके लक्षण बतलाते हैं–॥ २ ॥ ३ ॥

वातज विद्रधि के लक्षण।

कृष्णोऽरुणो वा विषमो भृशमत्यर्थवेदनः।
चित्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसंभवः॥ ४॥

वातसे जायमान विद्रधि काली, लाल, छोटी अथवा बड़ी होती और उसमें वेदना बहुत ज्यादा होती है। उसके उठने और पकनेके अनेक प्रकार हुआ करते हैं॥ ४॥

पैत्तिक विद्रधि के लक्षण।

पक्वोदुम्बरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदाहवान्।
क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसंभवः॥ ५॥

जो विद्रधि पकी हुई गूलरके समान हो, कालापन मौजूद रहे, ज्वर और दाह भी रहा करे, बहुत शीघ्र उत्पन्न होकर पक जाय उसे पित्तज विद्रधि समझनी चाहिए॥ ५॥

कफज विद्रधि के लक्षण।

शरावसदृशः पाण्डुः शोथः स्निग्धोऽल्पवेदनः।
चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफसंभवः॥ ६॥

कफसे उत्पन्न विद्रधि कसोरेकी तरह ऊँची और लम्बी चौड़ी होती है। वह पीली, ठंढी, चिकनी तथा साधारण वेदनायुक्त होती है, बहुत दिनोंमें उठती और पकती है साथही खुजली भी मौजूद रहा करती है॥६॥

पकने पर मवादका रंग।

तनुपीतसिताश्चैषामास्रावाः क्रमशः स्मृता।

वातज विद्रधिमें पतला मवाद, पित्तज विद्रधिमें पीले रंगका तथा कफज विद्रधिमें सफेद रंगका मवाद बहा करता है।

सन्निपातज विद्रधि के लक्षण।

नानावर्णरुजास्रावो घाटालो विषमो महान्॥ ७॥
विषमं पच्यते चापि विद्रधिः सान्निपातिकः।

तीनों दोषोंके प्रकोपसे जो विद्रधि होती उसका अनेक वर्ण होता,

नाना प्रकारके मवाद बहते, कई तरह की पीड़ा होती और घण्टाके समान लम्बे चौड़े आकारका होकर लटकता रहता है । उसी तरह पकता भी बड़ी विषम रीतिसे है ॥ ७ ॥

आगन्तुक विद्रधि के लक्षण ।

तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते वाऽपथ्यकारिणः ॥ ८ ॥
क्षतोष्मा वायुविसृतः सरक्तं पित्तमीरयेत् ।
ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायते तस्य देहिनः ॥ ९ ॥
आगन्तुर्विद्रधिर्ह्येष पित्तविद्रधिलक्षणः ।

किसी प्रकारकी चोट लगने अथवा कोई घाव मौजूद रहनेपर और अपथ्य करने से उसका घाव गरम होजाता और वातको कुपित करके रक्तके साथ साथ पित्तको कुपितकर दिया करता है इससे उस रोगीको ज्वर, तृष्णा तथा दाह होने लगती है । जब यह विद्रधि होनेको होती तो पित्तज विद्रधिके लक्षण दिखाई देते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

रक्तज विद्रधि के लक्षण ।

कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाकरः ॥ १० ॥
पित्तविद्रधिलिङ्गस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ।

रक्तज विद्रधिके चारों ओर काले रंगके फोड़े उत्पन्न होजाते, विद्रधिके ऊपर भी कुछ श्यामता आजाती, जोरोंसे दाह होती, ज्वर और पीड़ा होने लगती है । इस प्रकारके तथा पित्तज विद्रधिके लक्षण जिसमें दिखाई दें उसे रक्तज विद्रधि समझना चाहिए ॥ १० ॥

स्थानविशेष से लक्षण तथा साध्यासाध्यत्व ।

पृथक् संभूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम् ॥ ११ ॥
वल्मीकवत् समुन्नद्धमन्तः कुर्वन्ति विद्रधिम् ।
गुदे बस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वङ्क्षणयोस्तथा ॥ १२ ॥
वृक्कयोः प्लीह्नि यकृति हृदि वा क्लोम्नि वाऽप्यथ ।
तेषामुक्तानि लिङ्गानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ १३ ॥

अधिष्ठानविशेषेण लिङ्गं शृणु विशेषतः ।
गुदे वातनिरोधश्च बस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता ॥ १४ ॥
नाभ्यां हिक्का तथाऽऽटोपः कुक्षौ मारुतकोपनम् ।
कटीपृष्ठग्रहस्तीव्रो वङ्क्षणोत्थे तु विद्रधौ ॥ १५ ॥
वृक्कयोः पार्श्वसंकोचः प्लीह्युच्छ्वासावरोधनम् ।
सर्वाङ्गप्रग्रहस्तीव्रो हृदि कासश्च जायते ॥
श्वासो यकृति हिक्का च क्लोम्नि पेपीयते पयः ॥ १६ ॥

वातादि तीनों दोष एक साथ अथवा अलग अलग कुपित होकर अन्तःकरणमें गुल्म के समान या बिमौटे की तरह ऊँची विद्रधिको उत्पन्न कर दिया करते हैं । उसीको लोग अन्तर्विद्रधि कहते हैं ॥ ११ ॥ गुदा, वस्ति, मुँह, नाभी, कोख, अण्डकोश, ऊरु तथा अण्डकोशकी संधि, पिलहीकी जगहमें यकृत्के स्थानमें, हृदय तथा प्यास लगनेके स्थानमें विद्रधियाँ होती हैं । बाहरवाली समस्त विद्रधियोंके लक्षण बतला चुके अब स्थानविशेषसे उत्पन्न विद्रधिका विशेष लक्षण बतलाते हैं, हमसे सुनो—यदि गुदामें विद्रधि होती तो अपान वायुका आना बन्द होजाता है । बस्तिमें होती तो बड़ी कठिनाईसे थोड़ा थोड़ा पेशाब उतरता है । नाभीमें होता तो हिचकियाँ आतीं, तथा पेट तनजाता है । कोखमें विद्रधि होती तो वायु कुपित होजाता है । ऊरु तथा अण्डकोशकी सन्धियोंमें होती तो कमर तथा पीठ जकड़ जाती है । अण्डकोशमें होती तो पसलियाँ सिकुड़ जाती हैं । पिलहीमें होती तो श्वासका आना रुक जाता है । हृदयमें होती तो शरीरके समस्त अंग जकड़ जाते और खाँसी आने लगती है । यकृत्में विद्रधि होती तो हिचकी आती और पिपासाके स्थानमें होती तो पानी ज्यादा पिया जाता है ॥ १२–१६ ॥

मवाद निकलने के मार्ग ।

नाभेरुपरिजाः पक्वा यान्त्यूर्ध्वमितरे त्वधः ।

नाभिके ऊपर जो विद्रधि (फोड़ा) होती है उनका मवाद ऊपरकी

ओर मुख बनाकर बहता है । नाभीके नीचे जो फोड़े होते उनका मवाद नीचेकी ओर बहता है ।

साध्यासाध्यत्व ।

अधःस्रुतेषु जीवेत्तु स्रुतेषूर्ध्वं न जीवति ॥ १७ ॥

जिसका बहाव नीचेकी ओर होता उसका रोगी बचता यानी वह साध्य होता है किन्तु जिस फोड़ेका मवाद ऊपरकी ओर बहता है वह रोगी नहीं बचता ॥ १७ ॥

हृन्नाभिबस्तिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु बाह्यतः ।
जीवेत् कदाचित् पुरुषो नेतरेषु कदाचन ॥ १८ ॥
साध्या विद्रधयः पञ्च विवर्ज्यः सान्निपातिकः ।
आमपक्वविदग्धत्वं तेषां शोथवदादिशेत् ॥ १९ ॥
आध्मातं बद्धनिष्यन्दं छर्दिहिक्कातृषान्वितम् ।
रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ २० ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने विद्रधिनिदानं समाप्तम् ॥ ४० ॥

हृदय, नाभि, बस्ति इन जगहोंके अतिरिक्त जो विद्रधियाँ बाहरकी ओर मुँह करके बहती हैं उनमें पुरुष कदाचित् जी भी जाता है किन्तु अन्य स्थानोंमें उत्पन्न होनेपर कदापि नहीं जीता । ऊपर कही छ विद्रधियोंमें पाँच साध्य हो जातीं छठीं सान्निपातिक विद्रधि असाध्य हुआ करती है । इनके आम पक्व तथा विदग्धता पहले कहे हुए शोफके समान समझनी चाहिए ॥ १७ ॥ जिस विद्रधिमें पेट फूल जाय, पेशाब रुक रुककर आने लगे, कै होवे, हिचकी आती रहे, प्यास लगा करे, पीड़ा मौजूद रहे और श्वास भी आया करे इस तरह की विद्रधि मनुष्यको मार डालती है॥१७-२०॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने विद्रधिनिदानम् ॥ ४० ॥

अथ व्रणशोथनिदानम् ।

निदान ।

एकदेशोत्थितः शोथो व्रणानां पूर्वलक्षणम् ।

षड्विधः स्यात् पृथक्सर्वरक्तागन्तुनिमित्तजः ॥ १ ॥
शोथाः षडेते विज्ञेयाः प्रागुक्तैः शोथलक्षणैः ।
विशेषः कथ्यते चैषां पक्वापक्वादिनिश्चये ॥ २ ॥

यदि शरीरके किसी स्थान पर शोथ हो आए तो वह व्रणका पूर्व-लक्षण समझना चाहिए यानी शोथ होनेपर यह समझ लेना चाहिए कि अब व्रण होनेवाला है । यह व्रण सब दोषोंके अलग अलग कुपित होनेपर अथवा सन्निपातसे चार प्रकारका होता पाँचवा प्रकार आगन्तुक और छठाँ रक्तज होता ये ही इस रोगके छ भेद होते हैं । इनके शोथसम्बन्धी लक्षण शोथनिदानमें पहलेही कह आए हैं । यहाँ कच्चे पकेके विषयमें हमें कुछ विशेष बातें कहनी हैं, उन्हें कहता हूँ ॥ १ ॥ २ ॥

वातादि भेद से व्रणशोथके विशेष लक्षण ।

विषमं पच्यते वातात् पित्तोत्थश्चाचिराचिरम् ।
कफजः पित्तवच्छोथो रक्तागन्तुसमुद्भवः ॥ ३ ॥

वातज शोथ विषम रीतिसे पकता है यानी कहीं पकता और कहीं नहीं पकता, पित्तज शोथ बहुत शीघ्र पक जाता और कफज शोथ बड़ी देरीमें पकता है । रक्तज और आगन्तुक शोफ पित्तज शोफकी नाईं बड़ी जल्दी पक जाया करता है ॥ ३ ॥

आमशोथ के लक्षण ।

मन्दोष्मताऽल्पशोथत्वं काठिन्यं त्वक्सवर्णता ।
मन्दवेदनता चैतच्छोथानामामलक्षणम् ॥ ४ ॥

जब फोड़े कच्चे रहते हैं तो साधारण गरमी रहती, सूजन रहा करती, उसमें कठिनाई रहती, उसकी चमड़ी का रंग शरीरके रंगसे मिलता जुलता रहता और थोड़ी थोड़ी वेदना भी बनी रहती है ॥ ४ ॥

पच्यमान व्रणके लक्षण ।

दह्यते दहनेनेव क्षारेणेव च पच्यते ।
पिपीलिकागणेनेव दश्यते छिद्यते तथा ॥ ५ ॥
भिद्यते चैव शस्त्रेण दण्डेनेव च ताड्यते ।

पीड्यते पाणिनेवान्तः सूचीभिरिव तुद्यते ॥ ६ ॥
ओषाचोषो विवर्णः स्यादङ्गुल्येवावघट्यते।
आसने शयने स्थाने शान्तिं वृश्चिकविद्धवत् ॥७॥
न गच्छेदाततः शोथो भवेदाध्मातबस्तिवत् ।
ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैव पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ८ ॥

जब फोड़ा पकने लगता तो उसमें आगकी तरह जलन उत्पन्न हो जाती और वह नमकके समान पकने लगता है, मालूम होता है मानों बहुत सी चीटियाँ काट रही हैं या कोई चीरे डालता है, मानों कोई किसी शस्त्र से काट रहा है या डण्डेसे पीटता है, मानों कोई हाथसे बकोट रहा है अथवा भीतर कोई सुईसे छेद रहा है। वह कभी सूखता और आग की तरह जलने लगता है। रंग बदल जाता और ऐसा मालूम होता है कि मानों कोई उँगली डालकर फाड़ रहा है। बैठने तथा लेटनेमें भी चैन नहीं मिलती और जान पड़ता है कि बीछियाँ डंक मार रही हैं। इस प्रकार होने पर भी जब यह शोथ शान्त न होकर फूल जाय एवं बस्तिके समान हो जाय, ज्वर, तृष्णा तथा अरुचि बनी रहे तो समझना चाहिए कि फोड़ा पक रहा है ॥ ५-८ ॥

पकजाने के लक्षण ।

वेदनोपशमः शोथोऽलोहितोऽल्पो न चोन्नतः ।
प्रादुर्भावो बलीनां च तोदः कण्डूर्मुहुर्मुहुः ॥ ६ ॥
उपद्रवाणां प्रशमो निम्नता स्फुटनं त्वचाम् ।
बस्ताविवाम्बुसंचारः स्याच्छोथेऽङ्गुलिपीडिते ॥१०॥
पूयस्य पीडयत्येकमन्तमन्ते च पीडिते ।
भक्ताकाङ्क्षा भवेच्चैतच्छोथानां पक्वलक्षणम् ॥ ११ ॥

जब पीड़ा बिल्कुल शान्त हो जाय, सूजी भई फोडेकी जगह लाल रंगकी होजाय और साधारण वेदना बनी रहे, जब कि शरीरमें जहाँ तहाँ सिकुड़न

पड़ जाय, शरीरमें कुछ चुभता रहे, बार २ खुजली हो, सब प्रकारके उपद्रव शान्त हो जायँ, फोड़ा कुछ दबा सा मालूम पड़े, चमड़ियाँ जहाँ तहाँ चिटक जायँ, बस्तिस्थानसे पानी सा बहने लगे, शोथको उँगलीसे दबाने पर भीतरका पीब इधर उधर हट जाय और उस जगह पर गड्ढा सा पड़ जाय, अन्न खानेकी इच्छा हो यह सब फोड़ा पक जानेके लक्षण हैं ॥ ६-११ ॥

पकजाने पर सबदोषों का सम्बन्ध।

नर्तेऽनिलाद्रुङ्न विना च पित्तं पाकः कफं चापि विना न पूयः।
तस्माद्धि सर्वान् परिपाककाले पचन्ति शोथांस्त्रय एव दोषाः॥१२॥

वातके बिना फोड़ेमें पीड़ा नहीं होती, पित्तके बिना पकता नहीं, कफके बिना उसमेंसे मवाद नहीं आता इससे यह निश्चय है कि फोड़ेके पकते समय तीनों दोष एकत्रित हो जाते हैं और इनके एकत्रित होनेसे ही फोड़े पकते हैं ॥ १२ ॥

कालान्तरेणाभ्युदितं तु पित्तं कृत्वा वशे वातकफौ प्रसह्य।
पचत्यतः शोणितमेष पाको मतः परेषां विदुषां द्वितीयः॥१३॥

दूसरे विद्वानोंका यह मत है कि पित्त ही कुछ दिनों बाद वात तथा कफको अपने वशमें कर लेता और रुधिरको पकाता है ॥ १३ ॥

पीब के रुकने से हानियाँ।

कक्षं समासाद्य यथैव वह्निर्वाय्वीरितः संदहति प्रसह्य।
तथैव पूयो ह्यविनिःसृतो हि मांसं सिराः स्नायु च खादतीह॥१४॥

जिस तरह तृणके समूह पर पड़कर अग्नि वायुसे प्रेरित होकर जलाती है। उसी प्रकार जबतक पीब फोड़ेके अन्दरसे निकल नहीं जाता तबतक मांस, सिरा एवं नसोंको खाया करता है ॥ १४ ॥

वैद्य का कर्तव्य।

आमं विदह्यमानं च सम्यक् पक्वं च यो भिषक्।
जानीयात् स भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः॥१५॥

यश्छिन्नत्यामसज्ञानाद्यो वा पक्वमुपेक्षते ।
श्वपचाविव मन्तव्यौ तावनिश्चितकारिणौ ॥ १६ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने व्रणशोथनिदानं समाप्तम् ॥ ४१ ॥

जो कि ऊपर बताए लक्षणोंके अनुसार व्रणोंके कच्चे, पक्के अथवा पकते हुए फोड़े की अवस्था को अच्छी तरह जान जाते हैं वे ही वैद्य हैं इसके न जानने वाले लोग वैद्य नहीं, चोर हैं। जो वैद्य बिना समझे बूझे कच्चे फोड़े को चीर डालते तथा पके हुएके लिए फोड़ने अथवा चीरनेका यत्न नहीं करते वे अविमृश्यकारी लोग वैद्य नहीं बल्के डोमड़े हैं, ऐसा समझना चाहिए ॥ १५ ॥ १६ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने व्रणशोथनिदानम् ॥४१॥

अथ शारीरव्रणनिदानम् ।

शारीर व्रणके भेद ।

द्विधा व्रणः स विज्ञेयः शारीरागन्तुभेदतः ।
दोषैराद्यस्तयोरन्यः शस्त्रादिक्षतसंभवः ॥ १ ॥

व्रण दो प्रकार का होता है एक शारीरक और दूसरा आगन्तुक । उन में पहला यानी शारीरक व्रण वात पित्तादि दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होता किन्तु दूसरा यानी आगन्तुक व्रण शस्त्रादि से घाव लग जाने पर ही हुआ करता है ॥ १ ॥

लक्षण ।

स्तब्धः कठिनसंस्पर्शो मन्दस्रावो महारुजः ।
तुद्यते स्फुरति श्यावो व्रणो मारुतसंभवः ॥ २ ॥
तृष्णामोहज्वरक्लेददाहदुष्ट्यवदारणैः ।
व्रणं पित्तकृतं विद्याद्गन्धैः स्रावैश्च पूतिकैः ॥ ३ ॥
बहुपिच्छो गुरुः स्निग्धः स्तिमितो मन्दवेदनः ।

पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरपाकी कफव्रणः ॥ ४ ॥
रक्तो रक्तस्रुती रक्तात् द्वित्रिजः स्यात्तदन्वयैः ।

वायु के प्रकोपसे उत्पन्न व्रण स्तब्ध, छूने में कठिन तथा धीरे धीरे बहने वाला होता है, इस में वेदना अधिक होती, कोंचने के समान व्यथा हुआ करती और फूटता भी है। इस के व्रण का रंग कुछ श्यामता लिए हुए होता है ॥ २ ॥ पित्तके कुपित होने पर जायमान व्रण में प्यास विशेष लगती, मोह, ज्वर, ओदाई, दाह, सड़ना, फटना, दुर्गन्धयुक्त रक्त, पीब आदि का बहना ये लक्षण दिखाई देते हैं । कफ के कुपित होने पर जो व्रण होता उसमें चिकनापन, गुरुत्व, स्निग्धता, रुक रुक कर बहना, व्रण का रंग पीला हो जाना, थोड़ी थोड़ी पीड़ा होते रहना, ज्यादा दिनों में पकना, ये लक्षण दीखते हैं। रक्तके दूषित होने पर जो व्रण होता उस का रंग लाल होता और नित्य उस से रक्त बहा करता है। जब दो दोष कुपित होकर व्रण उत्पन्न करते तो वह द्वन्द्वज कहाता एवं तीनों दोष कुपित होकर व्रण को उत्पन्न करते तो वह त्रिदोषज अथवा सान्निपातिक कहलाता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

साध्यासाध्यत्व ।

त्वङ्मांसजः सुखे देशे तरुणस्यानुपद्रवः ॥ ५ ॥
धीमतोऽभिनवः काले सुखे साध्यः सुखं व्रणः ।
गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततः कृच्छ्रो व्रणः स्मृतः ॥ ६ ॥
सर्वैर्विहीनो विज्ञेयस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ।

यदि व्रण त्वचा मांस अथवा किसी असुकुमार स्थान में युवा प्राणी को हो और उसमें कोई उपद्रव न दिखाई दे, जिसके व्रण हुआ हो वह प्राणी बुद्धिमान् हो, ऐसे समय में हो जब कि सरलता के साथ उसके निवारण का उपाय किया जा सके तो उसे सुखव्रण कहते हैं मतलब यह कि वह सुख से साध्य हो सकता है । सुखव्रण में जो गुण कहे हैं उन में से यदि सब न हों केवल दो एक ही गुण मौजूद हों तो उसे कृच्छ्र यानी कष्टसाध्य व्रण समझना चाहिए और जिसमें उपर्युक्त गुणों में से

एक भी न हो और बहुत से उपद्रव उस में विद्यमान हों तो उसे असाध्य समझना चाहिए ॥ ५ ॥ ६ ॥

दूषितव्रण के लक्षण ।

पूतिः पूयातिदुष्टासृक्स्राव्युत्सङ्गी चिरस्थितिः ॥ ७ ॥
दुष्टो व्रणोऽतिगन्धादिः शुद्धलिङ्गविपर्ययः ।

जिस व्रण में से दुर्गन्धयुक्त बहुत सा पीब तथा अतिशय दूषित रक्त बहे, जो ज़रा उँचाई लिए हुए उत्पन्न हुआ हो तथा पुराना होगया हो, दुर्गन्धि अधिक निकलती हो तथा उस की शुद्धता के कोई लक्षण न दिखाई देते हों तो उसे लोग दुष्टव्रण कहते हैं ॥ ७ ॥

शुद्धव्रण के लक्षण ।

जिह्वातलाभोऽतिमृदुः श्लक्ष्णः स्निग्धोऽल्पवेदनः ॥ ८ ॥
सुव्यवस्थो निरास्रावः शुद्धो व्रण इति स्मृतः ।

जिह्वाके तलेकी नाईं जिसमें सफाई हो, अतिशयकोमलता हो, स्निग्धता के साथ साथ जिसमें थोड़ी सी वेदना रहे, रंग ढंग अच्छा हो, बहना बन्द हो गया हो तो उसे लोग शुद्धव्रण कहते हैं ॥ ८ ॥

भरते हुए घावके लक्षण ।

कपोतवर्णप्रतिमा यस्यान्ताः क्लेदवर्जिताः ॥ ९ ॥
स्थिराश्च पिडकावन्तो रोहतीति तमादिशेत् ।

कपोत के वर्ण सदृश जिसके भीतर सफाई दीख पड़े, उसमें किसी प्रकार का मल न रहे, जो स्थिर हो, बहुत सी छोटी बड़ी फुन्सियाँ सी निकल आएँ तो समझना चाहिए कि अब घाव भर रहा है ॥ ९ ॥

घाव भरजाने के लक्षण ।

रूढवर्त्मानमग्रन्थिमशूनमरुजं व्रणम् ॥ १० ॥
त्वक्सवर्णं समतलं सम्यग्रूढं विनिर्दिशेत् ।

जब घाव का रास्ता भर जाय, उस में किसी प्रकार की गाँठ आदि न दिखाई दे, सूजन तथा पीड़ा न रहे, शरीर की त्वचाके सदृश उस

स्थानकी भी चमड़ी का रंग हो जाय जमीन बिल्कुल बराबर होगई हो तो ऐसे घाव को समझना चाहिए कि यह अच्छी तरह भर आया है ॥ १० ॥

कष्टसाध्य व्रणके लक्षण ।

कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ॥ ११ ॥
व्रणाः कृच्छ्रेण सिध्यन्ति येषां चापि व्रणे व्रणाः ।

ऐसे मनुष्यको जिसके कि कुष्ठ रोग होगया है, जिसने विष खालिया है, जिसे शोष रोग हो गया है, जिस के मधुमेह नामक प्रमेह रोग मौजूद है और उन लोगों के जिनके कि पहले किसी स्थानपर घाव रहा हो वहाँ ही फिर हो जाय ऐसों का व्रण कृच्छ्रसाध्य माना गया है ॥ ११ ॥

असाध्यव्रण के लक्षण ।

वसां मेदोऽथ मज्जानं मस्तुलुङ्गं च यः स्रवेत् ॥ १२ ॥
आगऽतुजो व्रणः सिद्ध्येन्न सिद्ध्येद्दोषसंभवः ।

जिस व्रणमें से वसा, मेद तथा मज्जा बह रहा हो या दहीके पानीकी तरह हमेशा पानी बहता रहे ऐसा आगन्तुज व्रण साध्य हुआ करता है किन्तु जो व्रण वातादि दोषों के दूषित होने पर उत्पन्न हुआ हो वह किसी प्रकार साध्य नहीं हो सकता ॥ १२ ॥

अन्य असाध्य लक्षण ।

मद्यागुर्वाज्यसुमनः पद्मचन्दनचम्पकैः ॥ १३ ॥
सगन्धा दिव्यगन्धाश्च मुमूर्षूणां व्रणाः स्मृताः ।

मदिरा, अगुरु, घी, पुष्प, कमल, चन्दन, चम्पा तथा अन्य सुगन्ध तथा दुर्गन्धयुक्त घाव जब हो जाय तब यह समझना चाहिए कि वह प्राणी मर जायगा क्योंकि मरनेवाले प्राणी ही के इन लक्षणों से युक्त व्रण होता है ॥ १३ ॥

और भी असाध्य लक्षण ।

ये च मर्मस्वसंभूता भवन्त्यर्थवेदनाः ॥ १४ ॥
दह्यन्ते चान्तरत्यर्थं बहिः शीताश्च ये व्रणाः ।

दह्यन्ते बहिरत्यर्थं भवन्त्यन्तश्च शीतलाः ॥ १५ ॥
प्राणमांसक्षयश्वासकासारोचकपीडिताः ।
प्रवृद्धपूयरुधिरा व्रणा येषां च मर्मसु ॥ १६ ॥
क्रियाभिः सम्यगारब्धा न सिध्यन्ति च ये व्रणाः ।
वर्जयेदपि तान् वैद्यः संरक्षन्नात्मनो यशः ॥ १७ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने शारीरव्रणनिदानं समाप्तम् ॥ ४२ ॥

जो व्रण किसी मर्मस्थान में उत्पन्न हुए हों, उन में अत्यन्त वेदना होरही हो, भीतर से तो जल रहा हो किन्तु ऊपरसे शीतलता बनी रहे, उसी तरह जिसमें भीतर से ठंडक हो और बाहर से जलन रहे, जिसमें प्राण तथा मांस क्षय हो गया हो, रोगी श्वास, कास तथा अरोचक से पीड़ित हो, जो व्रण किसी मर्मस्थान में उत्पन्न हुआ हो और पीब तथा रक्त बहुत बढ़ गया हो, जिस की अनेक प्रकार से चिकित्सा की जाय फिर भी न सिद्ध न हो रहा हो तो वैद्य को चाहिए कि यदि वह अपने यशको बचानेका अभिलाषी हो तो ऐसे रोगीका परित्याग करदे*॥१४-१७॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने शारीरव्रणनिदानम् ॥ ४२ ॥

अथ सद्योव्रणनिदानम् ।

आगन्तुक व्रण की संख्या व संप्राप्ति ।

नानाधारमुखैः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः ।
भवन्ति नानाकृतयो व्रणास्तांस्तान्निबोध मे ॥ १ ॥
छिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिच्चितमेव च ।
घृष्टमाहुस्तथा षष्ठं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २ ॥

अनेक धारवाले शस्त्रोंके अनेक स्थानोंपर आघात लगनेसे बहुत तरहके

---

* व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात् ।
तौ च रुक् च दिवास्वापात्ताश्च मृत्युश्च मैथुनात ॥ इति ग्रन्थान्तरे ।

व्रण होते हैं, उन्हें मैं बतलाता हूँ, सुनो—छिन्न, भिन्न, विद्ध, क्षत, पिच्चित और घृष्ट ये छ प्रकारके व्रण होते हैं, अब उनके लक्षण बतलाता हूँ ॥१॥२॥

छिन्नव्रण के लक्षण ।

तिर्यक् छिन्न ऋजुर्वाऽपि यो व्रणस्त्वायतो भवेत् ।
गात्रस्य पातनं तच्च छिन्नमित्यभिधीयते ॥ ३ ॥

जो व्रण ऊपरसे तिरछा या सीधा हो लेकिन भीतर जाकर विस्तृत रूपसे होगया हो उसे लोग छिन्नव्रण कहते हैं । वह शरीरका पातन करनेवाला होता है ॥ ३ ॥

भिन्नव्रण के लक्षण ।

शक्तिदन्तेषुखड्गाग्रविषाणैराशयो हतः ।
यत्किंचित् प्रस्रवेत्तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ४ ॥

संगीन, भाला, बाण, खड्गकी नोक, दाँत, सींग इन सबोंसे यदि पेटमें चोट लग जाय और थोड़ा बहुत रुधिर बह निकले तो उसको लोग भिन्न व्रण कहते हैं ॥ ४ ॥

कोष्टक के लक्षण ।

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च ।
हृदुण्डुकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥ ५ ॥
तस्मिन् भिन्ने रक्तपूर्णे ज्वरो दाहश्च जायते ।
मूत्रमार्गगुदास्येभ्यो रक्तं घ्राणाच्च गच्छति ॥ ६ ॥
मूर्च्छा श्वासस्तृषाऽऽध्मानमभक्तच्छन्द एव च ।
विण्मूत्रवातसङ्गश्च स्वेदास्रावोऽक्षिरक्तता ॥ ७॥
लोहगन्धित्वमास्यस्य गात्रदौर्गन्ध्यमेव च ।
हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापि विशेषं चात्र मे शृणु ॥ ८ ॥
आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं छर्दयत्यपि ।

आध्मानमतिमात्रं च शूलं च भृशदारुणम् ॥ ९ ॥
पक्काशयगते चापि रुजा गौरवमेव च ।
अधः काये विशेषेण शीतता च भवेदिह ॥ १० ॥

आमाशय, औदर्य अग्निस्थान, पक्वाशय, मूत्राशय और रुधिराशय, हृदय, मलाशय तथा फेफसा इन स्थानोंकी कोष्ठ संज्ञा है ॥५॥ इन कोष्ठोंमें से यदि कोई कोष्ठ फट जाता या रक्तसे भर जाता तो ज्वर आने लगता और शरीरमें दाह विशेष रीतिसे होने लगती है । मूत्रके रास्ते, गुदा मार्ग से अथवा मुखसे तथा नासिकासे रक्त बहने लगता है । ऐसी अवस्थामें मूर्छा, श्वास, तृष्णा, पेटका फूलना, अरुचि, मल, मूत्र तथा अपान वायु का रुक जाना, पसीनेका अधिक आना, आँखें लाल होजाना, मुँहसे लोहे के समान गन्ध निकलना, शरीरके और अंगोंसे दुर्गन्ध का आना, हृदय तथा पसलियोंमें शूलका उठना आदि उपद्रव होते हैं । इनके सिवाय और भी बहुत सी विशेष बातें हैं, जिन्हें हमसे सुनो–जब कि रुधिर आमाशयमें जाकर एकत्रित होजाता तो प्राणी रुधिरका ही वमन करता है । ऐसी हालतमें पेट फूल जाता और अतिशय दारुण शूल उठने लगता है । यदि रुधिर पक्वाशयमें जाकर ठहरता तो खूब पीड़ा होती, शरीर भारी मालूम होता और शरीरके निचले भागमें अत्यन्त शीतलता रहती है ॥५–१०॥

विद्धव्रण के लक्षण ।

सूक्ष्मास्यशल्याभिहतं यदङ्गं त्वाशयं विना ।
उत्तुण्डितं निर्गतं वा तद्विद्धमिति निर्दिशेत् ॥ ११ ॥

ऊपर कहे आशयोंके अतिरिक्त जब किसी अन्य स्थानमें किसी चोखे नोकसे छिद जाता तो उस स्थानमें कुछ ऊँचा सा शोथ होजाता है उसे लोग विद्धव्रण कहते हैं ॥ ११ ॥

क्षत के लक्षण ।

नातिच्छिन्नं नातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम् ।
विषमं व्रणमङ्गे यत्तत् क्षतं त्वभिधीयते ॥ १२ ॥

जो घाव न छिन्न हो न भिन्न ही होगया हो किन्तु दोनों लक्षण जिसमें दिखाई देते हों घाव कुछ टेढ़ा बेंढ़ा हो उसे लोग क्षतव्रण कहते हैं ॥१२॥

पिच्चित के लक्षण ।

प्रहारपीडनाभ्यां तु यदङ्गं पृथुतां गतम् ।
सास्थि तत् पिच्चितं विद्यान्मज्जरक्तपरिप्लुतम् ॥ १३ ॥

यदि किसी अंगपर पत्थर आदि गिर पड़े या किसी चीजसे दबकर बिल्कुल पिचुला होजाय और उसमेंसे मज्जा अथवा रक्त निकलने लगे तो उसे पिच्चित व्रण समझना चाहिए ॥ १३ ॥

घृष्ट के लक्षण ।

घर्षणादभिघाताद्वा यदङ्गं विगतत्वचम् ।
उषास्रावान्वितं तच्च घृष्टमित्यभिधीयते ॥ १४ ॥

जमीनमें घसीटने या मार पड़नेपर यदि शरीरका कोई अंग छिल जानेसे चमड़ी निकल जाय और रुधिर बहने लगे तो उसे घृष्टव्रण जानना चाहिए ॥ १४ ॥

सशल्यव्रण के लक्षण ।

श्यावं सशोथं पिडकाचितं च मुहुर्मुहुः शोणितवाहनं च ।
मृदूद्गतं बुद्बुदतुल्यमांसं व्रणं सशल्यं सरुजं वदन्ति ॥ १५ ॥

जिस घावका रंग पीला हो, ऊपर कुछ सूजन बनी रहे, उसके आस-पास छोटी २ फुन्सियाँ निकल आएँ और बार बार उसमेंसे रक्त निकल रहा हो, उसके ऊपरका हिस्सा मुलायम रहे और मांस बुलबुलेके सदृश दिखाई पड़े तो समझ लेना चाहिए कि इसके भीतर अवश्य कांटा आदि कोई चीज़ है । इसी कारण लोग इसे सशल्य व्रण कहते हैं ॥ १५ ॥

त्वचोऽतीत्य सिरादीनि भित्त्वा वा परिवृत्य वा ।
कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्यादुक्तानुपद्रवान् ॥ १६ ॥

यदि कोई काँटा आदि ऊपरकी त्वचाको छेदकर अथवा भीतरकी नसको भेदकर भीतर ही रह जाय तो उसमें ऊपर कहे सशल्य व्रणके सब लक्षण दिखाई देते हैं । इसे लोग कोष्ठभेद नामक व्रण कहते हैं ॥ १६ ॥

असाध्य कोष्ठभेद के लक्षण ।

तत्रान्तलोहितं पाण्डुशीतपादकराननम् ।
शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमानद्धं च विवर्जयेत् ॥ १७ ॥

इसी कोष्ठभेदमें यदि भीतर रक्त जम जाय इस कारण घावमें लाली दिखाई दे, शरीरके और अवयव पीले पड़ जायँ, हाथ, पैर और मुँह ठंडे हो जायँ, हमेशा ठंढी साँस आती रहे, आँखें लाल हो जायँ और पेट फूलता जाय ऐसे कोष्ठभेदवाले रोगीका परित्याग कर देना चाहिए ॥१७॥

मर्मस्थान में चोटलगनेके लक्षण ।

भ्रमः प्रलापः पतनं प्रमोहो विचेष्टनं ग्लानिरथोष्णता च ।
स्रस्ताङ्गतामूर्च्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रा रुजो वातकृताश्च तास्ताः॥१८॥
मांसोदकाभं रुधिरं च गच्छेत् सर्वेन्द्रियार्थोपरतस्तथैव ।
दशार्धसंख्येष्वथ विक्षतेषु सामान्यतो मर्मसु लिङ्गमुक्तम् ॥१९॥

जब कि मांस, सिरा, स्नायु, अस्थि तथा सन्धि इन पाँच मर्मस्थानों में किसी प्रकारकी चोट लगनेसे घाव होती तो रोगीको भ्रम होता, अनाप सनाप बकता, जहाँ तहाँ गिर पड़ता, बेहोशी आजाती, छटपटाने लगता, ग्लानि होती, शरीरमें गरमी बनी रहती, देह शिथिल होजाती, मूर्च्छा आती, श्वास ऊपरको आने लगता, मुख उदास सा बना रहता और वातके कुपित होनेसे पीड़ा भी हुआ करती है । उसमें मांसधोवनके पानी की तरह रक्त बहता और सब इन्द्रियाँ अपना अपना काम छोड़ देती हैं । ये मर्मस्थानमें चोट लगने से उत्पन्न घाव के सामान्य लक्षण हुआ करते हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

मर्मातिरिक्त सिराविद्धके लक्षण ।

सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभूतं रक्तं स्रवेत्तत्क्षतजश्च वायुः ।
करोति रोगान् विविधान् यथोक्तान् सिरासु विद्धास्वथवा क्षतासु।
कौब्ज्यं शरीरावयवावसादः क्रियास्वशक्तिस्तुमुला रुजश्च ।
चिराद्व्रणो रोहति यस्य चापि तं स्नायुविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् ॥२१॥

शोषाभिवृद्धिस्तुमुला रुजश्च बलक्षयः सर्वत एव शोथः ।
क्षतेषु सन्धिष्वचलाचलेषु स्यात् सर्वकर्मोपरमश्च लिङ्गम् ॥२२॥
घोरा रुजो यस्य निशादिनेषु सर्वास्ववस्थासु च नैति शान्तिम् ।
भिषग्विपश्चिद्विदितार्थसूत्रस्तमस्थिविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् ॥२३॥

यदि नसें छिन्न या भिन्न होजातीं तो इन्द्रगोप यानी वीरबहूटी नामक वर्षा ऋतुमें उत्पन्न कीड़ोंके समान रक्तवर्ण का खून एक एक बूँद टपकता है और उसी समय वायु कुपित होकर उसमें नाना प्रकार के रोग खड़ा कर दिया करता है ॥ २० ॥

जिस प्राणी का शरीर कुवड़ा होजाय, शरीर के समस्त अंग टूटने लगें, कोई काम करने की सामर्थ्य न रह जाय, अतिशय पीड़ा बनी रहे, घाव बहुत दिनोंमें पूरे तो समझ लेना चाहिए कि उस पुरुष की नसमें घाव लगा है ॥ २१ ॥

जिस प्राणी के शरीरमें सूजन बढ़ती जारही हो, वेदना का भी आधिक्य रहे, शक्ति क्षीण होजाय, सन्धियों में पीड़ा और सूजन हो, चल और अचल दोनों प्रकार की सन्धियां काम करने में असमर्थ होजायँ, ये सब सन्धिविद्ध नामक व्रण के लक्षण हैं । जिसमें रात दिन भीषण पीड़ा होती रहे, किसी भी अवस्था में शान्ति न मिले । ऐसे रोगी को अर्थ और सूत्र को अच्छी तरह समझनेवाला वैद्य अस्थिविद्ध रोगी समझे और उसकी शान्ति का प्रयत्न करे ॥ २२ ॥ २३ ॥

मर्मयुक्त सिराविद्ध के लक्षण ।

यथास्वमेतानि विभावयेच्च लिङ्गानि मर्मस्वभिताडितेषु ।
पाण्डुर्विवर्णः स्पृशितं न वेत्ति यो मांसमर्मण्यभिपीडितः स्यात् २४

यदि किसी मर्मस्थानमें चोट लग जाय या नसें टूटजायँ तो ये लक्षण (जो ऊपर बतला आए हैं) दिखाई देते हैं और ये ही साधारणतया विद्धव्रणके लक्षण हुआ करते हैं । मर्मस्थानमें चोट लगने पर वह पीला पड़ जाता, छूने से मालूम नहीं होता अर्थात् सुन्न होजाता है ॥२४॥

व्रणों के उपद्रव ।

विसर्पः पक्षघातश्च सिरास्तम्भोऽपतानकः ।
मोहोन्मादव्रणरुजो ज्वरस्तृष्णाहनुग्रहः ॥ २५ ॥
कासश्छर्दिरतीसारो हिक्का श्वासः सवेपथुः ।
षोडशोपद्रवाः प्रोक्ता व्रणानां व्रणचिन्तकैः ॥ २६ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने सद्योव्रणनिदानं समाप्तम् ॥ ४३ ॥

व्रण के विषयमें खूब अच्छी तरह विचार करनेवाले इतने उपद्रव बतलाए हैं:-विसर्प यानी इधर उधर फैलजाना, पक्षघात होना, नसों का रुकजाना, नसों का तन उठना, मोह होना, पागल हो जाना, घावमें वेदना होना, ज्वर आना, प्यास लगना, दोनों कन्धों का जकड़ जाना, खाँसी, उबकाई तथा अतीसार का होना, हिचकी आते रहना, श्वासका चलते रहना और काँपते रहना ये सोलह उपद्रव हुआ करते हैं ॥२५॥२६॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने आगन्तुव्रणनिदानम् ॥३४॥

अथ भग्ननिदानम् ।

भग्न के भेद और संख्या ।

भग्नं समासाद्द्विविधं हुताशे काण्डे च सन्धौ च हि तत्र सन्धौ ।
उत्पिष्टविश्लिष्टविवर्तितं च तिर्यग्गतं क्षिप्तमधश्च षट् च ॥ १ ॥

हड्डियाँ दो प्रकार से टूटती हैं एक प्रकार की वह जो जोड़ से उखड़ जाती दूसरा वह जो जोड़के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान पर टूटती है । इनमें जो जोड़ से उखड़ जाती तो उत्पिष्ट, विशिष्ट, विवर्त्तित, तिर्यक्, विक्षिप्त तथा अधःक्षिप्त ये छ भेद हुआ करते हैं ॥ १ ॥

सन्धिभंग के सामान्य लक्षण ।

प्रसारणाकुञ्चनवर्तनोग्रा रुक् स्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम् ।
सामान्यतः सन्धिगतस्य लिङ्गमुत्पिष्टसन्धेः श्वयथुः समन्तात् ॥२॥
विशेषतो रात्रिभवा रुजा च विश्लिष्टजे तौ च रुजा च नित्यम् ।

विवर्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्रास्तिर्यग्गते तीव्ररुजो भवन्ति ॥
क्षिप्तेऽति शूलं विषमत्वमस्थ्नोः क्षिप्ते त्वधो रुग्विघटश्च सन्धेः

जिसके फैलाने, सिकोड़ने तथा हिलाने में दारुण पीडा हो, कि दूसरे अंग से छूजाने पर बड़ा कष्ट हो साधारणतया ये लक्षण सन्धिभंग के हुआ करते हैं। जिसमें जोड़ की दोनों हड्डियां आपसमें रगड़ उठत हैं उसे लोग उत्पिष्ट नामक सन्धिभंग कहते हैं। इसके चारों ओर सूज॰ होजाया करती है और रात्रिमें विशेष पीड़ा होती है। विश्लिष्ट नाम॰ सन्धिभंग में सूजन तथा रात्रिमें पीड़ा होने के सिवाय नित्य दर्द भी होती रहती है। विवर्तित नामक सन्धिभग्नमें दोनों पसलियां बहुत दुखती हैं और संधि की दोनों हड्डियां इधर उधर फिरने लगती हैं। तिर्यक् नामवाली सन्धि हड्डीके तिरछी तौर से हटने पर होती है। इसमें भी अतिशय पीड़ा होती है। क्षिप्तनामक सन्धिभंगमें एक हड्डी ऊपर को हट जाया करती है इस लिए उसमें एक प्रकार का शूल सा उठने लगता और हड्डियोंमें कभी कम और कभी ज्यादा वेदना हुआ करती है। अधः क्षिप्त नामक संधिमें नीचेकी हड्डी टल जाती इसी लिए यह अधः क्षिप्त संधिभंग कहलाता है। इसमें भी पीड़ा वैसी ही होती है। हड्डी टल जाने से कुछ जगह खाली होजाया करती, यही इस में विशेषता होती है ॥ २ ॥ ३ ॥

काण्डभग्न के भेद तथा लक्षण।

काण्डे त्वतः कर्कटकाश्वकर्णविचूर्णितं पिच्चितमस्थिछल्लिका॥४॥
काण्डेषु भग्नं ह्यतिपातितं च मज्जागतं च स्फुटितं च वक्रम्।
छिन्नं द्विधा द्वादशधाऽपि काण्डे स्रस्ताङ्गता शोथरुजातिवृद्धिः॥५॥
संपीड्यमाने भवतीह शब्दः स्पर्शासहं स्पन्दनतोदशूलाः।
सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभो भग्नस्य काण्डे खलु चिह्नमेतत् ॥६॥
भग्नं तु काण्डे बहुधा प्रयाति समासतो नामभिरेव तुल्यम् ॥७॥

कर्कटक, अश्वकर्ण, विचूर्ण, पिच्चित, अस्थिछल्लित, काण्डभग्न, अति-

पातित, मज्जागत, स्फुटित, वक्र और दो प्रकारके छिन्न ये बारह भेद हुआ करते हैं। दोनों ओर की हड्डियाँ टूटकर दबजातीं या बीचमें कुछ ऊँची होजाया करती हैं तो उसे लोग कर्कटक नामक काण्डभग्न कहते हैं। जिसमें दोनों तरफकी हड्डियाँ टूटकर घोड़ेके कान की तरह उठजायँ तो उसे लोग अश्वकर्ण कहते हैं। जिसमें हड्डी चूर्णहोजावे तथा छूने पर कुछ करकराहट सी मालूमहो उसको लोग विचूर्णित कहाकरते हैं, जिसमें हड्डियाँ बिल्कुल पच्ची होजायँ उसे पिच्चित कहते हैं, यदि चोट लगने से हड्डीमें एक परच सी निकल जाय तो लोग उसको अस्थिछल्लित कहते हैं, यदि हड्डीकी नली टूट जाती तो वह काण्डभग्न कहाजाता है। यदि समस्त हड्डियाँ टूटजातीं तो उसका अनुपात नाम पड़ता है। यदि हड्डीके टूट जाने पर उसमें से मज्जा बहने लगता तो लोग उसे मज्जागत नामक काण्डभंग कहते हैं। यदि हड्डी टूटकर पच्ची हो जाय तथा इधर उधर टेढ़ी बेंढ़ी होजाय तो लोग उसे वक्रनामक काण्डभग्न कहते हैं। ऊपर जो छिन्नके दो प्रकार बतलाए हैं उनमें पहला तो वह है जिसमें दोनों ओर के टुकड़े चूर चूर होजायँ और दूसरा वह जिसमें कि एकही ओरकी हड्डी टूटे। अंगों का ढीला पड़ जाना, सूजन तथा पीड़ा का अधिक होना, दबाने पर हड्डी में करकराहट सी होना, पीड़ा के मारे छुआ भी न जासकना, थोड़ी २ कँपकँपी बनी रहना, सुई की तरह चुभना, शूल सा उठना, किसी समय चैन न मिलना, ये काण्ड-भंग के साधारण लक्षण हुआ करते हैं। इनके सिवाय और भी कई प्रकार के काण्डभंग होते हैं। वे जिस स्थान पर होते एवं उनका जो प्रकार होता उसी के तुल्य नाम भी होता है ॥ ४-७ ॥

कृच्छ्रसाध्य काण्डभग्न के लक्षण ।

अल्पाशिनोऽनात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च ।
उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिध्यति ॥ ८ ॥

थोड़ा खानेवाले, जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं उनके अथवा जिसकी वातप्रकृति है और शरीर में अनेक प्रकार के उपद्रव लगे हुए हैं। ऐसे मनुष्योंकी हड्डी टूट जाती तो वह बड़ी कठिनाई से सिद्ध होता है ॥८॥

असाध्यत्व ।

भिन्नं कपालं कट्यां तु सन्धिमुक्तं तथा च्युतम् ।
जघनं प्रतिपिष्टं च वर्जयेद्धि विचक्षणः ॥ ९ ॥
असंश्लिष्टकपालं च ललाटे चूर्णितं च यत् ।
भग्नं स्तनान्तरे पृष्ठे शङ्खे मूर्ध्नि च वर्जयेत् ॥ १० ॥

जिसका कपाल फूट गया हो, सन्धि के अतिरिक्त यदि कहीं टूट जाय या रीढ़ हटजाय अथवा जघनभाग की हड्डी किसी तरह चूर्ण होजाय ऐसे रोगी का परित्याग कर देना चाहिए क्योंकि वह असाध्य हो जाता है ॥ ९ ॥ जिस काण्डभग्नवाले मनुष्य की खोपड़ी फूट कर चूर चूर होजाय अथवा स्तन, गुदा, कनपटी, पीठ, तथा मस्तकमें चोट लगने से उस स्थान की हड्डियाँ चूर्ण होजायँ तो उसका परित्याग करदेना चाहिए ॥ १० ॥

लापरवाही से असाध्यत्व ।

सम्यक् सन्धितमप्यस्थि दुर्निक्षेपनिबन्धनात् ।
संक्षोभाद्वाऽपि यद्गच्छेद्विक्रियां तच्च वर्जयेत् ॥ ११ ॥

किसी हड्डी के टूट जाने पर यदि कोई जानकार मनुष्य उसे भली रीति से बैठाल दे अथवा जोड़ दे और कोई कारण वश खुलकर वह फिर खराब होजाय तो उसका भी परित्याग कर देना चाहिए ॥ ११ ॥

अस्थिविशेष से भग्न की विशेषता ।

तरुणास्थीनि नम्यन्ते भिद्यन्ते नलकानि च ।
कपालानि विभज्यन्ते स्फुटन्ति रुचकानि च ॥ १२ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने भग्ननिदानं समाप्तम् ॥ ४४ ॥

युवावस्था की हड्डियाँ चोट लगने पर ज्यादातर झुकजातीं और नसें टूटजाया करती हैं। खोंपड़ी फूटजाती तथा दाँत आदि के भी कुछ टुकड़े अलग होजाया करते हैं ॥ १२ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने काण्डभग्ननिदानम् ॥ ४४ ॥

अथ नाडीव्रणनिदानम् ।

संप्राप्ति ।

यः शोथमाममतिपक्वमुपेक्षतेऽज्ञो
यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः ।
अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य
स्थानानि पूर्वविहितानि ततः स पूयः ॥ १ ॥
तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु
नाडीव यद्वहति तेन मता तु नाडी ।

जो अधम वैद्य पके हुए फोड़े को कच्चा समझ कर छोड़ देता, जिसमें बहुत सा मवाद आगया है किन्तु उसके निकालने का यत्न नहीं करता तो वह मवाद भीतर घुस जाता एवं व्रण की जड़वाली नसों में छेद करके मांस, चर्म आदि को गला कर एक बड़ा भारी घाव करदेता और फिर तबसे लेकर हमेशा उसमें पीब निकला करता है । इस प्रकार जब उसकी नित्य गति होजाती है तो लोग उसे नाडीव्रण (नासूर) कहते हैं ॥ १ ॥

दोषानुसार संख्या ।

दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च
संमूर्च्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या ॥ २ ॥

यह नाड़ीव्रणरोग वात-पित्त तथा कफ इन तीनों से तीन प्रकार का, चौथा सन्निपातज एवं पाँचवाँ किसी प्रकार के काँटा आदि गड़ जाने से अथवा किसी रीति से भी उत्पन्न नाडीव्रण की उपेक्षा करने से होता है । इस रोग के ये ही पाँच प्रकार हैं ॥ २ ॥

वातज नाडीव्रण के लक्षण ।

तत्रानिलात् परुषसूक्ष्ममुखी सशूला
फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपासु ।

वातज नाड़ीव्रणका मुख कड़ा तथा सूक्ष्म होता है और उसमें

शूल उठता रहता है। रात को ज्यादातर फेन मिला हुआ बहता है।

पित्तज के लक्षण।

पित्तात्तृषाज्वरकरी परिदाहयुक्ता
पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहःसु चापि ॥ ३ ॥

पित्त से जायमान नाडीव्रण रोग में प्यास लगती, ज्वर होता, दाह उठती, पीले रंग का गरम पीब अधिकांश दिन के समय बहता है ॥३

कफज के लक्षण।

ज्ञेया कफाद्बहुघनार्जुनपिच्छलास्रा
स्तब्धा सकण्डुररुजा रजनीप्रवृद्धा।

कफ से जायमान नाडीव्रण में बहुत गाढ़ा, सफेद तथा चिकना पीब वहता है और उसमें खुजली भी उठा करती है। किसी प्रकार की वेदना नहीं होती और ज्यादातर रात्रि के समय में पीव बहता है ॥

त्रिदोषज के लक्षण।

दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा
यस्यां भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि ॥ ४ ॥
तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपाद्-
घोरामसुक्षयकरीमिव कालरात्रिम्।

जिसमें दाह उठे, ज्वर आवे, श्वास तथा मूर्च्छा आती रहे, मुख सूख जाय, ये सब लक्षण जिसमें विद्यमान हों उसे सन्निपातज नाड़ीव्रण समझना चाहिए। यह रोग प्राणों को नाश करनेवाली कालरात्रि के समान भयानक होता है ॥ ४ ॥

शल्यनिमित्तज नाडीव्रणके लक्षण।

नष्टं कथंचिदनुमार्गमुदीरितेषु
स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति ॥ ५ ॥

सा फेनिलं मथितमुष्णमसृग्विमिश्रं
स्रावं करोति सहसा सरुजा च नित्यम् ।

यदि कोई काँटा आदि धँस जाय और इतना भीतर चला जाय कि दिखाई न पड़े लेकिन वह अतिशीघ्र अपना मार्ग बनालेता है। उसमें से फेना समेत, गरम रुधिर से मिला हुआ पीब बहने लगता है । इसमें दिन रात की कोई पाबन्दी नहीं रहती यानी हमेशा बहा करता है और पीडा भी होती है ॥ ५ ॥

असाध्यत्व ।

नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिध्ये-
च्छेषाश्चतस्रः खलु यत्नसाध्याः ॥ ६ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने नाडीव्रणनिदानं समाप्तम् ॥ ४५ ॥

सन्निपात से जायमान नाड़ीव्रण असाध्य होता है, इसके अतिरिक्त सब नाड़ीव्रण यत्न करने से साध्य होजाया करते हैं ॥ ६ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने नाडीव्रणनिदानम् ॥ ४५ ॥

अथ भगन्दरनिदानम् ।

पूर्वरूप ।

गुदस्य द्व्यङ्गुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिडकाऽऽर्तिकृत् ।
भिन्ना भगन्दरो ज्ञेयः स च पञ्चविधो मतः ॥ १ ॥

गुदा के दो अंगुल दूरी पर पिरकी के समान छोटा सा फोड़ा निकल आता है उसमें बड़ी वेदना होती और जब वह फूट जाता तो भगन्दर रोग होजाता है । उसके पाँच भेद होते हैं ॥ १ ॥

शतपोनक भगन्दर के लक्षण ।

कषायरूक्षैस्त्वतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशे पिडकां करोति याम्।
उपेक्षणात् पाकमुपैति दारुणं रुजा च भिन्नाऽरुणफेनवाहिनी॥२॥
तत्रागमो मूत्रपुरीषरेतसां व्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत् ।

कसैले और रूखे पदार्थों के सेवन करने से वायु कुपित होजात गुदा के पास एक छोटे से फोड़े को उभाड़ दिया करता है। यदि कोई यत्न न करके उपेक्षा कर दीजाती तो वह पकता तथा दारुण करता है और उसमें से लाल रंग का फेन निकलने लगता है। धी उसमें कई एक घाव होजाते और उनके रास्ते से मल, मूत्र तथा गिरने लगता है। इसे लोग शतपोनक नामवाला भगन्दर रोग कहते हैं॥

उष्ट्रशिरोधर भगन्दर के लक्षण ।

प्रकोपनैः पित्तमतिप्रकोपितं
करोति रक्तां पिडकां गुदाश्रिताम् ॥ ३ ॥
तदाऽऽशुपाकाहिमपूतिवाहिनीं
भगन्दरं तूष्ट्रशिरोधरं वदेत् ॥ ४ ॥

पित्त को कुपित करनेवाली चीजें खाने से पित्त कुपित होजाता औ गुदा में एक लाल रंग की पिरकी उत्पन्न करदेता है। वह बहुत शीघ्र प० जाती और ठंढे तथा दुर्गन्धमय पीव को बहाने लगती है। इसे लोग उष्ट्र-शिरोधर नामक भगन्दर रोग कहते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

परिस्रावी भगन्दर के लक्षण ।

कण्डूयनो घनस्रावी कठिनो मन्दवेदनः ।
श्वेतावभासः कफजः परिस्रावी भगन्दरः ॥ ५ ॥

कफ के कुपित होने पर जो भगन्दर होता उसमें खुजली विशेष उठती, गाढ़ा पीव बहा करता, छूने में कड़ा मालूम होता और मामूली पीड़ा भी बनी रहती है। देखनेमें सफेद होता है। लोग इसे परिस्रावी नामक भगन्दर कहते हैं ॥ ५ ॥

सन्निपातज शम्बूकावर्त भगन्दर के लक्षण ।

बहुवर्णरुजास्रावा पिडका गोस्तनोपमा ।
शम्बूकावर्तवन्नाडी शम्बूकावर्तको मतः ॥ ६ ॥

जिस फोड़े में कई रंग हों, पीड़ा भी बहुत रहे, गाय के थन समान

उसका आकार हो, घोंघे की भाँति उसका घेरा हो तो समझ ले कि यह शम्बूकावर्त नामक भगन्दर है ॥ ६ ॥

उन्मार्गि भगन्दर के लक्षण ।

क्षताद्गतिः पायुगता विवर्धते
ह्युपेक्षणात् स्युः क्रिमयो विदार्य ते ।
प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुखै-
र्व्रणैस्तदुन्मार्गि भगन्दरं वदेत् ॥ ७ ॥

यदि किसी प्रकार का घाव लगजाय और उसकी शान्ति का कोई उपाय न किया जा सके तो वह घाव बढ़जाता, बढ़ते बढ़ते भगके भीतरी भाग तक पहुँच जाता और उसमें छोटे छोटे कीड़े पड़जाया करते हैं । इस कारण वह घाव फट जाता तथा उसमें के कीड़े चाल चाल कर अनेक मुख करदेते हैं । इसे लोग उन्मार्गी नामक भगन्दर कहते हैं ॥ ७ ॥

साध्यासाध्यत्व ।

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व एव भगन्दराः ।
तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः ॥ ८ ॥

ऊपर जितने भी भगन्दर कहे हैं वे सब भयानक होते हैं लेकिन सन्निपातज भगन्दर असाध्य होता है । किन्तु क्षतज भगन्दर सबसे बढ़ कर असाध्य हुआ करता है ॥ ८ ॥

असाध्यलक्षण ।

वातमूत्रपुरीषाणि क्रिमयः शुक्रमेव च ।
भगन्दरात् स्रवन्तस्तु नाशयन्ति तमातुरम् ॥ ९ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने भगन्दरनिदानं समाप्तम् ॥ ४६ ॥

जिस किसी भगन्दर रोगी के भगन्दर से अपानवायु, मल, मूत्र, कृमि तथा वीर्य निकलता रहे ऐसे रोगी को यह रोग मार ही डालता है ॥९॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने भगन्दररोगानिदानम् ॥ ४६ ॥

अथोपदंशनिदानम् ।

संप्राप्ति ।—

हस्ताभिघातान्नखदन्तपातादधावनादत्यतिसेवनाद्वा ।
योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्ने पञ्चोपदंशा विविधापचारैः ॥

लिङ्ग में हाथ से चोट लगने, नख या दाँतों से चोट लगने, प्रसंग करने के पश्चात् लिंग को न धोने के कारण, ज्यादा मैथुन करने अथवा स्त्री की योनिमें कोई दोष रहने से, लिंग में अनेक अपकृत्यों से पाँच प्रकार का उपदंश (गर्मी) होती है ॥ १ ॥

पित्तज उपदंश के लक्षण ।

सतोदभेदैः स्फुटनैः सकृष्णैः स्फोटैर्व्यवस्येत् पवनोपदंशम् ।
पीतैर्बहुक्लेदयुतैः सदाहैः पित्तेन रक्तात् पिशितावभासैः ॥२॥

वात के प्रकोप से उत्पन्न उपदंश में लिंग पर काले काले फोड़े होजाते, सुई से कोंचने के समान वेदना होती, लिंग मानो फटा जाता है ऐसी पीड़ा होती है। पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न उपदंश में पीले रंगके बहुत से फोड़े निकलते, उनमें से बहुत अधिक पीव निकलता, जलन ज्यादा होती और रक्त की अधिकता से वे मांस के सदृश लाल लाल दिखाई देते हैं ॥ २ ॥

रक्तज उपदंश के लक्षण ।

स्फोटैः सकृष्णै रुधिरं स्रवन्तं रक्तात्मकं पित्तसमानलिङ्गम् ।
सकण्डुरैः शोथयुतैर्महद्भिः शुक्लैर्घनैः स्रावयुतैः कफेन ॥ ३ ॥

रक्तज उपदंश में लाल और काले रंग के फोड़े निकलते, उनमें से बराबर रुधिर बहा करता है और ऊपर कहे पित्तज उपदंश के समान सब लक्षण दीखते हैं। कफज उपदंश में खुजली विशेष उठती, शोथ बना रहता, फोड़े का आकार भी बड़ा होता, सफेद रंग का रहता, उसमें कठिनाई विशेष रहती तथा हमेशा रुधिर या पीव बहा करता है ॥ ३ ॥

सन्निपातज के लक्षण ।

नानाविधस्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम् ।

जिसमें कई तरह के रुधिर तथा पीब आदि निकले पीड़ा विशेष होती हो उसे लोग सन्निपातज उपदंश कहते हैं। यह असाध्य माना गया है ।

असाध्यत्व ।

विशीर्णमांसं क्रिमिभिः प्रजग्धं मुष्कावशेषं परिवर्जयेच्च॥४॥

जिस उपदंश रोगी के लिंग का मांस फट गया हो अथवा कीड़ों ने खा लिया हो केवल अण्डकोशमात्र शेष रहगया हो उस रोगीका परित्याग करदेना चाहिए ॥ ४ ॥

असावधानी से भीषण परिणाम ।

संजातमात्रे न करोति मूढः क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः ।
कालेन शोथक्रिमिदाहपाकैर्विशीर्णशिश्नो म्रियते स तेन ॥५॥

गर्मी के उत्पन्न होते ही जो मूढ़ तथा विषयी मनुष्य उसके मिटाने का कोई उपाय नहीं करता तो थोड़े दिनों बाद उसके लिंग में शोथ, कृमि तथा दाह होने लगती और पक जाता है। इससे उसका लिंग बिल्कुल सड़ गल जाता और इसी रोग से वह रोगी मर जाया करता है ॥ ५ ॥

लिंगवर्ति के लक्षण ।

अङ्कुरैरिव संघातैरुपर्युपरि संस्थितैः ।
क्रमेण जायते वर्तिस्ताम्रचूडशिखोपमा ॥ ६ ॥
कोषस्याभ्यन्तरे सन्धौ सर्वसन्धिगताऽपि वा ॥ ७ ॥
सवेदना पिच्छिला च दुश्चिकित्स्या त्रिदोषजा ।
लिङ्गवर्तिरभिख्याता लिङ्गार्श इति चापरे ॥ ८ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने उपदंशनिदानं समाप्तम् ॥ ४७ ॥

जब उपदंश होता तो लिङ्ग के ऊपर मांस के अखुए से निकल आते हैं धीरे धीरे इकट्ठे होकर वे मुर्गे की शिखा के समान एक बत्ती की तरह हो जाया करते हैं। अथवा अण्डकोश की जड़ में या लिङ्ग के अग्रभाग में वह बत्ती सी होजाती तो लोग उसे लिङ्गवात कहते हैं। इसमें बड़ी वेदना होती और चिकनापन भी विशेष रहा करता है, इसकी चिकित्सा भी

बड़ी कठिनाई से होती है क्योंकि इसमें तीनों दोष कुपित रहते हैं । इ
कोई लिङ्गवर्ति और कोई लिङ्गार्श कहते हैं ॥ ६–८ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटिकासहिते माधवनिदाने उपदंशनिदानम् ॥ ४७ ।

अथशूकदोषनिदानम् ।

शूकरोग की उत्पत्ति व संख्या ।

अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधीः ।
व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥१॥

जो मूढ़ बुद्धिवाला प्राणी अपने लिंग को बहुत मोटा तथा लंबा करने की इच्छा से कोई इधर उधर की दवा कर बैठता तो उसके अठारह प्रकार के शूकज रोग उत्पन्न होजाया करते हैं ॥ १ ॥

सर्षपिको के लक्षण ।

गौरसर्षपसंस्थाना शूकदुर्भग्नहेतुका ।
पिडका श्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका तु सा ॥ २ ॥

किसी दुष्ट प्राणीके नाभि आदि से दवा बनाकर लेप करने से लिंग के ऊपर श्लेष्मा और वात के प्रकोप से पीले रंग की कुछ पिरकियाँ निकल आया करती हैं । उन्हें लोग सर्षपिका कहते हैं ॥ २ ॥

अष्ठीलिका के लक्षण ।

कठिना विषमैर्भुग्नैर्वायुनाऽष्ठीलिका भवेत् ।

किसी कठिन अथवा विषैली वस्तुका उपयोग करने से वायु के कुपित होनेपर लिंगके ऊपर जो फुंसियाँ निकलतीं उन्हें लोग अष्ठीलिका कहते हैं ।

ग्रथित के लक्षण ।

शूकैर्यत् पूरितं शश्वद्ग्रथितं नाम तत् कफात् ॥ ३ ॥

बार बार लिङ्ग बढ़ाने या मोटा करने के लिए यदि किसी अनिष्टकारी वस्तु का लेप किया जाता तो लिङ्गमें एक तरह की गाँठ सी पड़ जाती उसे लोग ग्रथित है । इसमें कफका प्रकोप हुआ करता है ॥ ३ ॥

कुम्भिका

कुम्भिका रक्तपित्तोत्था जाम्बवास्थिनिभाऽशुभा ।

रक्तपित्तके दूषित होने पर जामुन की गुठली के समान लिङ्ग पर काले रंग की फुन्सी निकल आती है । इसे कुम्भिका कहते हैं ।

अलजी के लक्षण ।

तुल्यजां त्वलजीं विद्याद्यथाप्रोक्तां विचक्षणैः ॥ ४ ॥

पीछे प्रमेहके प्रकरणमें जो अलजीरोग कह आए हैं उसीके समान लिंग में काला या लाल फोड़ा निकल आता है उसकी अलजी संज्ञा है ॥ ४ ॥

मृदित के लक्षण ।

मृदितं पीडितं यच्च संरब्धं वातकोपतः ।

यदि शूकज पीड़ासे दुःखित होकर प्राणी लिङ्गको मुट्ठीमें लेकर ज़ोरसे दबा देता तो वायु कुपित होजाता और इसी कारण लिङ्ग पर सूजन आजाया करती है । इसे लोग मृदित कहते हैं ।

संमूढपिडिका के लक्षण ।

पाणिभ्यां भृशसंमूढे संमूढपिडका भवेत् ॥ ५ ॥

शूकज पीडाके कारण यदि लिङ्गमें कलबली उठती और प्राणी यदि लिङ्ग को दोनों हाथोंमें लेकर मसल देता तो उस पर एक विना मुँह की पिरकी निकलती है । लोग उसे संमूढ़पिडिका कहते हैं॥ ५ ॥

अधिमन्थ के लक्षण ।

दीर्घा बह्वयश्च पिडका दीर्यन्ते मध्यतस्तु याः ।

सोऽधिमन्थः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत् ॥ ६ ॥

यदि लिङ्गके बीच बीचमें बड़ी बड़ी फुंसियाँ कफ तथा रक्तके दोषसे निकल आएँ तो उसे लोग अधिमन्थ रोग कहते हैं । इसके होने पर बड़ी वेदना होती और रोंगटे खड़े होजाते हैं ॥ ६ ॥

पुष्करिका के लक्षण ।

पिडका पिडकाव्याप्ता पित्तशोणितसंभवा ।

पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिका तु सा ॥ ७ ॥

यदि पित्त और रक्तके दूषित होने पर लिङ्गके ऊपर कम आकारकी फुन्सियाँ निकल आतीं तो लोग उसे पुष्कारिणी रोग कहते

स्पर्शसे होनेवाली हानियाँ।

स्पर्शहानिं तु धमयेच्छोणितं शूकदूषितम्।

लिङ्गके बढ़ाने या मोटा करनेके लिए किसी ऐसी वैसी दवाका किया जाता तो उससे रक्त दूषित होजाता लिङ्ग बिल्कुल सुन्न होज यानी उसके छूने पर भी कुछ नहीं मालूम होता।

उत्तमा के लक्षण।

मुद्गमाषोपमा रक्ता रक्तपित्तोद्भवा तु या ॥ ८ ॥
व्याधिरेषोत्तमा नाम शूकाजीर्णनिमित्तजा।

यदि रक्त और पित्तके दूषित होने से लिङ्ग पर मूँग तथा उड़द समान लाल रंग की फुन्सियाँ निकल आएँ तो लोग उसे उत्तमा नाम व्याधि बतलाते हैं। यह अधिकतर शूक के अजीर्ण होने से हुआ करती है॥

शतपोनक के लक्षण।

छिद्रैरणुमुखैर्लिङ्गं चितं यस्य समन्ततः ॥ ९ ॥
वातशोणितजो व्याधिः स ज्ञेयः शतपोनकः।

जिस पुरुषके लिङ्गमें छोटे २ मुखवाली बहुत सी फुन्सियाँ निकल आएँ उसे लोग शतपोनक रोग कहते हैं। यह वात तथा रक्तके दूषित होने पर होता है ॥ ९ ॥

त्वक्पाक के लक्षण।

वातपित्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको ज्वरदाहकृत्॥ १० ॥

वायु तथा पित्तके कुपित होने पर लिङ्गके ऊपर की चमड़ी बिल्कुल पक जाती है इसी वजह से उस प्राणी को ज्वर आने लगता है। इसे लोग त्वक्पाक रोग कहते हैं ॥ १० ॥

शोणितार्बुद के लक्षण।

कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिडकाभिर्निपीडितम्।

यस्य वास्तुरुजश्चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम् ॥ ११ ॥

यदि रक्तसे भरी हुई काले रंग की बहुत सी फुन्सियाँ लिङ्ग भर पर निकल आएँ और वास्तुस्थानमें तीव्र वेदना होने लगे तो लोग उसे शोणितार्बुद रोग कहते हैं ॥ ११ ॥

मांसार्बुद के लक्षण ।

मांसदोषेण जानीयादर्बुदं मांससंभवम् ।

उसी प्रकार यदि मांसके दूषित होनेसे लिङ्गके ऊपर बहुत सी फुन्सियाँ निकल आएँ तो लोग उसे मांसार्बुदरोग कहते है ।

मांसपाक के लक्षण ।

शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः ॥ १२ ॥

विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ।

जिस मनुष्यके लिङ्गका समस्त मांस सड़कर गिर जाय और बड़ी वेदना हो तो लोग उसे मांसपाक नामक रोग कहते हैं । यह वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषों के कुपित होने पर होता है ॥ १२ ॥

विद्रधि के लक्षण ।

विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमिति निर्दिशेत् ॥ १३ ॥

पीछे सन्निपात विद्रधिके जो लक्षण कह आए हैं वही इस शूकज विद्रधिमें भी समझना चाहिए ॥ १३ ॥

तिलकालक के लक्षण ।

कृष्णानि चित्राण्यथवा शूकानि सविषाणि वा ।
पातितानि पचन्त्याशु मेढ्रं निरवशेषतः ॥ १४ ॥
कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यन्ते यस्य देहिनः ।
सन्निपातसमुत्थांस्तु तान् विद्यात्तिलकालकान् ॥ १५ ॥

जब लिङ्गके ऊपर काले या चितकबरे रंग की फुन्सियां होती हैं तो वे लिङ्ग को इस प्रकार गला देती हैं कि कहीं उसका नामोनिशान भी नहीं रह जाता । जिस मनुष्यके लिङ्गका सारा मांस काले रंगका होकर

सड़कर गिर जाय तो लोग उसे तिलकालक रोग कहते हैं। यह सर्वि
से जायमान होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

असाध्यत्व।

तत्र मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः।
विद्रधिश्च न सिध्यन्ति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ १६

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने शूकदोषनिदानं समाप्तम्।

इस शूक दोषमें गिनाए मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि तथा तिलका
ये चार रोग असाध्य होते हैं। ये कभी सिद्ध नहीं होते ॥ १६ ॥

इति श्रीरामतेजपाण्डेयविरचितमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने शूक-
दोषनिदानम् ॥ ४८ ॥

अथ कुष्ठनिदानम्।

कुष्ठ का निदान और संख्या।

विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि च।
भजतामागतां छर्दिं वेगांश्चान्यान् प्रतिघ्नताम् ॥ १ ॥
व्यायाममतिसन्तापमतिभुक्त्वा निषेविणाम्।
घर्मश्रमभयार्तानां द्रुतशीताम्बुसेविनाम् ॥ २ ॥
अजीर्णाध्याशिनां चैव पञ्चकर्मापचारिणाम्।
नवान्नदधिमत्स्यातिलवणाम्लनिषेविणाम् ॥ ३ ॥
माषमूलकपिष्टान्नतिलक्षीरगुडाशिनाम्।
व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने निद्रां च भजतां दिवा ॥ ४ ॥
विप्रान् गुरून् धर्षयतां पापं कर्म च कुर्वताम्।
वातादयस्त्रयो दुष्टास्त्वग्रक्तं मांसमम्बु च ॥ ५ ॥

दूषयन्ति स कुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः ।
अतः कुष्ठानि जायन्ते सप्त चैकादशैव च ॥ ६ ॥
कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः ।
सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकत्वतः ॥ ७ ॥

परस्पर प्रकृतिविरुद्ध अन्न पानादिका सेवन करने, तरल पदार्थ, स्निग्ध तथा भारी चीजें एक साथ खानेके कारण, वमन तथा मल मूत्रादिके वेग रोकने, घामसे आने पर अथवा भोजन करनेके पश्चात् तुरन्त व्यायाम करने, कभी गरम, कभी ठंढी चीजें खाने, कभी लङ्घन करने तथा ठीक समय पर भोजन न करनेसे, घाम खाने तथा किसी प्रकार का शारीरिक परिश्रम करनेके पश्चात् तुरन्त जल पीने तथा स्नान करनेवाले मनुष्योंको, अजीर्ण रहने पर भी जबर्दस्ती भोजन करनेवालों, विरेक, वमन, फस्त खुलाना तथा जुलाब लेने आदि पाँच कार्योंमें गड़बड़ी करनेवालों, नवीन अन्न, दही, दूध मछली, खटाई आदि चीजें एक सङ्ग खानेवालों, उड़द, मूली, पीठी, तिल, दूध तथा गुड़ आदि चीजें एक साथ सेवन करनेवालों, हमेशा नियमसे दिनमें सोनेवालों, बिना अन्न पचे मैथुन करनेवालों, माता, पिता, ब्राह्मण तथा गुरुजनों का अपमान करनेवालों और पापकर्ममें लिप्तरहनेवालोंके वात पित्त तथा कफ ये तीनों दोष दूषित होकर त्वचा, मांस, रक्त तथा जलको दूषित करके सात प्रकारके महाकुष्ठ रोगको उत्पन्न करते हैं। इनके सिवाय ११ प्रकारके और छोटे छोटे कुष्ठ (कोढ़) होते हैं। इनको जोड़नेसे कुल अठारह प्रकारके कुष्ठ रोग हैं जैसे वात–पित्त–कफ, इनसे तीन, द्वन्द्वज तीन, एक सन्निपातज सब मिलाकर सात हुए और ग्यारह साधारण कोढ़ इनके मिलनेसे अठारह प्रकार होते हैं। इनकी उत्पत्ति प्रायः त्रिदोषसे ही होती है अत एव जिस कुष्ठमें जिस दोषकी प्रबलता देखे उसके अनुसार उसकी चिकित्साका यत्न करे ॥ १–७ ॥

पूर्वरूप ।

अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शस्वेदास्वेदविवर्णताः ।
दाहः कण्डूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोठोन्नतिर्भ्रमः ॥८॥

व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ।
रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽतिकोपनम् ॥ ९ ॥
रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ।

जब जिस जगह पर कुष्ठ होनेवाला होता तो उस स्थानकी चमड़ी खुरखुरी अथवा चिकनी होजातीहै। उसमें कभी पसीना आता और कभी नहीं भी आता है । उस स्थानमें दाह होती, खुजली उठती, वह स्थान शून्य होजाता, किसी चीज़से कोंचनेके समान पीड़ा होती, सूजन होजाती और बिना किसी प्रकार का परिश्रम किए ही थकान सी मालूम पड़ने लगती है। थोड़े दिनोंमें उस स्थान पर घाव होजाते और उनमें शूल उठता है। वे घाव होते तो शीघ्र हैं लेकिन जल्दी पूरे नहीं होते यानी बहुत दिनों तक ज्योंके त्यों बने रहते हैं। यदि किसी प्रकार पूरभी जाते तो साधारणसे व्यतिक्रम होने पर फिर खराब होजाते और उसी तरह उसमें पीड़ा होने लगती है। यदि रोंगटे खड़े होजायँ, खूनका रङ्ग काला होजाय तो समझलेना चाहिये कि कुष्ठरोग होनेवाला है ॥ ८ ॥ ९ ॥

सात महाकुष्ठों के लक्षण ।

कृष्णारुणकपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु ॥ १० ॥
कापालं तोदबहुलं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम् ।
रुग्दाहरागकण्डूभिः परीतं रोमपिञ्जरम् ॥ ११ ॥
उदुम्बरफलाभासं कुष्ठमौदुम्बरं वदेत् ।

यदि कुष्ठ काले और लाल रंगका मिला हुआहो, मिट्टीके खपड़ेकी नाईं जिसमें रूखापन हो, शरीरकी चमड़ी बिल्कुल खुरखुरी तथा पतली होगईहो, और तीव्र वेदना हुआ करे। ऐसे भयानक कुष्ठरोग को लोग कपाल कुष्ठ कहते हैं ॥ १० ॥ यदि चमड़ेमें जलन रहे, रङ्ग लाल होगया हो, खुजली विशेष हुआ करे शरीरके लोम पीले होजायँ, कुष्ठका रङ्ग गूलरके फलकी तरह हो जाय तो लोग उसे औदुम्बर कुष्ठ कहते हैं ॥ ११ ॥

श्वेतं रक्तं स्थिरं स्त्यानं स्निग्धमुत्सन्नमण्डलम् ॥ १२ ॥
कृच्छ्रमन्योन्यसंयुक्तं कुष्ठं मण्डलमुच्यते ।
कर्कशं रक्तपर्यन्तमन्तः श्यावं सवेदनम् ॥ १३ ॥
यदृष्यजिह्वसंस्थानमृष्यजिह्वं तदुच्यते ।
सश्वेतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम् ॥ १४ ॥
सोत्सेधं च सरागं च पुण्डरीकं तदुच्यते ।
श्वेतं ताम्रं तनु च यद्रजो घृष्टं विमुञ्चति ॥ १५ ॥
प्रायश्चोरसि तत् सिध्ममलाबुकुसुमोपमम् ।
यत्काकणन्तिकावर्णं सपाकं तीव्रवेदनम् ॥ १६ ॥
त्रिदोषलिङ्गं तत्कुष्ठं काकणं नैव सिध्यति ।

जिस कुष्ठरोगमें त्वचाका रङ्ग सफेद अथवा लाल होजाय, उसमें कड़ाई, गाढापन, चिकनाई रहे और वह मण्डल बाँधकर निकले एवं प्रत्येक मण्डल एक दूसरेसे सट जायँ तो उसको लोग मण्डलकुष्ठ कहते हैं ॥१२॥

जिस कुष्ठमें त्वचा बिल्कुल कड़ी होजाय, उसका वर्ण ताम्रके समान लाल हो जहाँ तहाँ कालापन दीखता रहे, पीड़ा भी हुआ करे अथवा भालू की जीभके समान चकत्ते बाँधकर उत्पन्न हो तो लोग उसे ऋक्षजिह्व नामक कुष्ठ कहते हैं ॥ १३ ॥

जिस कुष्ठ रोगमें शरीरका चमड़ा सफेदी लिए लाल वर्ण का हो और आकार कमलकी पंखुड़ियोंके समान हो तो लोग उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहते हैं॥१४॥

जिस कुष्ठमें ऊपरका चमड़ा सफेद और रक्तिमा लिए हो, चमड़ा पतला हो खुजलाने पर उसमें से धूलि सी निकलती दिखाईदे, अधिकांश छातीमें उत्पन्न हो और लौकीके फूलकी तरह उसका आकार रहे तो वह सिध्मकुष्ठ कहलाता है ॥ १५ ॥

जिसका वर्ण घुँघचीके समान लाल हो तथा बीच बीचमें काला धब्बा दिखाईदे, वह पक जाय तो उसमें दारुण वेदना हो उसे काकणकुष्ठ

समझना चाहिए। यह कुष्ठ तीनों दोषोंके प्रकोपसे होता है और अ सानाजाता है ॥ १६ ॥

एकादश क्षुद्रकुष्ठ के लक्षण।

अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम् ॥ १७
तदेककुष्ठं चर्माख्यं बहलं हस्तिचर्मवत्।
श्यावं किणखरस्पर्शं परुषं किटिभं स्मृतम् ॥ १८
वैपादिकं पाणिपादस्फुटनं तीव्रवेदनम्।
कण्डूमद्भिः सरागैश्च गण्डैरलसकं चितम् ॥ १९ ॥
सकण्डूरागपिडकं दद्रुमण्डलमुद्गतम्।
रक्तं सशूलं कण्डूमत् सस्फोटं यद्गलत्यपि।
तच्चर्मदलमाख्यातं संस्पर्शासहमुच्यते ॥ २० ॥
सूक्ष्मा बह्वयः पिडकाः स्रावत्यः
पामेत्युक्ताः कण्डुमत्यः सदाहाः।
सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता
ज्ञेया पाण्योः कच्छुरुग्रा स्फिचोश्च ॥ २१ ॥
स्फोटाः श्यावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः।
रक्तं श्यावं सदाहार्ति शतारुः स्याद्बहुव्रणम् ॥ २२ ॥
सकण्डूः पिडका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका।

जिस कुष्ठमें पसीना न आए, ज्यादातर मोटी और मांसवाली जगहों पर हो उसका आकार मछलीके छिलके की तरह रहे, शरीरके अधिकांश चमड़े हाथीके चमड़ेकी तरह मोटे होजायँ तो उसे गजचर्म नामक कुष्ठ रोग जानना चाहिए। जिस कुष्ठमें शरीरकी त्वचा काली होजाय घाव छूनेमें खुरखुरा जान पड़े, खुजाई विशेष रहे तो वह किटिभ कुष्ठ कहलाता है, जिस कुष्ठमें हाथ पैर फटजायँ साथही तीव्र वेदना हो वह वैपादिक यानी

बेवाई कहलाता है । जिसमें लाल वर्णकी बहुतसी फुन्सियाँ निकल आएँ और बड़ी खुजली हो लोग उसे अलसक कुष्ठ कहते हैं । यदि लाल वर्णकी बहुत सी फुंसिया चकत्तेके रूपमें निकल आएँ तो वह दद्रुमण्डल (दाद) नामक कुष्ठ कहाजाता है । जिसमें ऊपरकी चमड़ी लाल होजाय, पीड़ा बनी रहे, खुजली उठाकरे, उसे लोग चर्मदल नामक कुष्ठ कहते हैं । पीड़ा के मारे यह छुआ ही नहीं जाता। जिसमें छोटी २ और बहुत सी फुन्सियाँ निकल आए, उनमें खुजलीके साथ दाह बनी रहे, कुछ कुछ पीब भी आता रहे तो उसे पामा (खुजली) कुष्ठ कहते हैं । यदि इसी रोगमें छोटी फुन्सियों के सिवाय बड़ी बड़ी फुन्सियाँ निकलें, उनमें जलन बनी रहे, दोनों हाथों और गलेमें विशेष करके होवे तो लोग उसे कच्छु नामक कुष्ठ कहते हैं । जिसमें काले या लाल रङ्गके बहुतसे झलके निकल आएँ उनके ऊपर का चमड़ा बिल्कुल पतला रहे इससे शीघ्र फूट जाय तो लोग उसे विस्फोटक कुष्ठ कहते हैं। जिसमें लाल, काले, जलनयुक्त बहुत से व्रण हो जायँ तो उसे लोग शतारु नामक कुष्ठ कहते हैं। जिसमें खुजलाहट लिए बहुत सी फुन्सियाँ निकल आएँ। उनमें से अधिक मात्रामें पीव आदि बहता रहे तो वह विचर्चिका नामक कुष्ठ कहाजाता है ॥ १७-२२ ॥

सान्निपातज कुष्ठ के लक्षण ।

खरं श्यावारुणं रूक्षं वातकुष्ठं सवेदनम् ॥ २३ ॥
पित्तात्प्रक्वथितं दाहरागस्रावान्वितं मतम् ।
कफात्क्लेदि घनं स्निग्धं सकण्डूशैत्यगौरवम् ॥ २४ ॥
द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं कुष्ठं त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ।

वायुके कुपित होने पर जो कुष्ठ होता वह काला अथवा लाल रङ्ग का रहता, उसमें रूखापन भी अधिक रहता साथ ही वेदना भी हुआ करती है । पित्त के कुपित होने पर जो कुष्ठ होता उसमें दाह विशेष रहती, उस का लाल रङ्ग होता और बहता भी अधिक है। कफके कुपित होने पर जो कुष्ठ होता उसमें सरसता, कठोरता, चिकनापन, खुजलीयुक्त, ठण्ढक और भारीपन रहता है । दो दोषोंके प्रकोपसे जो कुष्ठ होता उसमें दोनोंके

लक्षण दीखते एवं सन्निपातसे जो कुष्ठ होता उसमें तीनों दोषोंके लक्षण दीखते हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

सप्तधातुगत कुष्ठ के लक्षण ।

त्वक्स्थे वैवर्ण्यमङ्गेषु कुष्ठे रौक्ष्यं च जायते ॥ २५ ॥
त्वक्स्वापो रोमहर्षश्च स्वेदस्यातिप्रवर्तनम्
कण्डूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसंश्रिते ॥ २६ ॥
बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिडकोद्गमः ।
तोदः स्फोटः स्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥ २७ ॥
कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां संभेदः क्षतसर्पणम् ।
मेदःस्थानगतं लिङ्गं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ २८ ॥
नासाभङ्गोऽक्षिरागश्च क्षतेषु क्रिमिसंभवः ।
स्वरोपघातश्च भवेदस्थिमज्जसमाश्रिते ॥ २९ ॥

त्वचामें यदि कुष्ठ होता तो अङ्गमें रूखापन विशेष रहता, त्वचामें अतिशय जलन होती, रोंगटे खड़े होजाते, पसीना अधिक निकलता और शरीर का रङ्ग बदलजाया करता है ॥ २५ ॥ यदि यह कुष्ठ रक्तमें होता तो खुजली विशेष उठती और उसमेंसे पीव भी बहुत बहता है यदि कुष्ठ मांस के आश्रित होता तो ज्यादातर मुख सूख जाता, शरीर कर्कश होजाता, फुन्सियां विशेष निकल आतीं, शरीरमें सुई चुभने के समान वेदना होती या बड़े बड़े फोटके पड़जाते और बहुत दिनों तक नहीं छोड़ते । यदि यह कुष्ठ मेद तक पहुँचता तो अङ्ग गलने लगते जिससे चलना फिरना दूभर होजाता । सारी देह फूटने लगती और घाव समस्त शरीरमें फैल जाता है । पहले रक्तरसमांसगत कुष्ठ के जो लक्षण कह आए हैं वे भी इसमें मौजूद रहते हैं ॥ २५–२८ ॥ यह कुष्ठ रोग यदि अस्थि तथा मज्जा तक पहुँच जाता तो नाककी हड्डी गलजाती, आँख लाल हो जाती, घावमें कीड़े पड़ जाते और आवाज़ भर्रा कर निकलती है ॥ २९ ॥

दम्पत्योः कुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः ।
यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ ३० ॥

यदि स्त्री तथा पुरुष दोनोंके कुष्ठ हो जाय तो उनका शोणित और शुक्र दूषित होजाता इस लिए उनके जो सन्तान होती वह भी कुष्ठरोगसे पीडित होती है ॥ ३० ॥

साध्यासाध्यत्व ।

साध्यं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकं च यत् ।
मेदसि द्वन्द्वजं याप्यं वर्ज्यं मज्जास्थिसंश्रितम् ॥ ३१ ॥
क्रिमितृड्दाहमन्दाग्निसंयुक्तं यत्त्रिदोषजम् ।
प्रभिन्नं प्रस्रुताङ्गं च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥ ३२ ॥
पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह मानवम् ।

जो कुष्ठरोग त्वचा, रक्त एवं मांस तक पहुँचा हो और वात तथा कफ की उसमें प्रधानता हो तो वह कुष्ठ रोग शान्त होजाता है । लेकिन जो रोग मेदे तक पहुँच जाता एवं वात पित्त आदिमेंसे दो दो दोषों की प्रधानता रहती तो वह याप्य होता है । किन्तु जिसके मज्जा तथा अस्थितक रोग पहुँच गया हो ऐसे कुष्ठ रोगका परित्याग कर देना चाहिए ॥ ३१ ॥ जिस कुष्ठमें कीड़े पड़ गए हों, जी मिचलाया करे, अग्नि मन्द पड़जाय और तीन दोषोंका प्रकोप हो, कोढ़ फूट फूट कर बहने लगे, आँखें रक्त वर्णकी होजायँ, आवाज़ भर्रा जाय, विरेक, वमन आदि पाँच कर्मोंके कराने पर भी रोगी को आराम न हो । इस प्रकार का कुष्ठरोग प्राणी को मार ही डालता है ॥ ३२ ॥

कुष्ठों के प्रधान दोष ।

वातेन कुष्ठं कापालं पित्तेनौदुम्बरं कफात् ॥ ३३ ॥
मण्डलाख्यं विचर्चीं च ऋष्याख्यं वातपित्तजम् ।
चर्मैककुष्ठं किटिभं सिध्मालसविपादिकाः ॥ ३४ ॥

वातश्लेष्मोद्भवाः श्लेष्मपित्ताद्दद्रुशतारुषी ।
पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा ॥ ३
सर्वैः स्यात्काकणं पूर्वत्रिकं दद्रु सकाकणम् ।
पुण्डरीकर्ष्यजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु ॥ ३६ ।

उपर्युक्त कपालकुष्ठ रोगमें वात की प्रधानता रहती है, औदुम्
पित्तकी, मण्डलक और विचर्चिकामें पित्तकी, ऋक्षकुष्ठमें वातपित्तकी,
कुष्ठ, किटिभ, सिध्म कुष्ठ, अलस एवं विपादिकामें वात और क
प्रधानता रहा करती है । उसी तरह दद्रु और शतारुमें कफ और पि
प्रधानता रहती है । पुण्डरीक, विस्फोट, पामा तथा चर्मदलमें भी
पित्तकी ही प्रधानता रहती है । पूर्वोक्त काकणकुष्ठमें वातपित्तादि
दोषोंकी प्रधानता रहती है । कापाल, औदुम्बर, मण्डल, दद्रु, का
पुण्डरीक तथा ऋक्ष ये सात महाकुष्ठ माने गए हैं ॥ ३३–३६ ॥

श्वित्र और किलास के लक्षण ।

कुष्ठैकसंभवं श्वित्रं किलासं वारुणं भवेत् ।
निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥ ३७ ॥
वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत् ।
सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु ॥ ३८ ।
सकण्डुरं क्रमाद्रक्तमांसमेदःसु चादिशेत् ।
वर्णेनैवेदृगुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३९ ॥

श्वित्र (सफेद कोढ़) भी उन्हीं कारणोंसे उत्पन्न होते हैं जो प
कुष्ठप्रसङ्गमें कह आए हैं । उसी तरह किलास भी होता है विशेषता केव
इतनी रहती है कि इसका रङ्ग लाल हुआ करता है । ये दोनों कुष्ठ
कर बहते नहीं और इनमें तीनों दोषोंकी प्रधानता रहती है ॥ ३७ ॥

वायुके कारण जो कुष्ठ होता वह लाल रङ्गका रहता, जो पित्तसे हो
वह कमलपत्रके समान लाल होता उसमें दाह हुआ करती और रोम गि
जाते हैं । कफसे उत्पन्न कोढ़ सफेद, घन तथा भारी हुआ करता है । उस

जब तब खुजली उठा करती है । ऊपर जो क्रम दोषोंके बतला आए हैं उन्हींके अनुसार रक्त, मांस तथा मेदके आश्रयीभूत कुष्ठोंका भी रङ्ग आदि रहा करता है । जैसे-रक्तके आश्रित जो कुष्ठ होता उसका रङ्ग ताम्रवर्णका होता, मांसके आश्रित कुष्ठका रङ्ग लाल तथा मेदके आश्रित कुष्ठका रङ्ग सफेद होता है और उत्तरोत्तर रक्ताश्रितकी अपेक्षा मांसाश्रित, मांसाश्रित से मेदाश्रित कुष्ठरोग कष्टसाध्य हुआ करता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

साध्यासाध्यत्व ।

अशुक्लरोमाऽबहुलमसंश्लिष्टमथो नवम् ।
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ ४० ॥
गुह्यपाणितलौष्ठेषु जातमप्यचिरन्तनम् ।
वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता ॥ ४१ ॥

यदि श्वित्रकुष्ठके उजले चकत्तों परके बाल काले बने रहें, रोंग टों की संख्या पर्याप्त रहे, एक चकत्ते दूसरेसे मिल न गए हों और नए हों, अग्निसे जल जानेके कारण वे दाग न बने हों, इसप्रकारके श्वित्र रोग वाले दाग साध्य होते हैं । इसके विपरीत जिनके लक्षण हों उनका परित्याग कर देना चाहिए ॥ ४० ॥ जिस रोगीके लिङ्ग, गुदा, हाथोंके ऊपर या पैरके तलवोंमें, होंठोंमें किलासकुष्ठ होजाय तो चाहे वह बिल्कुल नया ही हो फिर भी उसका परित्याग कर देना चाहिए ॥ ४१ ॥

संसर्गज रोगोंके नाम ।

प्रसङ्गाद्गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात् सहभोजनात् ।
एकशय्यासनाच्चैव वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ४२ ॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥ ४३ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने कुष्ठनिदानं समाप्तम् ।

बहुतेरे रोग संसर्गसे उत्पन्न होते हैं जैसे—स्त्रीप्रसंग करने, शरीरमें लिपटने, रोगीका श्वास लगने, साथ साथ भोजन करने, एक ही शय्या

पर एक साथ सोने, रोगीके उतारे वस्त्र तथा मालाके पहननेसे कुष्ठ, ज्वर शोष, नेत्ररोग ये इतने रोग उत्पन्न होजाते हैं। ये औपसर्गिक रोग कहला हैं और एकसे दूसरे मनुष्यको होजाते हैं॥ ४२॥ ४३॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने कुष्ठनिदानम्॥ ४९॥

अथ शीतपित्तोदर्दकोठनिदानम्।

संप्राप्ति।

शीतमारुतसंस्पर्शात्प्रदुष्टौ कफमारुतौ।
पित्तेन सह संभूय बहिरन्तर्विसर्पतः॥ १॥

ठंढी हवा के लगने से कफ तथा वात कुपित होकर पित्त से मि जाते और धीरे धीरे बाहर भीतर फैलने लगते हैं॥ १॥

पूर्वरूप।

पिपासारुचिहृल्लासदेहसादाङ्गगौरवम्।
रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम्॥ २॥

जब कि इस शीतपित्त रोगकी उत्पत्ति होनेवाली होती तो प्यास अधिक लगती, सब चीजों से अरुचि हो जाती, जी मिचलाता, हृदय में बेचैनी रहती, शरीर भारी मालूम होता, आँखें लाल होजातीं, ये इसके पूर्वरूप हैं॥ २॥

उदर्दके लक्षण।

वरटीदष्टसंस्थानः शोथः संजायते बहिः।
सकण्डूस्तोदबहुलश्छर्दिज्वरविदाहवान्॥ ३॥
उदर्दमिति तं विद्याच्छीतपित्तमथापरे।
वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः॥ ४॥

बर्रै के काटने पर जैसे सूजन होती उसी प्रकार बाहर सूजन होती, खुजलाहट के साथ साथ सुई से छेदने के समान पीड़ा होती, कै होती, ज्वर आने लगता, शरीर में दाह होती, इसी को कुछ लोग उदर्द तथा

कोई कोई शीतपित्त भी कहा करते हैं । भेद केवल इतना रहता है कि शीतपित्त में वात की प्रधानता रहती है और उदर्दमें कफ का विशेष जोर रहा करता है ॥ ३ ॥ ४ ॥

उदर्दका धर्मान्तर ।

सोत्सङ्गैश्च सरागैश्च कण्डूमद्भिश्च मण्डलैः ।
शैशिरः कफजो व्याधिरुदर्द इति कीर्तितः ॥ ५ ॥

शीतयुक्त कफ के प्रकोप से उत्पन्न उदर्द रोग में लाल लाल रंग के चकत्ते शरीर में हो जाते, उन में खुजली उठती और चकत्ता चारों ओर से ऊँचा तथा बीच में कुछ खाली सा रहा करता है। इसे भी लोग उदर्द रोग ही कहते हैं ॥ ५ ॥

कोठके लक्षण ।

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः ।
मण्डलानि सकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च ।
उत्कोठः सानुबन्धश्च कोठ इत्यभिधीयते ॥ ६ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने शीतपित्तोदर्दकोठानिदानं समाप्तम् ।

उबकाई आकर अच्छी तरह वमन न हो अथवा पित्त, कफ या खाया हुआ अन्न भीतर ही रुक जाय, चकत्तों में खुजली उठे, उनका लाल रंग रहे, चकत्तों की संख्या भी अधिक रहे, बारम्बार उछल उछल कर शान्त हो जाया करे तो लोग इसे कोठरोग कहते हैं ॥ ६ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने शीतपित्तनिदानम् ॥ ५० ॥

अथ अम्लपित्तनिदानम् ।

अम्लपित्तका स्वरूप ।

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम् ।
पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥१॥

प्रकृति से विरुद्ध, दूषित, सड़े (आमिल), गर्मी अधिक

उत्पन्न करने वाले, पित्त को कुपित करनेवाले अन्न पान के सेवन करने से मनुष्य का पित्त अतिशय दूषित हो जाता और पीछे पित्त के जो हेतु कह आए हैं उन से बढ़कर दुःख पहुँचाता है। इसी को वैद्यक शास्त्र में निपुण अच्छे लोग अम्लपित्त रोग कहते हैं॥ १॥

अम्लपित्तके लक्षण।

अविपाकक्लमोत्क्लेशतिक्ताम्लोद्गारगौरवैः।
हृत्कण्ठदाहारुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद्भिषक्॥ २॥

खाया हुआ अन्न न पचे, चित्त में ग्लानि हो, जी मिचलाता रहे, कड़वी और खट्टी डकारें आती रहें, हृदय और कण्ठ में जलन हो और सब प्रकार की वस्तुओं से अरुचि हो जाय तो उसे लोग अम्लपित्त रोग समझें। शरीर की गुरुता, डकार तथा कम्पादिक से वात और कफ को इसका अनुयायी समझना चाहिए॥ २॥

अम्लपित्तके भेद।

तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम्।
हृल्लासकोठानलसादहर्षस्वेदाङ्गपीतत्वकरं कदाचित्॥ ३॥

जब कि यह अम्लपित्त रोग नीचे की तरफ जाता रहता तो प्यास विशेष लगती, शरीर में दाह अधिक होती, मूर्च्छा आती रहती, भ्रम होता, मोह हुआ करता और विविध प्रकार के रंग बदल बदल कर मल नीचेकी ओर गिरता है। ऐसी अवस्था में जी मिचलाता, कोठे में अनेक प्रकार की बाधाएँ होतीं, अग्नि मन्द पड़ जाता, रोंगटे खड़े हो जाते, पसीना विशेष आता और शरीर पीला पड़ जाता है॥ ३॥

ऊर्ध्वगत अम्लपित्तके लक्षण।

वान्तं हरित्पीतकनीलकृष्णमारक्तरक्ताभमतीव चाम्लम्।
मांसोदकाभं त्वतिपिच्छिलाच्छं श्लेष्मानुजातं विविधं रसेन॥४॥
भुक्ते विदग्धे त्वथवाऽप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवमिं कदाचित्।
उद्गारमेवंविधमेव कण्ठहृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजं च॥५॥

करचरणदाहमौष्ण्यं महतीमरुचिं ज्वरं च कफपित्तम् ।
जनयति कण्डूमण्डलपिडकाशतनिचितगात्ररोगचयम् ॥६॥

यदि अम्लपित्त ऊर्ध्वगत होता तो हरा, नीला, पीला, काला, लाल, रुधिर वर्णका, अतिशय खट्टा, मांसधोवन पानी के समान, कुछ फेना लिए हुए, कफ से मिला हुआ, खारा तथा कसैला वमन होता है॥४॥ कभी भोजन करलेने के पश्चात्, कभी जब भोजन न किए रहे तभी वमन हो जाता है, वह वमन कड़वा और खट्टा होता है। डकार भी खट्टी ही आती है और गले, हृदय, कोख तथा सिर में पीड़ा होती है। कफ तथा पित्तके प्रकोप से जायमान अम्लपित्त रोग से हाथ पैर में जलन होती, अरुचि होती, और ज्वर भी आने लगता है। खुजली उत्पन्न होकर मण्डल बँध जाते एवं चकत्ते पड़ जाया करते हैं कितनी ही फुन्सियाँ निकल आतीं और अनेक उपद्रव खड़े हो जाते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

साध्यासाध्यत्व ।

रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात् संसाध्यते नवः ।
चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कृच्छ्रसाध्यः स कस्यचित् ॥७॥
सानिलं सानिलकफं सकफं तच्च लक्षयेत् ।
सोपलिङ्गेन मतिमान् भिषङ्मोहकरं हि तत् ॥ ८ ॥
कम्पप्रलापमूर्च्छाचिमिचिमिगात्रावसादशूलानि ।
तमसो दर्शनविभ्रमविमोहहर्षाण्यनिलकोपात् ॥ ९ ॥
कफनिष्ठीवनगौरवजडतारुचिशीतसादवमिलेपाः ।
दहनबलसादकण्डूनिद्राश्चिह्नं कफानुगते ॥ १० ॥
उभयमिदमेव चिह्नं मारुतकफसंभवे भवत्यम्ले ।
तिक्ताम्लकटुकोद्गारहृत्कुक्षिकण्ठदाहकृत् ॥ ११ ॥
भ्रमो मूर्च्छारुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजा ।

प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदानेऽम्लपित्तनिदानं समाप्तम् ।

यदि यह अम्लपित्त रोग नवीन हो तो कोई यत्न करने से सिद्ध जाता है, यदि पुराना पड़ गया हो तो याप्य होता और किसी कि के लिए कष्टसाध्य भी हो जाया करता है ॥ ७ ॥

यह अम्लपित्त हमेशा वात युक्त वात कफ युक्त तथा कफ युक्त ह रहता है और पूर्व कथित लक्षणोंसे इसकी परीक्षा करनी चाहिए क्यों यह बुद्धिमान् वैद्यों को भी चक्करमें डाल देता है ॥ ८ ॥

वातयुक्त अम्लपित्तमें रोगी काँपता रहता, अनाप सनाप बकता मूर्च्छा आजाती, शरीरमें चटचटी मालूम होती, आलस्य छायी रहती जब तब शूल उठा करता, आँखोंके सामने अन्धकार छाजाता, तबी यतमें घबराहट होती, मोह होता और रोंगटे खड़े हो जाया करते हैं ॥ ९ ।

कफयुक्त अम्लपित्तमें कफका ही थूँक आता, शरीर भारी होजाता अङ्ग जकड़ जाते, अरुचि होजाती, शरीर ठंढा बना रहता, सुस्ती रहती, जब तब वमन होजाता, मुँहमें लबाब सा भर आया करता, आ मन्द पड़ जाती, शरीरमें खुजली उठती और नींद अधिक आने लगती है॥१

वात कफसंयुक्त अम्लपित्तमें ऊपर कहे दोनों प्रकारके अम्लपित्तों लक्षण मिलते जुलते रहते हैं ॥ ११ ॥

कफ और पित्त युक्त अम्लपित्त रोगमें भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, सिरकी पीड़ा, मुँहमें पानी भर आना, मुँहमें मीठापन रहना ये लक्षण दीखते हैं ॥ १२ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदानेऽम्लपित्तनिदानम् ॥ ५१ ॥

अथ विसर्पनिदानम् ।

विसर्प रोग के भेद तथा संख्या ।

लवणाम्लकटूष्णादिसंसेवाद्दोषकोपतः ।
विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥ १ ॥

पृथक् त्रयस्त्रिभिश्चैको विसर्पा द्वन्द्वजास्त्रयः ।
वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सान्निपातिकः ॥ २ ॥
चत्वार एते वीसर्पा वक्ष्यन्ते द्वन्द्वजास्त्रयः ।
आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याख्यः कफवातजः ॥३॥
यस्तु कर्दमको घोरः स पित्तकफसंभवः ।

नमकीन, खट्टी, कड़ुई तथा गरम चीजें सेवन करनेसे वातादि दोष कुपित होकर इस विसर्प रोगको उत्पन्न करते हैं । यह सात प्रकारका होता है और शीघ्र शरीरमें फैल जानेके कारण इसकी विसर्प संज्ञा होती है ॥१॥ वे सातों भेद इस तरह जानने चाहिए जैसे—वात, पित्त और कफ इन तीनोंसे तीन प्रकार के, एक सन्निपातज और तीन द्वन्द्वज। वातिक, पैत्तिक, कफज तथा सन्निपातिक ये चार तो साधारणतः होते ही हैं। अब द्वन्द्वज के विषय में कहते हैं—वात तथा पित्त जब एक सङ्ग कुपित होते तो आग्नेय नामक विसर्प होता है । कफ और वात जब कुपित होते तो ग्रन्थी नामक विसर्प होता है। पित्त और कफ कुपित होते तो कर्दमक नामक विसर्प रोग होता है ॥ २ ॥ ३ ॥

विसर्प के दोष और दूष्य तथा वातजादिकों के लक्षण ।

रक्तं लसीका त्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः ॥ ४ ॥

शरीर का रक्त, लसीका (जल) त्वक्, मांस ये चार दूष्य एवं वात-पित्त-कफ ये तीनों दोष, ये ही सात धातुवें इस विसर्प रोग की उत्पत्ति में कारण होती हैं ॥ ४ ॥

विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त धातवः ।
तत्र वातात् स वीसर्पो वातज्वरसमव्यथः ॥ ५ ॥
शोथस्फुरणनिस्तोदभेदायासार्तिहर्षवान् ।
पित्ताद्द्रुतगतिः पित्तज्वरलिङ्गोऽतिलोहितः ॥ ६ ॥
कफात् कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ।

सन्निपातसमुत्थश्च सर्वलिङ्गसमन्वितः ॥ ७ ॥

वात के प्रकोप से उत्पन्न विसर्प में वातज्वर के समान व्यथा होती है, शरीर शोथ जाता, अङ्ग फड़कने लगते, किसी चीज़ से कोंचने के समान पीड़ा होती, फटने, या फूटने की तरह वेदना हुआ करती, थकावट मालूम होती और रोंगटे खड़े हो जाया करते हैं, पित्त के कुपित होने पर जो विसर्प होता उसमें पित्तज्वर के सब लक्षण दिखाई देते हैं और रंग लाल हो जाया करता है। कफ के प्रकोप से उत्पन्न विसर्प में खुजली विशेष उठती, शरीर में चिकनापन रहता और कफज्वर के समान व्यथा हुआ करती है। सन्निपात से जायमान विसर्प में समस्त दोषों के लक्षण दीखते हैं ॥ ५-७ ॥

आग्नेय विसर्प के लक्षण।

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्च्छातीसारतृड्भ्रमैः।
ग्रन्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ॥ ८ ॥
करोति सर्वमङ्गं च दीप्ताङ्गारावकीर्णवत्।
यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत् स सः ॥ ९ ॥
शान्ताङ्गारासितो नीलो रक्तो वाऽऽशु च चीयते।
अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद्द्रुतं स च ॥ १० ॥
मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः।
व्यथतेऽङ्गं हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत् ॥ ११ ॥
हिक्कां च स गतोऽवस्थामीदृशीं लभते न ना।
क्वचिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ॥ १२ ॥
चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहप्रमोहवान्।
दुष्प्रबोधोऽश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥ १३ ॥

वातपित्तके एक साथ कुपित होनेपर जो विसर्प होता उसमें ज्वर आता,

जब तब वमन हो जाया करता, मूर्च्छा आती, पतली दस्त होने लगती, प्यास लगती, चक्कर आने लगता, गाँठें फटने लगतीं, मन्दाग्नि हो जाता, आँखों के सामने अन्धेरा छा जाता और सारे अंग तपते हुए अंगारे के समान लाल हो जाते हैं। यह विसर्प जिन जिन अंगों में दौड़ता है उन उनकी यही दशा हो जाया करती है। अथवा बुझे हुए कोयले के समान शरीर में काला, नीला तथा लाल चकत्ता पड़ जाता और देहमें सूजन हो जाया करती या अग्निसे जल जाने पर निकले फफोलों के समान फफोले पड़ जाते और विसर्प रोग झटपट किसी मर्मस्थान पर जाकर डट जाता है। पवन के बली होने के कारण उस जगह असह्य वेदना होने लगती, रोगी बेहोश हो जाता, नींद नहीं आती, श्वास जोरों से चलने लगती और हिचकी विशेष आती है। ऐसी अवस्था में प्राणी को यह ज्ञान नहीं रह जाता कि मैं ज़मीन पर पड़ा हूँ या बिछौने पर। वह किसी स्थान पर इधर उधर लोटता हुआ पड़ा रहता है। मन और देह में एक प्रकार की थकावट सी आ जाती और ऐसी नींद आती है कि उसे कुछ ज्ञान नहीं रहता। इसी को लोग अग्निविसर्प कहते हैं ॥ ८–१३ ॥

ग्रन्थिविसर्प के लक्षण ।

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम् ।
रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्सिरास्नायुमांसगम् ॥ १४ ॥
दूषयित्वा तु दीर्घाणुवृत्तस्थूलखरात्मनाम् ।
ग्रन्थिनां कुरुते मालां सरक्तां तीव्ररुज्ज्वराम् ॥ १५ ॥
श्वासकासातिसारास्यशोषहिक्कावमिभ्रमैः ।
मोहवैवर्ण्यमूर्च्छाङ्गभङ्गाग्निसदनैर्युताम् ॥ ॥ १६ ॥
इत्ययं ग्रन्थिवीसर्पः कफमारुतकोपजः ।

यदि कफ पवन को रोक लेता तो ज्यादातर वह कफ को फाड़कर अथवा बढ़े हुए रक्त का भी भेदन करके त्वक्, सिरा (नस) तथा मांस में जाता और उन्हें दूषित करके बड़ी, छोटी, गोल, मोटी तथा खुर-

खुरी गाँठों की माला उत्पन्न कर देता है, जिसमें रक्त भरा रहता, ज़ोरों से पीड़ा हुआ करती और ज्वर भी आने लगता है। ऐसी हालत में श्वास, कास, अतिसार, मुँह का सूख जाना, हिचकी आना, वमन होना, चक्कर आने लगना, मोह होना, मुँह का रंग बदल जाना, अङ्ग भङ्ग हो जाना, अग्नि का मन्द पड़ जाना, ये समस्त उपद्रव उस ग्रन्थिमाला में होते हैं। कफवात के प्रकोप से उत्पन्न विसर्प में यही ग्रन्थिविसर्प नामक रोग होता है ॥ १४–१६ ॥

कर्दमविसर्प के लक्षण ।

कफपित्ताज्ज्वरः स्तम्भो निद्रा तन्द्रा शिरोरुजा ॥ १७ ॥
अङ्गावसादविक्षेपौ प्रलेपारोचकभ्रमाः ।
मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेन्द्रियगौरवम् ॥ १८ ॥
आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स च सर्पति ।
प्रायेणामाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् ॥ १९ ॥
पिडकैरवकीर्णोऽतिपीतलोहितपाण्डुरैः ।
स्निग्धोऽसितो मेचकाभो मलिनः शोथवान् गुरुः ॥ २० ॥
गम्भीरपाकः प्राज्योष्मा स्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते ।
पङ्कवच्छीर्णमांसश्च स्पृष्टस्नायुसिरागणः ॥ २१ ॥
शवगन्धी च वीसर्पः कर्दमाख्यमुशन्ति तम् ।

कफ और पित्त के प्रकोप से उत्पन्न कर्दमनामक विसर्प होता उसमें ज्वर आता, शरीर जकड़ जाता, नींद विशेष आती, आलस्य आती, सिर में पीड़ा होती, अङ्ग टूटते, अङ्ग कड़कते रहते, रोगी अनाप सनाप बकता, चक्कर आती, कभी २ मूर्च्छा आ जाती, अग्नि मन्द हो जाता, हड्डियाँ टूटने लगतीं, प्यास लगती, इन्द्रियाँ भारी मालूम होतीं, आँव पड़ने लगती और मुँह तथा नसों में एक प्रकार का लेप सा मालूम पड़ता है। यह विसर्प प्रायः आमाशय को ग्रहण करता हुआ चारों ओर फैलता और पीड़ा कम होती है। पीली, लाल और पाण्डुर वर्ण की फुन्सियाँ शरीर में निकल

आती हैं। यह विसर्प चमकता हुआ काले वर्ण का, उज्ज्वल, चिकना, मटमैला, शोथयुक्त, भारी, परिपाकयुक्त, गरमाहट लिए हुए और चमकता सा होता है। इस रोगी के मांस सड़ कर कीचड़ की नाईं हो जाते और शरीरकी समस्त नसें फट जाया करती हैं और शवके समान उसमेंसे दुर्गन्धि निकलने लगती है। इसी को लोग कर्दम नामक विसर्प कहते हैं ॥१७–२१॥

क्षतजविसर्प के लक्षण ।

बाह्यहेतोः क्षतात् क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन् ॥ २२ ॥
वीसर्पं मारुतः कुर्यात्कुलत्थसदृशैश्चितम् ।
स्फोटैः शोथज्वररुजादाहाढ्यं श्यावशोणितम् ॥ २३ ॥

यदि किसी बाहरी कारणवश घाव होजाता तो वायु कुपित होकर रक्त समेत पित्त को प्रेरित करता हुआ विसर्प रोग को उत्पन्न करता है। इसमें कुलथी के समान फुन्सियाँ निकलती हैं। इनके निकलने से सूजन होती, ज्वर आने लगता, ज़ोरों के साथ वेदना होने लगती, दाह होती और शरीर का रुधिर काला होजाया करता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

विसर्प के उपद्रव ।

ज्वरातिसारौ वमथुस्त्वङ्मांसदरणं क्लमः ।
अरोचकाविपाकौ च विसर्पाणामुपद्रवाः ॥ २४ ॥

ज्वर आना, पतली दस्त होना, कै होना, त्वचा और मांसका गलना, शरीरका शिथिल होजाना, किसी चीज़ में तबीयत न लगना, खाए हुए अन्न का न पचना, ये ही इन विसर्प रोगों के उपद्रव होते हैं ॥ २४ ॥

साध्यासाध्यत्व ।

सिध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः
सर्वात्मकः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति ।
पित्तात्मकोऽञ्जनवपुश्च भवेदसाध्यः
कृच्छ्राश्च मर्मसु भवन्ति हि सर्व एव ॥ २५ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने विसर्पनिदानं समाप्तम् ।

वात, पित्त और कफ अलग २ इन तीनोंसे जायमान विसर्प रोग साध्य होता है। सन्निपातज एवं क्षतज विसर्प असाध्य माना गया है। जो पित्त के प्रकोप से उत्पन्न हो और सारा शरीर अञ्जन के समान काले वर्ण का हो जाय तो वह भी असाध्य होता है। इसके सिवाय जितने विसर्प किसी मर्मस्थान में होते वे सब भी असाध्य ही होते हैं ॥ २५ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने विसर्पनिदानम् ॥ ५२ ॥

अथ विस्फोटनिदानम् ।

संप्राप्ति ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च ।
तथर्तुदोषेण विपर्ययेण कुप्यन्ति दोषाः पवनादयस्तु ॥ १ ॥
त्वचमाश्रित्य ते रक्तमांसास्थीनि प्रदूष्य च ।
घोरान् कुर्वन्ति विस्फोटान् सर्वान् ज्वरपुरःसरान् ॥२॥

कड़वा, खट्टा, तीखा, दाहकारी, रूखा, खारा पदार्थ खाने, अजीर्ण रहने पर भी भोजन करने और घाम ज्यादा लग जानेके कारण वात-पित्तादि दोष कुपित हो जाते हैं तथा ऋतुके विपर्यय में भी पूर्वोक्त दोष कुपित हुआ करते हैं। वे कुपित दोष पहले त्वचा में जाकर उसे दूषित कर देते और उसके बाद मांस तथा हड्डीको भी दूषित करके भयानक विस्फोटक रोगको उत्पन्न करते हैं। सब प्रकार के उत्पन्न विस्फोटक में पहले ज्वर अवश्य आया करता है। इसीको लोग शीतला भी कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

विस्फोट का स्वरूप ।

अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः ।
क्वचित् सर्वत्र वा देहे विस्फोटा इति ते स्मृताः ॥ ३ ॥

आगसे जल जाने पर निकले हुए फफोले के समान, रक्तपित्तके दूषित होने से छोटे छोटे फफोले सारे शरीर में या कहीं कहीं निकलते हैं। इन्हीं को लोग विस्फोट कहते हैं ॥ ३ ॥

शिरोरुक्शूलभूयिष्ठं ज्वरस्तृट् पर्वभेदनम् ।
सकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ॥ ४ ॥
ज्वरदाहरुजास्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम् ।
पीतलोहितवर्णं च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥
छर्द्यरोचकजाड्यानि कण्डूकाठिन्यपाण्डुताः ।
अवेदनश्चिरात्पाकी स विस्फोटः कफात्मकः ॥ ६ ॥
वातपित्तकृतो यस्तु कुरुते तीव्रवेदनाम् ।
कण्डूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिकम् ॥ ७ ॥

यदि वातके प्रकोपसे विस्फोट निकलता तो सिरमें पीड़ा होती, शूल उठता, ज्वर आता, प्यास लगती, शरीर की जोड़ें फटने सी लगतीं, कुछ श्यामता लिए हुए फफोले निकलतेहैं। ये ही वातज विस्फोटकके लक्षण हैं। पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न विस्फोटमें ज्वर होता, शरीरमें दाह होती, फफोलोंमें से पानी आदि कुछ बहता रहता वे पक भी जाया करते और प्यास लगती है। निकले हुए फफोलों का रंग पीला तथा लाल होता है। ये पित्तज विस्फोट के लक्षण हैं॥ ४॥ ५॥ कै होते रहना, किसी वस्तु में रुचि न होना, अङ्गोंमें जड़ता आजाना, खुजली होते रहना, निकले हुए फफोलों में कड़ापन रहना, उनका पाण्डुरंग रहना, पीड़ाका अभाव होना, बहुत दिनोंमें पकना ये कफके प्रकोपसे जायमान विस्फोटके लक्षण हैं। कफपैत्तिक विस्फोटमें खुजली विशेष उठती, ज्वर आता तथा वमन भी होता रहता है। वातापित्तसे उत्पन्न विस्फोटमें तीव्र वेदना होती है। कफवात से जायमान विस्फोटमें खुजली उठती, शरीर भीगा सा जान पड़ता और देहमें भारीपन रहा करता है॥ ६॥ ७॥

कण्डूर्दाहो ज्वरश्छर्दिरेतैस्तु कफपैत्तिकः ।
मध्ये निम्नोन्नतोऽन्ते च कठिनोऽल्पप्रपाकवान् ॥ ८ ॥
दाहरागतृषामोहश्छर्दिमूर्च्छारुजाज्वराः ।

प्रलापो वेपथुस्तन्द्रा सोऽसाध्यः स्यात्त्रिदोषजः ॥९॥

सान्निपातिक विस्फोट से घावके बीच बीचमें ऊँचा नीचा होजाता कठिनाई आजाती एवं पकता कम है। जलन होती, रंग लाल होजाता, प्यास विशेष लगती, मोह होता, कै हुआ करता, मूर्च्छा आजाया करती, पीड़ा होती और ज्वर भी मौजूद रहता है। रोगी ऊटपटांग बकने लगता, शरीर कांपा करता और आलस्य आती है। इस लिए त्रिदोष से जायमान विस्फोट असाध्य हुआ करता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

रक्तज विस्फोट के लक्षण।

रक्ता रक्तसमुत्थाना गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः।
वेदितव्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना ॥ १० ॥
न ते सिद्धिं समायान्ति सिद्धैर्योगशतैरपि।
एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ॥
सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ ११ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने विस्फोटनिदानं समाप्तम् ॥ ५३ ॥

रक्तज विस्फोटमें जो फोड़े होते उनका रंग लाल और घुँघची के समान आकार होता है। इस विस्फोट का पित्तके कारण दूषित रक्तसे जन्म होता और यदि सिद्ध योगी भी इसकी चिकित्सा करके साध्य करना चाहे तो साध्य नहीं हो सकता ॥ १० ॥ किसी एक दोषके प्रकोप से उत्पन्न विस्फोट साध्य होता, दो दोषोंके कोपसे जायमान कष्टसाध्य एवं त्रिदोष से उत्पन्न विस्फोट बड़ा भयंकर होता इसलिए असाध्यही होता है। और वह विस्फोट भी असाध्य होता है जिसमें एक साथ बहुत से उपद्रव मौजूद रहते हैं ॥ ११ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने विस्फोटनिदानम् ॥ ५३ ॥

अथ मसूरिकानिदानम् ।

संप्राप्ति ।

कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः ।
दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टपवनोदकैः ॥ १ ॥
क्रूरग्रहेक्षणाच्चापि देशे दोषाः समुद्धताः ।
जनयन्ति शरीरेऽस्मिन् दुष्टरक्तेन सङ्गताः ॥ २ ॥
मसूराकृतिसंस्थानाः पिडकाः स्युर्मसूरिकाः ।
तासां पूर्वं ज्वरः कण्डूर्गात्रभङ्गोऽरतिर्भ्रमः ॥ ३ ॥
त्वचि शोथः सवैवर्ण्यो नेत्ररागश्च जायते ।

कडुवा, खट्टा, नमकीन, खारा तथा प्रकृतिविरुद्ध अन्न खाने से अथवा मटर आदि के शाक खालेने से या दूषित जल वायु के सेवन करने से, किसी क्रूरग्रह की दृष्टि पड़ जाने से वात पित्त तथा कफ दुष्ट होकर दूषित रक्त में मिल जाते जिससे शरीर में मसूर के समान फुन्सियाँ निकल आती हैं । इन्हीं को लोग मसूरिका अथवा छोटी शीतला कहते हैं। जब मसूरिका होनेवाली होती तो पहले ज्वर आता, शरीर में खुजली उठती, अंग टूटने लगते, किसी चीज़ में रुचि नहीं रह जाती, चक्कर आने लगता, जहाँ तहाँ की चमड़ी सूज जाया करती, शरीर का रंग बदल जाता और नेत्र लाल हो जाया करते हैं ॥ १-३ ॥

वातज मसूरिकाके लक्षण ।

स्फोटाः श्यावारुणा रूक्षास्तीव्रवेदनयाऽन्विताः ॥४॥
कठिनाश्चिरपाकाश्च भवन्त्यनिलसंभवाः ।
सन्ध्यस्थिपर्वणां भेदः कासः कम्पोऽरतिः क्लमः ॥५॥
शोषस्ताल्वोष्ठजिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुता ।

वात के प्रकोप से उत्पन्न मसूरिका का रंग काला, लाल और रूखा होता है उसमें बड़ी तीव्र वेदना होती है । उनमें कठिनाई रहती एवं बड़ी

देरी में पकती है। इसके होने पर शरीर की जोड़ों और गांठों में फटने के समान वेदना होती, खाँसी आती, शरीर काँपता रहता, तबीयत बेचैन रहती, मनमें ग्लानि होती, तालु, ओष्ठ तथा जीभ सूखने लगती और तृष्णा के साथ २ प्रत्येक वस्तुओं से रुचि हट जाया करती है ॥ ४ ॥ ५ ॥

पित्तज मसूरिका के लक्षण।

रक्ताः पीतासिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रवेदनाः ॥६॥
भवन्त्यचिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः।
विड्भेदश्चाङ्गमर्दश्च दाहस्तृष्णाऽरुचिस्तथा॥ ७ ॥
मुखपाकोऽक्षिरागश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः।

पित्त के प्रकोप से उत्पन्न मसूरिका के दानों का रंग पीला या सफेद होता, तृष्णा, दाह तथा पीड़ा हुआ करती है। इसके फोड़े मुलायम होते इस लिए शीघ्र पक जाया करते हैं। रोगी को पतली दस्त होती, खाया भया अन्न नहीं पचता, प्यास लगती, दाह बनी रहती, सब चीजों से अरुचि होती, मुँह और नेत्र पक जाते एवं बड़ा दारुण ज्वर चढ़ा रहता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

रक्तज मसूरिकाके लक्षण।

रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः पित्तलक्षणाः ॥ ८ ॥
कफप्रसेकः स्तैमित्यं शिरोरुग्गात्रगौरवम्।
हृल्लासः सारुचिर्निद्रा तन्द्रालस्यसमन्वितः ॥ ९ ॥
श्वेताः स्निग्धा भृशं स्थूलाः कण्डुरा मन्दवेदनाः।
मसूरिकाः कफोत्थाश्च चिरपाकाः प्रकीर्तिताः ॥१०॥
नीलाश्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजः।
चिरपाकाः पूतिस्रावाः प्रभूताः सर्वदोषजाः ॥ ११ ॥

रक्त से जायमान मसूरिका में पित्तज मसूरिका के समस्त लक्षण दिखाई देते हैं। कफ के प्रकोप से उत्पन्न मसूरिका में कफ अधिक गिरता, देह में चटचटी सी मालूम होती, सिर में पीड़ा बनी रहती, शरीर भारी

रहता, जी मिचलाया करता, किसी वस्तु में रुचि नहीं रह जाती, निद्रा, तन्द्रा तथा आलस्य घेरे रहते हैं । इसके दाने सफेद, चिकने, खूब बड़े बड़े, खुजलाहट के साथ साथ साधारण वेदनासम्पन्न होते हैं । ये ज्यादा दिनों में पकते हैं ॥ ८-१० ॥ सन्निपात से उत्पन्न मसूरिका के दाने नीले रंग के, चिपटे, लम्बे चौड़े, बीच में कुछ गहरे, बड़ी पीड़ा करनेवाले, ज्यादा दिनों में पकने वाले और दुर्गन्धियुक्त पीब गिरानेवाले होते हैं ॥११॥

चर्मपिडका के लक्षण ।

कण्ठरोधारुचिस्तम्भप्रलापारतिसंयुताः ।
दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिडकाश्चर्मसंज्ञिताः ॥ १२ ॥

चर्म पिडकाओं के निकलने पर गला रुँध जाता, सब वस्तुओं से रुचि हट जाती, तन्द्रा आती, रोगी अनाप सनाप बकने लगता और कहीं भी तबीयत नहीं लगती, इसकी चिकित्सा भी बड़ी कठिनाई से होती है । इसे लोग चर्मपिडका कहा करते हैं ॥ १२ ॥

रोमान्तिकाके लक्षण ।

रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्तजाः ।
कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्यो ज्वरपूर्विकाः ॥ १३ ॥

कफ और पित्त के प्रकोप से रोमकूप की ऊँचाई के समान लाल रंग की छोटी छोटी फुन्सियाँ निकल आती हैं । ऐसी अवस्था में प्राणी को खाँसी आने लगती और अरुचि होती है । इसे लोग रोमान्तिका कहते हैं, यह जब होनेवाली होती तो पहले ज्वर आ जाया करता है ॥ १३ ॥

रसादिसप्तधातुगत मसूरिका के लक्षण ।

तोयबुद्बुदसंकाशास्त्वग्गतास्तु मसूरिकाः ।
स्वल्पदोषाः प्रजायन्ते भिन्नास्तोयं स्रवन्ति च ॥१४॥
रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः ।
साध्या नात्यर्थदुष्टाश्च भिन्ना रक्तं स्रवन्ति च ॥१५॥

मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाका घनत्वचः ।
गात्रशूलतृषाकण्डूज्वरारतिसमन्विताः ॥ १६ ॥
मेदोजा मण्डलाकारा मृदवः किंचिदुन्नताः ।
घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः स्निग्धाः सवेदनाः ॥ १७ ।
संमोहारतिसंतापाः कश्चिदाभ्यो विनिस्तरेत् ।
क्षुद्रा गात्रसमा रूक्षाश्चिपिटाः किंचिदुन्नताः ॥१८॥
मज्जोत्था भृशसंमोहवेदनारतिसंयुताः ।

जब कि मसूरिका बढ़ते बढ़ते चर्म तक पहुँचती तो उसका आकार पानी के बुलबुले के समान हो जाता, इसमें बहुत थोड़े से दोष रहते हैं और ये जिस समय फूटती हैं तो इनमें से पानी बहता है ॥ १४ ॥

जब कि मसूरिका रक्तस्थान तक पहुँच जाती तो उसका रंग लाल हो जाता, ये जल्दी पक जाती और इसका चमड़ा बहुत पतला होता है । अधिक दुष्ट न होने के कारण यह साध्य भी हो जाती और फूटने पर इसमें से रुधिरस्राव होने लगता है ॥ १५ ॥

जब मसूरिका मांस तक पहुँच जाती तो बहुत कड़ी, चिकनी, ज्यादा दिनों में पकनेवाली और महीन चमड़े की होती है । इसके होने पर शरीर में शूल सा चुभने लगता, किसी प्रकार तबीयत शान्त नहीं होती, खुजली विशेष उठती, कभी कभी बेहोशी आजाती, दाह होती और प्यास ज्यादा लगती है ॥ १६ ॥

यदि मसूरिका मेद तक पहुँच जाती तो उसके दाने गोल, मुलायम, कुछ ऊँचे, भयङ्कर ज्वर समेत, बड़े बड़े, चिकने और पीड़ायुक्त होते हैं । इसके होने पर प्राणी मोहित हो जाता, कहीं चैन नहीं मिलती, हृदय में सन्ताप होता और कभी कभी कोई प्राणी इस से बचता है नहीं तो अधिकांश लोग मर ही जाया करते हैं ॥ १७ ॥

जब कि मसूरिका मज्जा तक पहुँच जाती तो बहुत छोटी छोटी फुंसियाँ निकलतीं, शरीरके वर्ण से मिली जुली, रूखी, चिपटी, कुछ ऊँचाई लिए, अतिशय मोह तथा वेदनायुक्त होती और इसके होने पर

बेचैनी बढ़ जाती है ॥ १८ ॥

छिन्दन्ति मर्मधामानि प्राणानाशु हरन्ति हि ॥१९॥
भ्रमरेणेव विद्धानि कुर्वन्त्यस्थीनि सर्वतः ।
पक्काभाः पिडकाः स्निग्धाः सूक्ष्माश्चात्यर्थवेदनाः॥२०॥
स्तैमित्यारतिसंमोहदाहोन्मादसमन्विताः ।
शुक्रजायां मसूर्यां तु लक्षणानि भवन्ति हि ॥ २१ ॥
निर्दिष्टं केवलं चिह्नं दृश्यते न तु जीवितम् ।
दोषमिश्रास्तु सप्तैता द्रष्टव्या दोषलक्षणैः ॥ २२ ॥
त्वग्गता रक्तजाश्चैव पित्तजाः श्लेष्मजास्तथा ।
श्लेष्मपित्तकृताश्चैव सुखसाध्या मसूरिकाः ॥ २३ ॥

ये धीरे धीरे मर्मस्थानों को काट डालतीं तथा शीघ्रातिशीघ्र प्राणी के प्राणों को हर लिया करती है। इनके होने पर मनुष्य की हड्डियाँ भौंरों से काटी हुई लकड़ी के समान खोंखली होजाती हैं। जब यह मसूरिका वीर्य तक पहुँच जाती तो जो फुन्सियाँ निकलतीं वह पकी सी, चिकनी और अत्यन्त वेदनायुक्त होती हैं । इनके होने पर देह शिथिल होजाती, चित्त बेचैन रहता, मोह और दाह होती रहती एवं उन्माद भी हो जाया करता है । ये शुक्रज मसूरिका के लक्षण कहे लेकिन ऐसा कहीं नहीं देखा गया है कि मसूरिकारोग-ग्रस्त रोगी अच्छा हो गया हो। ऊपर कही सातों प्रकार की मसूरिकाएँ समस्त दोषों से युक्त रहतीं इस लिए जिस दोष के जो लक्षण कहे गए हैं उन्हीं के अनुसार जानना चाहिए। त्वग्गत, रक्तज, पित्तज, श्लेष्मज और श्लेष्मपित्तकृत मसूरिकाएँ सुखसाध्य होती हैं। मतलब यह कि यदि इनकी शान्ति का कोई उपाय नहीं भी किया जाय तो शान्त होजाया करती हैं ॥ १९–२३ ॥

वातजमसूरिका के लक्षण ।

वातजा वातपित्तोत्थाः श्लेष्मवातकृताश्च याः ।
कृच्छ्रसाध्यतमास्तस्माद्यत्नादेता उपाचरेत् ॥ २४ ॥

असाध्याः सन्निपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम्
प्रवालसदृशाः काश्चित् काश्चिज्जम्बूफलोपमाः ॥ २५
लोहजालसमाः काश्चिदतसीफलसंनिभाः ।
आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः ॥ २६ ॥

वात के प्रकोप से जायमान, वात पित्त से उत्पन्न तथा श्लेष्मा औ वात के प्रकोप से जो मसूरिकाएँ होतीं वे कृच्छ्रसाध्य होती हैं। इस लि उनका यत्न से उपचार करना चाहिए ॥ २४ ॥ जो सन्निपात से होतीं वे असाध्य मानी गई हैं उनका लक्षण बतलाऊंगा। सन्निपातज मसूरिकाओं में से कोई कोई मूँग के समान होतीं, कोई जामुन के समान होतीं, कोई लोह के जाल की तरह होतीं और कोई अलसी के फल समान होती हैं। दोषभेद से इनके कितने ही रंग भी हुआ करते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

सब प्रकारकी मसूरिकाओं के लक्षण।

कासो हिक्का प्रमेहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ।
प्रलापश्चारतिर्मूर्च्छा तृष्णा दाहोऽतिघूर्णता ॥ २७ ॥
मुखेन प्रस्रवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा ।
कण्ठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थवेदनम् ॥ २८ ॥

खाँसी, हिचकी, प्रमेह, तीव्रज्वर, प्रलाप, बेचैनी, दाह, प्यास, मूर्च्छा और चक्कर, इन उपद्रवों का रहना, मुँह और नाक तथा आँख से दर्द के साथ रुधिर गिरना, श्वास लेते समय गले का घुरघुराना ये सन्निपातज मसूरिका के उपद्रव हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

असाध्यत्व।

मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निःश्वसेत् ।
स भृशं त्यजति प्राणान् तृषार्तो वायुदूषितः ॥ २९ ॥

जो रोगी मसूरिकारोग-ग्रस्त होकर केवल नाक से साँस लिया करता है वह वायु के दूषित होजाने के कारण प्यास से दुखी होकर अपने प्राणों को त्याग देता है ॥ २९ ॥

उपद्रव ।

मसूरिकान्ते शोथः स्यात् कूर्परे मणिबन्धके ।
तथांऽसफलके चापि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः ॥ ३० ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने मसूरिकानिदानं समाप्तम् ॥ ५४ ॥

मसूरिकासम्बन्धी उपद्रवों के शान्त होने पर भी अन्त में रोगी की जाँघ, कलाई तथा कन्धे में अतिशय दारुण एक प्रकार की सूजन होती है । उसकी चिकित्सा बड़ी कठिनाई से हो पाती है ॥ ३८ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासमन्विते माधवनिदाने मसूरिकानिदानं समाप्तम् ॥५४॥

अथ क्षुद्ररोगनिदानम् ।

अजगल्लिका के लक्षण ।

स्निग्धाः सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसंनिभाः ।
कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिकाः ॥ १ ॥

बच्चों के शरीर में चिकनी, शरीर के रंग से मिलती जुलती, ग्रन्थी के समान, पीड़ाविहीन, मूँग के बराबर, कफ वात के प्रकोप से फुन्सियाँ निकलती हैं, उनको लोग अजगल्लिका कहते हैं ॥ १ ॥

यवप्रख्या के लक्षण ।

यवाकारा सुकठिना ग्रथिता मांससंश्रिता ।
पिडका कफवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते ॥ २ ॥

जौ के समान कड़ी, गँठीली, मांस के आश्रित कफ और वात के प्रकोप से जो फुन्सियाँ निकलतीं वे यवप्रख्या कहलाती हैं ॥ २ ॥

अन्धालजी के लक्षण ।

घनामवक्त्रां पिडकामुन्नतां परिमण्डलाम् ।
अन्त्रालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ ३ ॥

कफ और वात के प्रकोप से जो घनी, विना मुँहवाली, ऊंची तथा मण्डल बाँधे हुए निकलती हैं उनकी अन्धालजी संज्ञा है। इसी को कोई २

अँधौरी कहते हैं। इसमें बहुत कम पीब निकलता है॥ ३॥

विवृता के लक्षण।

विवृतास्यां महादाहां पक्वोदुम्बरसंनिभाम्।
विवृतामिति तां विद्यात्पित्तोत्थां परिमण्डलाम्॥४॥

पकी भई गूलर के समान बड़ी २, मुँहखुली, अतिदाहवाली, गोलाकार जो पिरकियाँ होती उनकी विवृता संज्ञा है। पित्त के प्रकोप से इसकी उत्पत्ति होती है॥ ४॥

कच्छपिका के लक्षण।

ग्रथिताः पञ्च वा षड्वा दारुणाः कच्छपोपमाः।
कफानिलाभ्यां पिडका ज्ञेयाः कच्छपिका बुधैः॥५॥

कफ-वात के प्रकोप से कछुए के समान ऊँची २ यदि पाँच या छ पिराकियाँ होतीं तो उसे विद्वान् गण कच्छपिका कहते हैं॥ ५॥

वल्मीक के लक्षण।

ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशे सन्धौ गले वा त्रिभिरेव दोषैः।
ग्रन्थिः सवल्मीकवदक्रियाणां जातः क्रमेणैव गतः प्रवृद्धिम्॥६॥
मुखैरनेकैः स्रुतितोदवद्भिर्विसर्पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः।
वल्मीकमाहुर्भिषजो विकारं निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशेषात्॥७॥

ग्रीवा, कन्धा, काँख, हाथ, पैर, शरीर की जोड़ तथा गले में तीनों दोषों के प्रकोप से बिमौटे के आकार की ग्रन्थियाँ निकल आती हैं यदि उनकी शान्ति का कोई उपाय न किया जाय तो वे धीरे धीरे बढ़ती जाती हैं। कुछ समय बाद उनमें कई मुँह होजाते, उनसे बराबर मवाद बहता रहता, किसी चीज़ से कोंचने के समान व्यथा होती और फिर वे ऊँची होकर विसर्प रोग के समान फैलने लगती हैं। इसे वैद्य लोग वल्मीक रोग कहते हैं। यदि शीघ्र इस की शान्ति का कोई उपाय नहीं किया जाता तो प्राचीन होने पर फिर यह किसी भी उपाय से नहीं दबायी जा सकती॥ ६॥ ७॥

इन्द्रविद्धा के लक्षण ।

पद्मकर्णिकवन्मध्ये पिडकाभिः समाचिताम् ।
इन्द्रविद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥ ८ ॥

जो वात तथा पित्तके प्रकोप से कमल के पत्तोंकी तरह शोथ होता और बीचमें अथवा किनारे किनारे फुन्सियाँ निकल आती हैं तो उसे लोग इन्द्रविद्धा रोग कहते हैं ॥ ८ ॥

गर्दभिका के लक्षण ।

मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सरक्तं पिडकाचितम् ।
रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥ ९ ॥

जो वात–पित्तके कुपित होने पर मण्डल बाँधकर गोलाकार, ऊँचा और लाल रंग का चकत्ता पड़ता अथवा उसके आस पास छोटी छोटी पिरकियां निकलतीं और पीड़ा देती हों तो लोग उन्हें गर्दभिका नामक रोग समझें॥९॥

पाषाणगर्दभ के लक्षण ।

वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसन्धिजः ।
स्थिरो मन्दरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः ॥१०॥

वात और कफ के प्रकोप से दोनों हाथके पुट्ठोंकी सन्धिमें जो शोथ उत्पन्न होता वह स्थिर रहे, उसमें मामूली पीड़ा हो और चिकनापन बना रहता हो तो उसे पाषाणगर्दभ रोग समझना चाहिए ॥ १० ॥

पनसिका के लक्षण ।

कर्णस्याभ्यन्तरे जातां पिडकामुग्रवेदनाम् ।
स्थिरां पनसिकां तां तु विद्याद्वातकफोत्थिताम् ॥११॥

वात और कफके प्रकोपसे कानोंके भीतर जो पिरकियां निकलतीं उनमें बड़ी वेदना होतीं उन्हें लोग पनसिका रोग कहते हैं ॥ ११ ॥

जालगर्दभ के लक्षण ।

विसर्पवत्सर्पति यः शोथस्तनुरपाकवान् ।
दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥ १२ ॥

पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न होकर जो पतला चकत्ता विसर्प रोगके समान समस्त शरीर में फैलता है उसमें साधारण शोथ रहता और दाहके साथ ज्वर आने लगता है। उसे जालगर्दभ रोग समझना चाहिए॥ १२ ॥

इरिवेल्लिका के लक्षण।

पिडकामुत्तमाङ्गस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम्।
सर्वात्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवेल्लिकाम्॥ १३॥
बाहुपार्श्वांसकक्षेषु कृष्णस्फोटां सवेदनाम्।
पित्तप्रकोपसंभूतां कक्षामित्यभिनिर्दिशेत्॥ १४॥

वात-पित्त-कफ इन तीनों दोषोंके प्रकोपसे गोलाकार, दारुण पीड़ा तथा ज्वरसंयुक्त जो पिरकी मस्तक में निकलती उसे लोग इरिवेल्लिका रोग कहते हैं॥१३॥ दोनों बाहु, पसलियों और काँखों में पित्तके प्रकोप से काले रंगकी जो पिरकी निकलती है उसे लोग कक्षा (कखौरी) कहते हैं। इसमें बड़ी विकट पीड़ा होती है॥ १४॥

गन्धमाला के लक्षण।

एकामेतादृशीं दृष्ट्वा पिडकां स्फोटसंनिभाम्।
त्वग्गतां पित्तकोपेन गन्धमालां प्रचक्षते॥ १५॥

ऊपर कही हुई कक्षाके ही समान यदि किसी अन्य स्थानमें पिरकी निकले और त्वचा के ही आश्रयीभूत रहे तो लोग उसे गन्धमाला पिडका कहते हैं॥ १५॥

अग्निरोहिणी के लक्षण।

कक्षभागेषु ये स्फोटा जायन्ते मांसदारणाः।
अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसंनिभाः॥ १६॥
सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा हन्ति मानवम्।
तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सर्वदोषजाम्॥ १७॥

कांख के आस पास सन्निपात के प्रकोप से मांस को विदीर्ण करनेवाले जो फोड़े निकलते उनके भीतर अतिशय दाह होती एवं बाहर हमेशा

ज्वर बना रहता है और जलती आगके समान उसमें उष्णता रहती है। वह सात रोज़में, बारह दिनमें या एक पक्षमें प्राणीको मार डालता है। उसकी अग्निरोहिणी संज्ञा है। सन्निपातसे उसकी उत्पत्ति होती और वह असाध्य पिडका मानी गयी है ॥ १६ ॥ १७ ॥

चिप्प के लक्षण ।

नखमांसमधिष्ठाय वायुः पित्तं च देहिनाम् ।
कुर्वाते दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्पमादिशेत्॥१८॥
तदेवाल्पतरैर्दोषैः परुषं कुनखं वदेत् ॥ १९ ॥

पित्त और वायु प्राणियों के नखमें रुककर दाह तथा पाकको उत्पन्न कर देते हैं। इस व्याधिको लोग चिप्प रोग कहते हैं। जिसमें बहुत ही साधारण रूपसे दोष मौजूद हों उसे लोग कुनख नामक रोग कहते हैं॥१८॥१९॥

अनुशयी के लक्षण ।

गम्भीरामल्पसंरम्भां सवर्णामुपरिस्थिताम् ।
पादस्यानुशयीं तां तु विद्यादन्तःप्रपाकिनीम् ॥२०॥

पैरके ऊपर उसीके वर्णसे मिलते जुलते रंग की गहरी पिरकी निकल आती है और भीतर ही भीतर पक भी जाती है लोग उसको अनुशयी नामक रोग कहते हैं ॥ २० ॥

विदारिका के लक्षण ।

विदारीकन्दवद्वृत्ता कक्षावङ्क्षणसन्धिषु ।
विदारिका भवेद्रक्ता सर्वजा सर्वलक्षणा ॥ २१ ॥

विदारीकन्दके समान गोलाकार फोड़ा यदि कांख, जांघके पट्ठों अथवा शरीर की किसी जोड़में निकल आवे और लाल रंग का हो तथा वातादि तीनों दोषों के लक्षण दीखते रहें तो लोग उसे विदारिका रोग कहते हैं ॥ २१ ॥

शर्करा के लक्षण ।

प्राप्य मांससिरास्नायूः श्लेष्मा मेदस्तथाऽनिलः ।

ग्रन्थि करोत्यसौ भिन्नो मधुसर्पिर्वसानिभम् ॥ २२

स्रवत्यास्रावमनिलस्तत्र वृद्धिं गतः पुनः ।
मांसं संशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयेत्ततः ॥ २३ ॥

मेदा, कफ और वात, मांस, सिरा तथा स्नायुमें प्रविष्ट होकर एक प्रका की गाँठ उत्पन्न कर देते हैं और जब वह फूटता है तो उसमें से मधु, तथा चर्बी के समान पीब बहता है । इससे वायु और बढ़जाता एवं मां को सुखा कर महीन महीन रेतको गिराने लगता है । इसी की शर्कर संज्ञा है ॥ २२ ॥ २३ ॥

शर्करार्बुद के लक्षण ।

दुर्गन्धिक्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः सिराः ।
स्रवन्ति रक्तं सहसा तं विद्याच्छर्करार्बुदम् ॥ २४ ॥

इसके अनन्तर यानी शर्करा होने के पश्चात् सिरामें से बहुत ही दुर्गन्धित, क्लिन्न, अनेक प्रकारके रंग से युक्त रक्त निकलता है । इसे लोग शर्करार्बुद रोग कहते हैं ॥ २४ ॥

पाददारी के लक्षण ।

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः ।
पादयोः कुरुते दारीं पाददारीं तमादिशेत् ॥ २५ ॥

ज्यादा चलनेवाले अथवा जिनके पैर बहुत रूखे होते हैं उनके तलवों में फटी हुई दारी (बेवाई) उत्पन्न हो जाती है । इसीकी पाददारी संज्ञा होती है ॥ २५ ॥

कदर के लक्षण ।

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः ।
ग्रन्थिः कीलवदुत्सन्नो जायते कदरं हि तत् ॥ २६ ॥

किसी प्रकार कंकड़ पत्थर की सिटकी आदि गड़जाने के कारण अथवा और कोई घाव होजाने से पैर में बेरके फल समान ऊंची गांठ पड़ जाती है । इसे लोग कदर (गोखरू) रोग कहते है ॥ २६ ॥

अलसक के लक्षण ।

क्लिन्नाङ्गुल्यन्तरौ पादौ कण्डूदाहरुजान्वितौ ।
दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विभावयेत् ॥ २७ ॥

पाँव की अंगुलियों के गावों में खराब पानी या कीचड़ लगजाने के कारण वह स्थान सड़ जाता और उसमें खुजली, दाह तथा पीड़ा होने लगती है । इसे लोग अलसक रोग कहते हैं ॥ २७ ॥

इन्द्रलुप्त के लक्षण ।

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम् ।
प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ॥२८॥
रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसंभवः ।
तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुह्येति च विभाव्यते ॥ २९ ॥

यदि कफ वायुसे मिलकर कुपित हो जाता तो वह रोमकूपों में जाकर रोंगटों को गिरा देता है इसके बाद रक्त के साथ रोमकूपों को रूँध लेता इस लिए फिर लोम का उगना असम्भव हो जाता है । इसे कोई इन्द्रलुप्त, कोई खालित्य तथा कुछ लोग चाईंचुंई रोग कहते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

दारुण के लक्षण ।

दारुणा कण्डुरा रूक्षा केशभूमिः प्रपाट्यते ।
कफमारुतकोपेन विद्याद्दारुणकं तु तम् ॥ ३० ॥

यदि वायु तथा कफ कुपित होकर बालों की जड़ में रुक जाते तो वह स्थान अतिशय खुजली एवं रूखापन के साथ पक जाता है । इस रोग की दारुणसंज्ञा है ॥ ३० ॥

अरूंषिका के लक्षण ।

अरूंषि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदीनि मूर्ध्नि तु ।
कफासृक्क्रिमिकोपेन नृणां विद्यादरूंषिकाम् ॥ ३१ ॥

कफ, रक्त तथा कृमियों के कुपित होनेपर प्राणी के सिर में अनेक

मुखवाली चुनचुनाहटयुक्त रूसी जम जाती है इसे लोग अरुंषि कहते हैं ॥ ३१ ॥

पलित के लक्षण ।

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः ।
पित्तं च केशान् पचति पलितं तेन जायते ॥ ३२ ॥

अधिक क्रोध, शोक तथा परिश्रम करने के कारण शरीर की गरमी माथे में चली जाती और पित्त भी मस्तक में आकर केशों को पका दिया करता है । इस को लोग पलित रोग कहते हैं ॥ ३२ ॥

युवानपिडका के लक्षण ।

शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतरक्तजाः ।
युवानपिडका यूनां विज्ञेया मुखदूषिकाः ॥ ३३ ॥

कफ, वायु तथा रक्त के प्रकोप से सेमर के काँटे की तरह युवा पुरुषों के मुँह में छोटी छोटी फुंसियाँ निकल आती हैं । इनको लोग मुख-दूषिका कहते हैं ॥ ३३ ॥

पद्मिनीकण्टक के लक्षण ।

कण्टकैराचितं वृत्तं मण्डलं पाण्डुकण्डुरम् ।
पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥ ३४ ॥

कफ और वात के कुपित होनेपर कमल के काँटों की तरह फुंसियाँ निकलतीं और पाण्डुरवर्ण का एक मण्डल सा बँध जाया करता है । इसकी पद्मिनीकण्टक संज्ञा है ॥ ३४ ॥

जतुमणी के लक्षण ।

सममुत्सन्नमरुजं मण्डलं कफरक्तजम् ।
सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जतुमणिस्तु सः ॥३५ ॥

कफ और रक्त के दूषित होनेपर सम, कुछ ऊँचा और बिना पीड़ा-वाला मण्डल मनुष्य के स्वभावतः उत्पन्न हो जाता है । इसे कोई लक्षण और कोई कोई जन्तुमणि कहते हैं ॥ ३५ ॥

मषकलिङ्गके लक्षण ।

अवेदनं स्थिरं चैव यस्मिन् गात्रे प्रदृश्यते ।
माषवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्मषकं तु तत् ॥ ३६ ॥

वात के दूषित होनेपर किसी अंगमें वेदनारहित और स्थिर, उड़द के आकार का मसा निकल आता है। यह ऊँचा और काले रंग का होता है इसीको मषक कहते हैं ॥ ३६ ॥

तिलकालक के लक्षण ।

कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च ।
वातपित्तकफोच्छोषात्तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ ३७ ॥

वात, पित्त और कफ इन तीनों के प्रकोप से तिल के ही बराबर नीले रंग का तिल निकल आता है। उसमें न तो किसी प्रकार की वेदना होती न ऊँचा और नीचापन रहा करता है लोग इसे तिलकालक रोग कहते हैं ॥ ३७ ॥

न्यच्छ के लक्षण ।

महद्वा यदि वा चाल्पं श्यावं वा यदि वाऽसितम् ।
नीरुजं मण्डलं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते ॥ ३८ ॥

शरीर के किसी अंग में बड़ा या छोटा, काला या सफेद मण्डल निकल आता है। इसमें भी वेदना नहीं होती, लोग इसे न्यच्छ रोग कहते हैं ॥ ३८ ॥

व्यङ्ग के लक्षण ।

क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः ।
मुखमागत्य सहसा मण्डलं विसृजत्यतः ॥ ३९ ॥
नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यङ्गं तमादिशेत् ।

अतिशय क्रोध या परिश्रम करने से पित्त के साथ साथ वायु कुपित हो जाता इस कारण सहसा मुखपर काला चकत्ता सा पड़ जाता है। यह भी पीडारहित और पतला होता है इसे लोग व्यङ्ग (झाई) कहते हैं॥३९॥

नीलिका के लक्षण ।

कृष्णमेवं गुणं गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः ॥ ४० ॥

इसी प्रकार के गुणसम्पन्न चकत्ते यदि मुखके अतिरिक्त किसी दूसरे अंग पर पड़ें तो लोग उसे नीलिका कहते हैं ॥ ४० ॥

परिवर्तिका के लक्षण ।

मर्दनात् पीडनाद्वाऽपि तथैवाप्यभिघाततः ।
मेढ्रचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरन् ॥ ४१ ॥
तदा वातोपसृष्टत्वात्तच्चर्म परिवर्तते ।
मणेरधस्तात् कोशश्च ग्रन्थिरूपेण लम्बते ॥ ४२ ॥
सरुजां वायुसंभूतां तां विद्यात् परिवर्तिकाम् ।
सकण्डूः कठिना चापि सैव श्लेष्मसमुत्थिता ॥ ४३ ॥

लिंग को मल देने या दबाने के कारण वायु कुपित होकर चारों ओर घूमता हुआ लिंग के चमड़े में पहुँच जाता है । ऐसी अवस्था में लिङ्ग का चमड़ा कुछ घूम जाता है अतएव सुपारी के नीचे एक गाँठ सी पड़ कर लटकने लगती है । इसमें वेदना होती है । यह वात के प्रकोप से उत्पन्न होती और परिवर्त्तिका इसका नाम है । जो खुजलाहट लिए हुए कठिनतापूर्ण परि-वर्तिका हो उसे कफ के प्रकोप से उत्पन्न जानना चाहिए ॥ ४१—४३ ॥

अवपाटिका के लक्षण ।

अल्पीयसीं यदा हर्षाद्बलाद्गच्छेत् स्त्रियं नरः ।
हस्ताभिघातादपि वा चर्मण्युद्वर्तिते बलात् ॥ ४४ ॥
यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥

यदि कोई पुरुष अल्प अवस्थावाली स्त्री के साथ जबर्दस्ती मैथुन करना चाहता तो इधर उधर की खींचा-खींची में हाथ से चोट लगने या एकाएक ज़ोर के साथ चमड़ा उघड़ने के कारण, लिङ्ग को पकड़ कर मसलने या रगड़ने से अथवा शुक्र के वेग को रोक लेने से लिङ्ग का ऊपर वाला चमड़ा फट जाता तो उसे लोग अवपाटिका रोग कहते हैं ॥ ४४ ॥

निरुद्धप्रकश के लक्षण ।

वातोपसृष्टे मेढ्रे वै चर्म संश्रयते मणिम् ॥ ४५ ॥
मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च ।
निरुद्धप्रकशे तस्मिन् मन्दधारमवेदनम् ॥ ४६ ॥
मूत्रं प्रवर्तते जन्तोर्मणिर्विव्रियते न च ।
निरुद्धप्रकशं विद्यात् सरुजं वातसंभवम् ॥ ४७ ॥

वायु के प्रकुपित होने से यदि लिङ्ग के ऊपर का चमड़ा खुल आता तो लिङ्ग का अग्रभाग बन्द होजाता जिससे मूत्र का मार्ग भी रुक जाता है । इस तरह मूत्रमार्ग के निरुद्ध होनेपर मूत्र की धार पतली हो जाती लेकिन इससे वेदना नहीं होती । धीरे २ मूत्र निकलता है और यदि मणि का मुँह खोलना चाहे तो नहीं खुलता । कुछ काल बाद इसमें पीड़ा भी होने लगती है । इसे लोग निरुद्धप्रकश रोग कहते हैं और वात से इसकी उत्पत्ति होती है ॥ ४५–४७ ॥

सन्निरुद्धगुद के लक्षण ।

वेगसंधारणाद्वायुर्विहतो गुदसंश्रितः ।
निरुणद्धि महास्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ ४८ ॥
मार्गस्य सौक्ष्म्यात् कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति ।
सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेतं विद्यात् सुदारुणम् ॥ ४९ ॥

गुदा में रहनेवाली वायु मल का निरोध करने से कुपित हो जाती और गुदा के भीतरवाले बड़े छेद को समेट कर पतला छेद बना देती है मार्ग सिकुड़ जाने के कारण बड़ी कठिनाई से मल उतरता है । इस महा दारुण व्याधि को लोग सन्निरुद्धगुद नामक रोग कहते हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

अहिपूतन के लक्षण ।

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् ।
स्विन्ने वाऽस्नाप्यमाने वा कण्डू रक्तकफोद्भवा ॥५०॥

कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते ।
एकीभूतं व्रणैर्घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ५१ ॥

मल मूत्र करने के अनन्तर यदि बच्चे का चूतड़ नहीं धोया जाता और बच्चा घाम में घूमता या ठंढे जल से नहा लेता तो उसका रक्त और कफ कुपित हो जाता इस कारण गुदा में खुजली होने लगती है, खुजलाते खुजलाते वह एक बड़े फोड़े का रूप धारण कर शीघ्र पक फूट जाता और बहने लगता है। कुछ दिनों बाद उसमें भयङ्कर घाव हो जाता जिसे लोग अहिपूतन नामक रोग कहते हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

वृषणकच्छुके लक्षण ।

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंस्थितः ।
यदा प्रक्लिद्यते स्वेदात् कण्डूं जनयते तदा ॥५२॥
कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते ।
प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥ ५३ ॥

स्नान करते समय जो मनुष्य अण्डकोष को अच्छी तरह धोकर साफ़ नहीं कर डालता उसके अण्डकोषों में तमाम मैल इकट्ठी हो जाती है। गरमी में जब पसीना होता तो उसमें खुजली होने लगती है। खुजलाने से वहाँ फोड़ा हो जाता और शीघ्र ही फूटकर बहने लगता है। इसे लोग वृषणकच्छु रोग कहते हैं तथा कफ और रक्त के दूषित होने पर इसकी उत्पत्ति होती है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

गुदभ्रंश के लक्षण ।

प्रवाहणातीसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः ।
रूक्षदुर्बलदेहस्य गुदभ्रंशं तमादिशेत् ॥ ५४ ॥

प्रवाहिका और अतीसार के कारण रूखे तथा दुर्बल शरीरवाले मनुष्य की गुदा बाहर निकल आती है। इसे लोग गुदभ्रंश या काँच निकलना कहते हैं ॥ ५४ ॥

वराहदंष्ट्र के लक्षण ।

सदाहो रक्तपर्यन्तस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः ।

कण्डूमान् ज्वरकारी च स स्याच्छूकरदंष्ट्रकः ॥ ५५ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने क्षुद्ररोगनिदानं समाप्तम् ॥ ५५ ॥

जिसमें जलन के साथ साथ तीव्र वेदना हो और उसके आस पास की जगहें लाल हो जायँ, चमड़ी पक जाय, खुजलाहट मौजूद रहे एवं ज्वर भी आता रहे तो उसे लोग शूकरदंष्ट्र नामक रोग कहते हैं ॥ ५५ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने क्षुद्ररोगनिदानम् ॥ ५५ ॥

अथ मुखरोगनिदानम् ।

निदान ।

आनूपपिशितक्षीरदधिमत्स्यादिसेवनात् ।

मुखमध्ये गदान् कुर्युः क्रुद्धा दोषाः कफोत्तराः ॥ १ ॥

जलचारी अथवा जल के समीप रहनेवाले पक्षी आदिकों का मांस दूध, दही, उड़द आदि के सेवन करने से कफप्रधान दोष दूषित होकर मुख में अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न कर दिया करते हैं* ॥ १ ॥

वातज मुखरोगके लक्षण ।

कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ संप्राप्तानिलवेदनौ ।

दाल्येते परिपाट्येते ओष्ठौ मारुतकोपतः ॥ २ ॥

वात के प्रकोप से दोनों होंठ रूखे, कड़े, तने हुए, काले वर्ण के,

---

* दन्तेष्वष्टावोष्ठयोश्च मूलेषु दशपञ्च च ।
नव तालुनि जिह्वायां पञ्च सप्तदशामयाः ॥
कण्ठे त्रयः सर्वसरा एकयष्टिश्चतुः पराः ।

दाँतों में आठ प्रकार के, होठों में भी आठ ही प्रकार के, दाँत की जड़ों में पन्द्रह प्रकार के, तालु में नौ प्रकार के, जीभ में पाँच प्रकार के, कण्ठमें १७ प्रकार के, सर्वसर तीन प्रकार के, कुल मिल कर पैंसठ प्रकार के मुखरोग होते हैं ॥

इति भोजसंहितायाम् ।

तीव्र पीड़ायुक्त हो जाते इसी कारण उनमें दर्द होने लगती और कुछ समय बाद फट जाया करते हैं ॥ २ ॥

पित्तज मुखरोगके लक्षण ।

चीयेते पिडकाभिश्च सरुजाभिः समन्ततः ।
सदाहपाकपिडकौ पीताभासौ च पित्ततः ॥ ३ ॥

यदि पित्त कुपित होता तो होंठ के चारों ओर पीड़ायुक्त फुन्सियाँ निकल आतीं, उनमें दाह होने लगती और उनका रंग पीला हो जाता है॥३॥

कफज ओष्ठरोग के लक्षण ।

सवर्णाभिश्च चीयेते पिडकाभिरवेदनौ ।
भवतस्तु कफादोष्ठौ पिच्छिलौ शीतलौ गुरू ॥ ४ ॥

यदि कफ कुपित होता तो होठों पर होंठ ही के रंग के फोड़े निकल आते, उनमें किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती और दोनों होंठ पिच्छिल, शीतल तथा भारी हो जाते हैं ॥ ४ ॥

सान्निपातिक ओष्ठरोग के लक्षण ।

सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च ।
सन्निपातेन विज्ञेयावनेके पिडकाचितौ ॥ ५ ॥

यदि होठों में बहुत सी फुन्सियाँ निकल आएँ वे कभी काली, कभी पीली और कभी सफ़ेद हो जायँ तो उन्हें सन्निपातपिडिका समझना चाहिए ॥ ५ ॥

रक्तज ओष्ठरोग के लक्षण ।

खर्जूरफलवर्णाभिः पिडकाभिर्निपीडितौ ।
रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ ॥ ६ ॥

खून बिगड़ जाने से यदि खजूर के फल नाईं बहुत सी फुन्सियाँ निकल आएँ, उनमें से रक्त बहता रहे और होंठ रुधिरवर्ण के हो जायँ तो उसे रक्तज ओष्ठरोग समझना चाहिए ॥ ६ ॥

मांसज ओष्ठरोग के लक्षण ।

गुरू स्थूलौ मांसदुष्टौ मांसपिण्डवदुद्गतौ ।

जन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति नरस्योभयतो मुखात् ॥ ७ ॥

यदि होठों के मांस दूषित होने से ओष्ठ भारी तथा मोटे हो जायँ और मांस-पिण्ड के समान लटकने लगें एवं दाँतों में कीड़े पड़ जावें तो समझना चाहिए कि यह रोग दुष्ट मांस से उत्पन्न हुआ है ॥ ७ ॥

मेदोज के लक्षण ।

सर्पिर्मण्डप्रतीकाशौ मेदसा कण्डुरौ गुरू ।
अच्छं स्फटिकसंकाशमास्रावं च न गच्छति ॥ ८ ॥
तयोर्व्रणो न संरोहेन्मृदुत्वं च न गच्छति ।

यदि घी तथा माड़ के समान होठों पर पपड़ी छा जाय इस कारण होंठ खुजलाने लगें, भारी हो जायँ, फिटकरी के समान सफेद रस बहने लगे, घाव ज्यादा दिनों तक न पूरने आए न कोमलता ही दिखाई दे तो उसे मेदे के विकार से उत्पन्न ओष्ठरोग समझना चाहिए ॥ ८ ॥

अभिघातज के लक्षण ।

क्षतजाभौ विदीर्येते पाट्येते चाभिघाततः ॥ ९ ॥
ग्रथितौ च तथा स्यातामोष्ठौ कण्डूसमन्वितौ ।

यदि किसी प्रकार की चोट लग जाती तो होंठ फट जाते और उनमें पीड़ा होने लगती है । इसके अनन्तर गाँठें पड़ जाती और खुजली के साथ साथ उसमें पानी सा टपकने लगता है ॥ ९ ॥

यहाँ से दन्तमूल में होने वाले १५ रोगों की व्याख्या करते हैं—

शीताद के लक्षण ।

शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्तते ।
दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥ १० ॥
दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचन्ति च परस्परम् ।
शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसंभवः ॥ ११ ॥

शीताद रोग ग्रस्त प्राणी के दाँतवाले मांस से अकस्मात् रुधिर निकलने लगता, मांस दुर्गन्धित, काले, बहुत लार टपकानेवाले तथा मुलायम होते हैं ।

दाँत के मांस ऐसी अवस्था में फट जाते और धीरे धीरे सब एक में कर पक जाते हैं। कफ तथा रक्त के विकार से इस दन्तरोग की उत्पत्ति होती और शीताद इसका नाम है ॥ १० ॥ ११ ॥

दन्तपुप्पुट के लक्षण।

दन्तयोस्त्रिषु वा यस्य श्वयथुर्जायते महान्।
दन्तपुप्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥ १२

जिस प्राणी के दो तथा तीन दाँतों के मुस्कुर खूब फूल जायें लोग दन्तपुप्पुटक रोग कहते हैं। कफ और रक्त के विकार से इस उत्पत्ति होती है ॥ १२ ॥

दंतवेष्ट लक्षण।

स्रवन्ति पूयरुधिरं चला दन्ता भवन्ति च।
दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसंभवः ॥ १३ ॥

यदि दाँतों के रुधिर दूषित हो जायँ और उनमें से पीब निकलने लगे तथा दाँत हीलने लगें तो लोग इसे दन्तवेष्ट रोग कहते हैं। दूषित रक्त से इसकी उत्पत्ति होती है ॥ १३ ॥

शौषिर के लक्षण।

श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान् कफरक्तजः।
लालास्रावी स विज्ञेयः शौषिरो नाम नामतः ॥१४॥

यदि दाँत की जड़ में सूजन होजाय और उसमें दर्द होती रहे तथा लार टपका करे तो लोग इसे शौषिर नामक दन्तरोग कहते हैं। कफ-रक्त से इसकी भी उत्पत्ति होती है ॥ १४ ॥

महाशौषिर के लक्षण।

दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते।
यस्मिन् स सर्वजो व्याधिर्महाशौषिरसंज्ञितः ॥ १५ ॥

मुस्कुर से जिसके दाँत हिलने लगें और तालु भी फट जाय तो इसे लोग महाशौषिर नामक दन्तरोग कहते हैं। वात-पित्त कफ इन तीनों के प्रकोप से यह उत्पन्न होता है ॥ १५ ॥

परिदर के लक्षण।

दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन् ष्ठीवति चाप्यसृक्।
पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः ॥ १६ ॥

जिसके दाँतोंवाले मांस फट जायँ और थूक के साथ साथ रक्त आने लगे तो लोग इसे परिदर नामक रोग कहते हैं और पित्त, रक्त तथा कफ से इसकी उत्पत्ति होती है ॥ १६ ॥

उपकुश के लक्षण।

वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलन्ति च।
अवक्रृताः प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनाः ॥ १७ ॥
आध्मायन्ते स्रुते रक्ते मुखे पूतिश्च जायते।
यस्मिन् सोपकुशो नाम पित्तरक्तकृतो गदः ॥ १८ ॥

यदि मुस्कुरों में जलन हो और पक जायँ इसी कारण दाँत हीलने लगें, बातचीत करने में भी कष्ट हो, साधारण वेदना के साथ साथ रुधिर गिरता रहे, रुधिर के बहजाने पर फिर सूजन होजाय, मुख से दुर्गन्धि आती रहे तो उसे लोग उपकुश नामक दन्तरोग कहते हैं और पित्त-रक्त के दूषित होने पर इसका प्रादुर्भाव होता है ॥ १७ ॥ १८ ॥

वैदर्भके लक्षण।

घृष्टेषु दन्तमांसेषु संरम्भो जायते महान्।
चला भवन्ति दन्ताश्च स वैदर्भोऽभिघातजः ॥१९॥

यदि दाँतों के मुस्कुर आपस में रगड़ जाते तो बड़ी भीषण सूजन होती और दाँत हीलने लगते हैं। लोग इसे वैदर्भ नामक दन्तरोग कहते हैं एवं किसी प्रकार की चोट लगजाने से इस रोग की उत्पत्ति होती है ॥ १९ ॥

खलिवर्धन के लक्षण।

मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः।
खलिवर्धनसंज्ञोऽसौ जाते रुक् च प्रशाम्यति ॥ २० ॥

वायु के प्रकोप से साधारण दाँतों के ऊपर एक और दाँत निकल आता है उसमें बड़ी वेदना होती और जब वह दाँत अच्छी तरह जम जाता तो पीड़ा आप से आप शान्त होजाती है। इसे लोग खल्लीवर्धन नामक दन्तरोग कहते हैं ॥ २० ॥

कराल और अधिमांसक के लक्षण ।

शनैः शनैः प्रकुरुते वायुर्दन्तसमाश्रितः ।
करालान्विकटान् दन्तान् करालो न स सिध्यति ॥२१॥
हानव्ये पश्चिमे दन्ते महान् शोथो महारुजः ।
लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः ।
दन्तमूलगता नाड्यः पञ्च ज्ञेया यथेरिताः ॥ २२ ॥

चौभड़वाले दाँतों के आगे जो दाँत होता उसमें महान् शोथ तथा दारुण पीड़ा होती है, लार टपकने लगता एवं कफ के प्रकोप से इसका जन्म होता है और यह अधिमांसक रोग कहलाता है। पीछे नाड़ीव्रण के प्रकरण में जैसे पाँच प्रकार के नाड़ीव्रण कह आए हैं उसी तरह यहाँ दाँत की जड़ों में भी पाँच तरह के नाड़ीव्रण जानने चाहिएँ ॥ २१॥२२ ॥

कराल के लक्षण ।

शनैः शनैः प्रकुरुते वायुर्दन्तसमाश्रितः ।
करालान् विकटान् दन्तान् करालो न स सिध्यति ॥२३॥

यदि वायु दाँतों की जड़ में जाकर रुकजाता तो धीरे धीरे वह दाँतों में एक विकट रोग पैदा कर देता है इसे लोग कराल नामक रोग कहते हैं। यह रोग असाध्य माना गया है ॥ २३ ॥

दालन के लक्षण ।

दीर्यमाणेष्विव रुजा यस्य दन्तेषु जायते ।
दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः ॥ २४ ॥

जब कि ऐसी पीड़ा हो कि मालूम हो मानो दाँत फटे जारहे हैं तो उसे दालन नामक दन्तरोग समझना चाहिए। यह वायु के कारण उत्पन्न हुआ करता है ॥ २४ ॥

क्रिमिदन्त के लक्षण ।

कृष्णश्छिद्रश्चलः स्रावी ससंरम्भो महारुजः ।
अनिमित्तरुजो वाताद्विज्ञेयः क्रिमिदन्तकः ॥ २५ ॥

यदि दाँतों में काले रंगका छिद्र होजाय व दाँत हीलने लगें और उसमें से मवाद आदि कुछ बहने लगे, बड़ी वेदना हो और सूजन होजाय तो उसे क्रुमिदन्त नामक रोग समझना चाहिए। यह व्याधि विना किसी कारण के दुःख देती और वात के प्रकोप से उत्पन्न होती है ॥ २५ ॥

भञ्जन के लक्षण ।

वक्त्रं वक्रं भवेद्यस्य दन्तभङ्गश्च जायते ।
कफवातकृतो व्याधिः स भञ्जनकसंज्ञितः ॥ २६ ॥

जिससे मुँह टेढ़ा हो जाय और दाँत टूट जायँ उसे भञ्जनक रोग समझना चाहिए। कफ और वातके प्रकोपसे इसकी उत्पत्ति होती है ॥२६॥

दन्तहर्ष के लक्षण ।

शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहा द्विजाः ।
पित्तमारुतकोपेन दन्तहर्षः स नामतः ॥ २७ ॥

जिस प्राणीके दाँत ठंडे, रूखे और खट्टे पदार्थका स्पर्श सहन करनेमें असमर्थ हों यानी उनके लगते ही खट्टे हो जायँ तो उसे दन्तहर्ष-नामक रोग समझना चाहिए। पित्त और वायुके प्रकोपसे इसकी उत्पत्ति होती है ॥ २७ ॥

दन्तशर्करा के लक्षण ।

मलो दन्तगतो यस्तु पित्तमारुतशोषितः ।
शर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा ॥ २८ ॥

यदि दाँतमें जमा हुआ मल पित्त तथा मारुत द्वारा सूख जाय और खिसखिसाने लगे तो इसे दन्तशर्करा नामक रोग समझना चाहिये ॥ २८ ॥

कपालिका के लक्षण ।

कपालेष्विव दीर्यत्सु दन्तानां सैव शर्करा ।

कपालिकेति विज्ञेया सदा दन्तविनाशिनी ॥ २९

यदि मैल दाँतोंमें जमकर ऐसा खिसखिसाने लगे जिससे मालूम मानों माथा फटा जाता है। उसे लोग कपालिका नामक रोग कहते हैं दाँतोंका नाशकारी है ॥ २९ ॥

श्यावदन्तक, हनुमोक्ष तथा दन्तविद्रधि के लक्षण।

योऽसृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दन्तस्त्वशेषतः।
श्यावतां नीलतां वापि गतः स श्यावदन्तकः॥३०॥
निरस्तजिह्वः कृच्छ्रेण भाषितं तत्र गच्छति।
सम्यक् तमनिलव्याधिं हनुमोक्षं विनिर्दिशेत् ॥३१॥
दन्तमांसे मलैः सास्रैर्बाह्यान्तः श्वयथुर्गुरुः।
सदाहरुक् स्रवेद्भिन्नः पूयास्रं दन्तविद्रधिः ॥ ३२ ॥
जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा।
पित्तेन दह्यत्युपचीयते च दीर्घैः सरक्तैरपि कण्टकैश्च।
कफेन गुर्वी बहुला चिता च मांसोच्छ्रयैः शाल्मलिकण्टकाभैः॥३३॥

रक्त तथा पित्त दोनों मिलकर जिसके समस्त दाँतोंको जला दें इससे वे काले व नीले रंगके हो जायँ तो उसे श्यावदन्तक नामक दन्तरोग समझे ॥ ३० ॥ जो प्राणी जीभ दबाकर बड़ी कठिनाईसे बोल सके ऐसी व्याधिको लोग हनुमोक्ष नामक रोग कहते हैं यह वातके प्रकोपसे उत्पन्न होता है ॥ ३१ ॥ जिस प्राणीके दाँतवाले मांसमें मलयुक्त सार इकट्ठा हो एवं जोरोंके साथ सूजन हो जाय, जलनके साथ साथ पीड़ा हो, अन्तमें फटकर पीब बहने लगे तो उसे लोग दन्तविद्रधि रोग कहते हैं ॥ ३२ ॥ यदि वातके कुपित होनेसे जीभ फट जाय तो वह बिल्कुल सुन्न हो जाती अर्थात् उसे किसी प्रकारका स्वाद नहीं मालूम होता और शाकके पत्रकी नाईं उसमें खुरखुरापन हो जाया करता है। यदि पित्त कुपित होता तो जीभ पीली पड़ जाती, उसमें दाह होने लगती और लाल रंगके बड़े

बड़े काँटे निकल आया करते हैं । कफके प्रकोपसे उत्पन्न जिह्वारोगमें जीभ भारी हो जाती और सेमरवृक्षके काँटोंकी तरह उसमें ऊँचे ऊँचे मांसके काँटे निकल आया करते हैं ॥ ३३ ॥

अलास के लक्षण ।

जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः ।
जिह्वां स तु स्तम्भयति प्रवृद्धो मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥ ३४ ॥

यदि जीभके निचले भागमें अत्यन्त सूजन हो तो उस अलाससंज्ञक रोग को कफ तथा रक्त की साक्षात् मूर्ति ही समझनी चाहिए । वह शोथ बढ़कर जीभको रोक लेता और उसकी जड़ पक जाया करती है ॥ ३४ ॥

उपजिह्विका के लक्षण ।

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तमूलः ।
लालाकरः कण्डुयुतः सचोषः सा तूपजिह्वा पठिता भिषग्भिः ॥ ३५ ॥

यदि जिह्वाके अग्रभागमें सूजन होती तो वह जीभको उभाड़कर किनारे२ ऊँचे तथा बीचवाले भागको खाली कर दिया करती है । यह रोग भी कफ तथा रक्तके दोषसे होता है । इसमें लार विशेष टपकता, खुजली उठती और जीभ सूखती रहती है । इसे वैद्योंने उपजिह्विका नामक रोग कहा है ॥ ३५ ॥

कण्ठशुण्ठि के लक्षण ।

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूले प्रवृद्धो
दीर्घः शोथो ध्मातबस्तिप्रकाशः ।
तृष्णाकासश्वासकृत्तं वदन्ति
व्याधिं वैद्याः कण्ठशुण्ठीति नाम्ना ॥ ३६ ॥

तालुकी जड़में कफ और रक्तके प्रकोपसे एक बड़ा भारी शोथ उत्पन्न होता है जिससे रोगीको विशेष प्यास लगती, खांसी आती और श्वास आने लगता है । इसे वैद्य लोग कण्ठशुण्ठि नामक रोग कहते हैं ॥ ३६ ॥

तुण्डकेरी के लक्षण ।

शोथः स्थूलस्तोददाहप्रपाकी

श्लेष्मासृग्भ्यां तुण्डिकेरी मता तु ।

उसी प्रकार कफ तथा रक्तके प्रकोपसे यदि तालुकी जड़में ही शोथ हो और वह शूलके समान चुभे और दाह हो तथा पक जाय तो उसे वैद्य लोग तुण्डकेरी नामक रोग कहते हैं ॥

अध्रुव के लक्षण ।

मृदुः शोथो लोहितः शोणितोत्थो
ज्ञेयोऽध्रुवः सज्वरस्तीव्ररुक् च ॥ ३७ ॥

यदि तालुदेशमें ही लाल रंगका शोथ ऊपरको तना हुआ हो, ज्वर आवे तथा पीड़ा होती रहे तो उसे लोग अध्रुव नामक रोग कहते हैं ॥३७॥

कच्छप के लक्षण ।

कूर्मोन्नतोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मा
रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा तु ।

यदि कफके प्रकोपसे कछुएकी पीठके समान ऊँचा और संज्ञाविहीन शोथ हो तो उसे लोग कच्छप रोग कहते हैं ॥

तात्वर्बुद के लक्षण ।

पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तलिङ्गम् ॥३८॥
दुष्टं मांसं नीरुजं तालुमध्ये कफाच्छूनं मांससंघातमाहुः ।

यदि रक्तके दूषित होनेसे तालुके मध्यमें कमलके सदृश शोथ हो तो उसे लोग अर्बुद नामक रोग कहते हैं। पहले रक्तार्बुद रोगके जो लक्षण कह आए हैं वे ही लक्षण यहाँ पर भी दिखाई देते हैं दूषित मांस कफके प्रकोपसे तालुमें सूज जाता तो लोग उसे मांससंघात रोग कहते हैं ॥ ३८ ॥

पुप्पुट तथा तालुपाक के लक्षण ।

नीरुक् स्थायी कोलमात्रः कफात् स्या-
न्मेदोयुक्तात् पुप्पुटस्तालुदेशे ॥ ३९ ॥
शोषोऽत्यर्थं दीर्यते चापि तालुः
श्वासश्चोग्रस्तालुशोषोऽनिलाच्च ।

पित्तं कुर्यात् पाकमत्यर्थघोरं
तालुन्येनं तालुपाकं वदन्ति ॥ ४० ॥

कफ तथा मेदेके दोष से तालुप्रदेशमें यदि बेरके बराबर मांसके अंकुर निकल आएँ और वे स्थिर रहें तो लोग उसे पुप्पुट रोग कहते हैं। यदि वायुके दोषसे तालु प्रदेश अतिशय सूज जाय और श्वास जोरोंसे चलने लगे तो लोग उसे तालुशोष नामक रोग कहा करते हैं। उसी तरह यदि पित्तके दोषसे तालु प्रदेश भयानक रूपसे पक जाय तो उसे तालुपाक रोग कहते हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥

रोहिणी की सामान्य संप्राप्ति ।

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ
प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम् ।
गलोपसंरोधकरैस्तथाऽङ्कुरै-
र्निहन्त्यसून् व्याधिरियं हि रोहिणी ॥ ४१ ॥

यदि वायु दूषित होकर गले में रुक जाती तो वह पित्त तथा कफ से जा मिलती और मांस तथा रक्त को दूषित करती हुई गले को रूँधने वाले मांसांकुरों को उत्पन्न कर देती जिस से वे मांसांकुर प्राणियों के प्राण लेलेते हैं। इसे लोग रोहिणी नामक रोग कहते हैं ॥ ४१ ॥

वातजादि भेद से रोहिणी के लक्षण ।

जिह्वासमन्तादृशवेदनास्तु मांसाङ्कुराः कण्ठविरोधिनो ये ।
सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ता ॥ ४२ ॥
क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजा तु ।
स्रोतोविरोधिन्यचलोद्गता च स्थिराङ्कुरा या कफसंभवा सा ॥ ४३ ॥
गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषलिङ्गा त्रितयोत्थिता च ।
स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गा साध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मिका तु ॥ ४४ ॥

वात के प्रकोप से उत्पन्न रोहिणी रोगवाले मांसांकुर यदि जीभ को

चारों ओर से घेर लें और उनसे गला रुँध जाय तो लोग उसे वातकृता रोहिणी कहते हैं। इस रोग में वातसम्बन्धी सारे उपद्रव मौजूद रहते हैं ॥ ४२ ॥ जो रोहिणी रोग तुरन्त उत्पन्न हो और बात की बात में दाह तथा पाक कर दे साथ ही तीव्र ज्वर बना रहे तो उसे लोग पित्तजा रोहिणी रोग कहते हैं। जो रोहिणी कफ के प्रकोप से उत्पन्न होती वह शरीर के छिद्रों को रोक लेती और कम पकती है उसे कफसम्भवा रोहिणी रोग समझना चाहिए ॥ ४३ ॥ जो रोहिणी वात-पित्त-कफ इन तीनों दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होती उसमें गम्भीरपाक होता है, उस का वेग किसी के हटाए नहीं हटता और तीनों दोषों के लक्षण इस में स्पष्ट दीखते हैं। यदि रुधिर के विकार से इस रोग का जन्म होता तो फोड़े अधिक निकलते तथा पित्तज रोहिणी के समस्त लक्षण दिखाई देते हैं। इसे वैद्यों ने साध्य रोग माना है ॥ ४४ ॥

कण्ठशालूक के लक्षण।

कोलास्थिमात्रः कफसंभवो यो ग्रन्थिर्गले कण्टकशूकभूतः।
खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति॥४५॥

यदि कफ के प्रकोप से गले में बेर की गुठली के बराबर गाँठ निकल आए, उसमें काँटे के समान अङ्कुर हो और वह गाँठ स्थिर तथा कर्कश हो तो उसे कण्ठशालूक नामक रोग समझना चाहिए। किसी शस्त्र आदि से चीरने पर यह रोग साध्य हो सकता है ॥ ४५ ॥

अधिजिह्विका के लक्षण।

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वोपरिष्ठादपि रक्तमिश्रात्।
ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥ ४६ ॥

कफ या रक्त के प्रकोप से जीभ के ऊपर जीभ के अग्रभाग की नाईं शोथ निकल आता है। इसे लोग अधिजिह्व रोग कहते हैं। यदि पक जाय तो वैद्य को चाहिए कि इसका परित्याग कर दे क्योंकि पकने पर यह रोग असाध्य हो जायाकरता है ॥ ४६ ॥

वलय के लक्षण।

बलास एवायतमुन्नतं च शोथं करोत्यन्नगतिं निवार्य।

तं सर्वथैवाप्रतिवार्यवीर्यं विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥ ४७॥

कफ ही एक ऐसा दोष है जो अन्न की गति को रोक कर लम्बी चौड़ी गाँठ उत्पन्न करता है मतलब यह कि यदि कफ बिगड़ जाय तो उसका परित्याग कर देना चाहिये क्योंकि यह निश्चित है कि उसके बढ़े हुए बल का प्रतीकार नहीं किया जा सकता। इसे लोग वलय नामक रोग कहते हैं ॥ ४७ ॥

बलास के लक्षण।

गले तु शोथं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम् ।
मर्मच्छिदं दुस्तरमेनमाहुर्बलाससंज्ञं निपुणा विकारम् ॥ ४८ ॥

यदि वात और कफ दोनों बढ़ जाते तो प्राणी के गले में सूजन हो आती, उस में पीड़ा होती और श्वास जोरों से आने लगता है। निपुण वैद्य लोग इसे बलास नामक रोग कहते है। यह शरीर के सुकुमार स्थानों को काटनेवाला दुस्तर रोग माना गया है ॥ ४८ ॥

एक वृन्द के लक्षण।

वृत्तोन्नतोऽन्तः श्वयथुः सदाहः सकण्डुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च ।
नाम्नैकवृन्दः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्बलाशक्षतजप्रसूतः ॥४९॥

यदि गोल, ऊँचा, भीतरी शोथ, दाह एवं खुजली से युक्त तथा भारी हो, अधिक समय तक पके नहीं तो इसे लोग एकवृन्द नामक रोग कहते हैं। कफ और रक्त के प्रकोप से इसकी उत्पत्ति होती है ॥ ४९ ॥

वृन्द के लक्षण।

समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं वृन्दमुदाहरन्ति ।
तच्चापि पित्तक्षतजप्रकोपाज्ज्ञेयं सतोदं पवनात्मकं तु ॥ ५० ॥

यदि ऊँचा, गोलाकार, असाधारण दाहयुक्त और भयानक ज्वर के साथ गले में शोथ हो तो उसे लोग पित्त तथा रक्त के प्रकोप से उत्पन्न वृन्द नामक रोग कहते हैं। यदि वायु के दोष से इस की उत्पत्ति होती तो सुई से कोंचने के समान वेदना होती है ॥ ५० ॥

शतघ्नी के लक्षण ।

वर्तिर्घना कण्ठनिरोधिनी या चितातिमात्रं पिशितप्ररो
अनेकरुक्प्राणहरी त्रिदोषज्ज्ञेया शतघ्नी च शतघ्निरूपा ॥

यदि गले में कुछ लम्बी, कड़ी एवं गले को रूँधनेवाली मु
उत्पन्न हो जाय और उसके आस पास चारों ओर मांस के अङ्कुर लि
हुए दिखाई दें तो उसे शतघ्नी नामक रोग कहते हैं। क्योंकि यह र
अनेकों के प्राण ले चुका है और इस में वात, पित्त तथा कफ ये ती
दोष कुपित रहा करते हैं। संस्कृत में शतघ्नी तोप को कहते हैं, जै
शतघ्नी (तोप) हजारों को मार डालती है उसी प्रकार यह रोग भी उत्
होकर सैकड़ों के प्राण हर लेता है। इसी कारण इसका शत-
नाम पड़ा है॥ ५१ ॥

गलायु के लक्षण ।

ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः स्थिरोऽतिरुग्यः कफरक्तमूर्तिः
संलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च स शस्त्रसाध्यस्तु गलायुसंज्ञः ॥५२॥

यदि गले में आँवले की गुठली के बराबर स्थिर, साधारण पीड़ा-
युक्त ग्रन्थि निकल आए। उस समय भोजन करने में कष्ट हो तो लोग
इसे गिलायु नामक (गिलटी) रोग कहते हैं। किसी शस्त्र से चीरने पर
यह रोग साध्य होता है तथा कफ-रक्त से इसकी उत्पत्ति होती है ॥५२॥

गलविद्रधि के लक्षण ।

सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोथो रुजः सन्ति च यत्र सर्वाः ।
स सर्वदोषैर्गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य ॥ ५३ ॥

जिस के ऐसा फोड़ा निकले जो सारे गले को घेर ले, जिस में समस्त
दोषों की पीड़ा मौजूद रहे एवं सब दोषों के लक्षण स्पष्ट दीखते रहें उसे
गलविद्रधि नामक रोग कहते हैं। पूर्वोक्त सन्निपात से उत्पन्न विद्रधि में
जो लक्षण रहते हैं वे ही इस में भी रहा करते हैं ॥ ५३ ॥

गलौघ के लक्षण ।

शोथो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता ।

कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघः परिकीर्त्यते तु॥५४॥

यदि गले में एक इतनी बड़ी शोथ उत्पन्न हो जो अन्न जल तक भीतर जाना रोक दे और वायु की गति में भी बाधा डाले तो इसे लोग गलौघ नामक रोग कहते हैं । कफ तथा रक्त के प्रकोप से इसकी उत्पत्ति होती है ॥ ५४ ॥

स्वरघ्न के लक्षण ।

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः ।
कफोपदिग्धेष्वनिलायनेषु ज्ञेयः स रोगः श्वसनात् स्वरघ्नः॥५५॥

कफ द्वारा वायुमार्ग के रुक जाने से यदि प्राणी कठिनाई के साथ श्वास ले सके, गला बिल्कुल सूख सा जाय, आवाज़ बैठ जाय तो इसे लोग स्वरघ्न नामक रोग कहते हैं और वायुके प्रकोप से इस रोग की उत्पत्ति होती है ॥ ५५ ॥

मांसतान के लक्षण ।

प्रतानवान् यः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण ।
स मांसतानः कथितोऽवलम्बी प्राणप्रणुत् सर्वकृतो विकारः॥५६॥

यदि गले में शोथ उत्पन्न होकर धीरे धीरे गले को घेर ले और उसमें बड़ी वेदना हो तो इसे लोग मांसतान रोग कहते हैं । इसमें तीनों दोष कुपित होते और यह प्राणों को लेनेवाला एक भयानक रोग माना जाता है ॥ ५६ ॥

विदारी के लक्षण ।

सदाहतोदं श्वयथुं सुताम्रमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम् ।
पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात् स तु येन शेते॥५७॥

यदि गले में ताम्र के समान रंगवाला, दाह एवं किसी चीज से कोंचने के समान पीड़ा से युक्त रहे ऐसा शोथ उत्पन्न हो, फूटने पर उसमें से दुर्गन्धित मांस निकले तो उसे विदारी नामक रोग समझना चाहिए । इस में पित्त का प्रकोप होता और विशेष कर यह मुख के उस

भाग में होता है जिस तरफ को करवट कर के प्राणी सोया करता है*।

सर्वसर के लक्षण।

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समन्ताद्यस्याचितं सर्वसरः स वातात्।
रक्तैः सदाहैस्तनुभिः सपीतैर्यस्याचितं चापि स पित्तकोपात्
अवेदनैः कण्डुयुतैः सवर्णैर्यस्याचितं चापि स वै कफेन॥५८

वात के प्रकोप से जिस प्राणी के मुख भर में सुई की तरह चुभ हुई छोटी छोटी फुंसियाँ निकल आएँ तो उसे लोग सर्वसरनामक रो कहते हैं। पित्त के प्रकोप से जिस के मुख पर लाल रङ्ग की अथवा पी वर्ण की दाहयुक्त फुंसियाँ निकल आएँ उसे पैत्तिक सर्वसर रोग समझन चाहिए। जिस प्राणी के मुख भर में वेदनारहित, खुजलाहट लिए, ठी चमड़ी के रङ्ग से मिलती जुलती फुंसियाँ निकल आएँ उसे कफात्मव सर्वसर रोग समझना चाहिए॥५८॥

साध्यासाध्यत्व।

ओष्ठप्रकोपे वर्ज्याः स्युर्मांसरक्तत्रिदोषजाः।
दन्तमूलेषु वर्ज्यौ च त्रिलिङ्गगतिशौषिरौ॥५९॥
दन्तेषु च न सिध्यन्ति श्यावदालनगञ्जनाः।
जिह्वारोगे बलासस्तु तालव्येष्वर्बुदं तथा॥६०॥
स्वरघ्नो वलयो वृन्दो वलासश्च विदारिका।
गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले॥६१॥
असाध्याः कीर्तिता ह्येते रोगा नव दशैव तु।
तेषु चापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत्॥६२॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने मुखरोगनिदानं समाप्तम्॥५६॥

ऊपर कहे हुए ओष्ठरोगों में जो मांस, रक्त तथा त्रिदोष से उत्पन्न

---

* पित्तेन जातो वदने विकारः पार्श्वे विशेषात् स तु येन शेते।
स्नायुप्रतानप्रभवो विशेषो दाहप्रपाकप्रचुरो विदारी॥ इत्यपि क्वचिद्दृश्यते।

हुए हों तो उनका परित्याग कर देना चाहिए। दन्तमूल के रोगों में सान्निपातिक, नाड़ीजन्य तथा शौषिर रोग त्याज्य हैं। दन्तरोगों में श्यावदन्त दालन तथा भञ्जन नामक रोग असाध्य कहे गए हैं। जिह्वातल से सम्बन्ध रखनेवाले रोगों में अलसक एवं तालव्य रोगों में अर्बुद, कण्ठसम्बन्धी रोगों में स्वरघ्न, वलय, वृन्द, बलास, विदारिका, गलौघ, मांसतान, शतघ्नी तथा रोहिणी इतने रोग त्याज्य हैं। ये उन्नीस रोग असाध्य कहे गए हैं किन्तु क्रिया में कुशल वैद्य को चाहिए कि इन में से भी कुछ रोगों की चिकित्सा करें ॥ ५६-६२ ॥

इति श्रीरामतेजपाण्डेयविरचितमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते
माधवनिदाने मुखरोगनिदानम् ॥ ५६ ॥

अथ कर्णरोगनिदानम् ।

निदान ।

समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथा चरन् समन्ततः शूलमतीव कर्णयोः ।
करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः स कर्णशूलः कथितो दुराचरः ॥१॥

यदि वायु कानों में जाकर वात-पित्त-कफ आदि दोषों में मिल जाता और इधर उधर घूमता हुआ अत्यन्त शूलको उत्पन्न कर देता तो इसे लोग कर्णशूल रोग कहते हैं। यह असाध्य रोग कहा गया है ॥ १ ॥

कर्णनाद के लक्षण ।

कर्णस्रोतः स्थिते वाते शृणोति विविधान् स्वरान् ।
भेरीमृदङ्गशङ्खानां कर्णनादः स उच्यते ॥ २ ॥
यदा शब्दवहं वायुः स्रोत आवृत्य तिष्ठति ।
शुद्धः श्लेष्मान्वितो वाऽपि बाधिर्यं तेन जायते ॥ ३ ॥

यदि वायु कानों के छिद्र में भर जाता तो शङ्ख, भेरी, आदि के विविध प्रकार शब्द सुनाई देते हैं। इसे लोग कर्णनाद नामक रोग कहते हैं ॥ २ ॥ यदि वायु शब्द को बाहर करनेवाली नसों में जाकर ठहर जाता, वह

वायु अकेला हो अथवा कफ से मिल गया हो तो उससे बाधिर्य रोग उत्पत्ति होती है ॥ ३ ॥

कर्णक्ष्वेड के लक्षण ।

वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषोपमं स्वनम् ।
करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्णक्ष्वेडः स उच्यते ॥ ४ ॥

यदि वायु के पित्तादिकों से मिल जाने पर कानों में वंशी के समा स्वर सुनाई दे अथवा उस प्रकार और कई तरह के शब्द सुनाई दें तो उ कर्णक्ष्वेड नामक रोग समझना चाहिए ॥ ४ ॥

कर्णस्राव के लक्षण ।

शिरोऽभिघातादथवा निमज्जतो जले प्रपाकादथवाऽपि विद्रधेः ।
स्रवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिलार्दितः स कर्णसंस्राव इति प्रकीर्तितः ॥५॥

मस्तक में चोट लगने, जलमें डुबकी लगाकर स्नान करने अथवा कानों में फोड़े होने से कान पक जाया करते हैं। ऐसी अवस्था में वह वायु से पीडित होकर बहने लगता है । इसे लोग कर्णसंस्राव रोग कहते हैं ॥ ५ ॥

कर्णप्रतिनाह के लक्षण ।

मारुतः कफसंयुक्तः कर्णकण्डूं करोति च ।
पित्तोष्मशोषितः श्लेष्मा कुरुते कर्णगूथकम् ॥ ६ ॥
स कर्णगूथो द्रवतां गतो यदा विलायितो घ्राणमुखं प्रपद्यते ।
तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोऽर्धभेदकृत् ॥७॥

वायु कफ से मिलकर कानोंमें खुजली उत्पन्न कर देता है इसे लोग कर्णकण्डू नामक रोग कहते हैं । यदि पित्त गरमी से सूख जाता तो कर्णगूथ नामक रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ ६ ॥ यदि वह कर्णगूथ (कान की मैल) किसी कारणवश गीला होकर नाक या मुखमें आ जाता तो उसे कर्णप्रतिनाह रोग कहने लगते हैं । इससे आधीशीशी नामक रोगकी उत्पत्ति होती है ॥ ७ ॥

क्रिमिकर्णक के लक्षण।

यदा तु मूर्च्छन्त्यथवाऽपि जन्तवः
सृजन्त्यपत्यान्यथवाऽपि मक्षिकाः।
तद्व्यञ्जनत्वाच्छ्रवणो निरुध्यते
भिषग्भिराद्यैः क्रिमिकर्णको गदः॥ ८॥

यदि कानोंमें कीड़े पड़ जाते या बाहरसे मक्खियाँ जाकर बच्चे पैदाकर देतीं तो कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। इसे पुराने वैद्योंने कृमिकर्ण नामक रोग कहा है॥ ८॥

कान में कीड़े आदि घुस जाने के लक्षण।

पतङ्गाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि।
अरतिं व्याकुलत्वं च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम्॥ ९॥
कर्णो निस्तुद्यते तस्य तथा फरफरायते।
कीटे चरति रुक् तीव्रा निष्पन्दे मन्दवेदना॥ १०॥

यदि कानोंमें छोटे छोटे कीट पतंग अथवा शतपदी (खनखजूर) आदि घुस जाते तो अतिशय व्याकुलता तथा पीड़ा होती है, कान फुरफुराने लगता है, जब कीड़े चलते तो भीषण वेदना होती और जब नहीं चलते तब साधारण पीड़ा होती रहती है॥ ९॥ १०॥

कर्णविद्रधि के लक्षण।

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः।
सरक्तपीतारुणमस्रमास्रवेत् प्रतोदधूमायनदाहचोषवान्॥ ११॥

यदि किसी तरह कानमें घाव होता या चोट लग जाने से फोड़ा हो जाता अथवा वातादि दोषोंके प्रकोपसे फोड़ा हो जाता तो कानसे लाल, पीला अथवा अरुणवर्णका पीब बहने लगता है, सुईसे कोंचनेके समान दर्द होती, धुआं सा निकलने लगता और दाह तथा उष्णता रहा करती है। इसे लोग कर्णविद्रधिनामक रोग कहते हैं॥ ११॥

कर्णपाक के लक्षण ।

कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविक्लेदकृद्भवेत् ।
कर्णविद्रधिपाकाद्वा जायते चाम्बुपूरणात् ॥ १२ ॥

कानमें पित्तके प्रकोपसे फोड़ा होने या पानी भर जानेके कारण कान सड़ जाता और जोरोंसे पीड़ा होने लगती है। इसे कर्णपाक कहते हैं ॥ १२ ॥

पूतिकर्ण के लक्षण ।

पूयं स्रवति पूतिं वा स ज्ञेयः पूतिकर्णकः ।

यदि कानसे दुर्गन्धिमय पीब बहता तो वह कर्णपूति रोग कहलाता

कर्णशोथादिकों के लक्षण ।

कर्णशोथार्बुदार्शांसि जानीयादुक्तलक्षणैः ॥ १३ ॥

कर्णशोफ, कर्णार्बुद तथा कर्णार्श इन तीनोंके लक्षण पहले कहे हुए शोफ, अर्बुद तथा अर्शके समान ही समझना चाहिये ॥ १३ ॥

कर्णरोग के भेद ।

नादोऽतिरुक् कर्णमलस्य शोषः स्रावस्तनुश्चाश्रवणं च वातात् ।
शोथः सरागो दरणं विदाहः सपीतपूतिस्रवणं च पित्तात् ॥१४॥
वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोथशुक्लस्निग्धस्रुतिः स्वल्परुजः कफाच्च ।
सर्वाणि रूपाणि च सन्निपातात् स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्णः॥१५॥

यदि वातके प्रकोपसे कानमें रोग होता तो एक अव्यक्त शब्द सुनाई पड़ता, बड़ी पीड़ा होती, कानकी भीतरी मैल सूख जाती, पतला पतला पीब बहा करता है और सुनाई नहीं देता पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न कर्णरोगमें कान सूज जाते, सूजन कुछ रक्तिमा लिए होती, ऐसा मालूम होता जैसे कोई चीरे डालता है, अत्यन्त जलन होती और दुर्गन्धित पीब बहा करता है ॥ १४ ॥ कफके प्रकोपसे जायमान कर्णरोगमें स्पष्ट सुनाई नहीं देता, कानों में खुजली उठती, कड़ा शोथ हो आता, सफेद और चिकना मवाद बहता

और जोरोंके साथ पीड़ा होती है। सन्निपात से उत्पन्न कर्णरोगमें पृथक् पृथक् तीनों दोषोंके लक्षण दीखते हैं किन्तु बहते उसी दोषवाले लक्षण के अनुसार हैं जिसकी प्रधानता होती है ॥ १५ ॥

कर्णपाली के विकार ।

सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसाऽतिप्रवर्धिते ।
कर्णशोथो भवेत् पाल्यां सरुजः परिपोटवान् ।
कृष्णारुणनिभः स्तब्धः स वातात् परिपोटकः ॥१६॥

यदि कानोंमें मामूली छेद करके सुकुमारताके कारण कुछ दिनों के लिए छोड़ दिया जाता और फिर उसे बढ़ानेके लिये उसमें सींक आदि डाली जाती तो कान सूज जाते, ऊपरी भागमें पीड़ा युक्त छोटी छोटी फुन्सियाँ निकल आतीं उनका रंग काला या लाल होता उसे वात के प्रकोपसे उत्पन्न परिपोटक रोग कहते हैं ॥ १६ ॥

उत्पात के लक्षण ।

गुर्वाभरणसंयोगात्ताडनाद्घर्षणादपि ।
शोथः पाल्यां भवेच्छयावो दाहपाकरुजान्वितः ॥१७॥
रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः सगदो मतः ।

भारी भारी आभूषणों के पहनने, पीटने या घिस जानेसे कानके ऊपरी भागमें एक प्रकारका शोथ हो जाता है। इसका वर्ण काला होता, दाह पाक तथा पीड़ा होती है और यदि रक्त तथा पित्तके दूषित होने पर भी इस रोगकी उत्पत्ति होती तो उसका रंग लाल होता एवं वह उत्पात नामक रोग कहलाता है ॥ १७ ॥

उन्मन्थक के लक्षण ।

कर्णं बलाद्वर्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति ॥ १८ ॥
कफं संगृह्य कुरुते शोथं स्तब्धमवेदनम् ।
उन्मन्थकः सकण्डूको विकारः कफवातजः ॥ १९ ॥

यदि जबर्दस्ती कानके छेद बढ़ाने की कोशिश की जाती तो कान

का वायु कुपित होकर कफसे मिल जाता एवं शोथको उत्पन्न कर
करता है। वह बड़ा कड़ा होता किन्तु वेदना कुछ भी नहीं होती। खु
उठा करती है। इसे उन्मन्थ रोग कहते हैं। कफ और वायु से इ
उत्पत्ति होती है॥ १८॥ १९॥

संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे कण्डूपाकरुजान्वितः।
शोथो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखवर्धनः॥ २०॥

यदि कोई दुर्बुद्धिता के कारण टेढ़ा मेढ़ा या किसी नस पर कान छे
देता तो उसमें खुजलाहट, दाह तथा पीड़ायुक्त शोथ उत्पन्न होता और
ही दिनों में पक भी जाता है। इसमें तीनों दोषों का प्रकोप रहता ए
दुःखवर्धन इसका नाम है॥ २०॥

परिलेही के लक्षण।

कफासृक्क्रिमयः क्रुद्धाः सर्षपाभा विसर्पिणः।
कुर्वन्ति पाल्यां पिडकाः कण्डूदाहरुजान्विताः॥२१॥
कफासृक्क्रिमिसंभूतः स विसर्पन्नितस्ततः।
लिहेत् सशष्कुलीं पालीं परिलेहीति स स्मृतः॥ २२॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने कर्णरोगनिदानं समाप्तम्॥ ५७॥

कफ, रक्त तथा सरसों के समान क्रिमि इधर उधर रेंगने लगें और
कर्णपाली में छोटी छोटी फुन्सियाँ निकल आयें, उनमें खुजली, दाह तथा
पीड़ा होती रहे तो कफ-रक्त से उत्पन्न वे कीड़े धीरे धीरे चालते चालते
कर्णपाली को चाट जाते हैं। इसी लिए लोग इसे परिलेही नामक रोग
कहते हैं॥ २१॥ २२॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासमन्विते माधवनिदाने कर्णरोगनिदानम्॥ ५७॥

अथ नासारोगनिदानम्।

पीनस के लक्षण।

आनह्यते यस्य विशुष्यते च प्रक्लिद्यते धूप्यति चापि नासा।

न वेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येत्स तु पीनसेन ।
तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं ब्रूयात् प्रतिश्यायसमानलिङ्गम् ॥१॥

यदि नाक सिकुड़ कर सूख जाय, उसमें से पानी के समान कुछ बहता रहे, जलन बनी रहे, सुगन्धि दुर्गन्धि आदि कुछ जान न पाए ये लक्षण जिस प्राणी में विद्यमान हों उसे पीनसरोगी समझना चाहिए । वात और कफ के प्रकोप से इसकी उत्पत्ति होती और इसमें जुकाम के भी कुछ कुछ लक्षण मिलते जुलते रहते हैं ॥ १ ॥

पूतिनस्य के लक्षण ।

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूले संमूर्च्छितो यस्य समीरणस्तु ।
निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां तं पूतिनस्यं प्रवदन्ति रोगम् ॥२॥

यदि गले और तालु में पित्त रक्तादि दोषों से दूषित होकर वायु मुख और नासिका से दुर्गन्ध को निकाले तो उसे लोग पूतिनस्य नामक रोग कहते हैं ॥ २ ॥

नासापाक के लक्षण ।

घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि कुर्याद्यस्मिन् विकारे बलवांश्च पाकः ।
तं नासिकापाकमिति व्यवस्येद्विक्लेदकोथावथाऽपि यत्र ॥ ३ ॥

जिस का पित्त नासिका में रुक कर घाव करदे और जिस विकार के होने पर नासिका में बलवान् पाक हो जाय इसे लोग नासिकापाक नामक रोग कहते हैं और जिस में नाक से पानी के समान कुछ बहता रहे उसे भी नासिकापाक ही समझना चाहिए ॥ ३ ॥

पूतिरक्तके लक्षण ।

दोषैर्विदग्धैरथवाऽपि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः ।
नासा स्रवेत् पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ४ ॥

पित्तरक्तादि दोषों के दूषित होने के कारण अथवा ललाट में किसी प्रकार की चोट लग जाने से नाक के रास्ते पीब से मिला हुआ रक्त बहने लगता है । उसे लोग पूयरक्त नामक रोग कहते हैं ॥ ४ ॥

क्षवथु के लक्षण ।

घ्राणाश्रिते मर्मणि संप्रदुष्टो यस्यानिलो नासिकया निरेति ।
कफानुजातो बहुशोऽतिशब्दस्तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञाः ॥५॥

जब घ्राण के आस पासवाले किसी मर्मस्थान की वायु दूषित होकर नासिका के मार्ग से बाहर आती और कफ का भी कुछ अंश उसके साथ रहता एवं वायु निकलने पर जोरों से शब्द होता है । इसे आयुर्वेद शास्त्र के जानकार वैद्य लोग क्षवथु (छींक) कहते हैं ॥५॥

आगन्तुज क्षवथु के लक्षण ।

तीक्ष्णोपयोगादभिजिघ्रतो वा भावान् कटूनर्कनिरीक्षणाद्वा ।
सूत्रादिभिर्वा तरुणास्थिमर्मण्युद्घाटितेऽन्यः क्षवथुर्निरेति ॥६॥

मिरच तथा सुरती आदि की झार से अथवा सूर्य की ओर निहारने से, नाक में सूत आदि की बत्ती डालने से, नाकवाली तरुण अस्थि तथा मर्मस्थान में अभिघात करने से छींक आती है ॥ ६ ॥

भ्रंशथु के लक्षण ।

प्रभ्रश्यते नासिकया तु यस्य सान्द्रो विदग्धो लवणः कफस्तु ।
प्राक्संचितो मूर्धनि सूर्य्यतप्तस्तं भ्रंशथुं रोगमुदाहरन्ति ॥ ७ ॥

जिस की नासिका से पहले का इकट्ठा, गाढ़ा और नुनखार कफ सूर्यके ताप से तप कर गिरे तो उसे लोग भ्रंशथु नामक रोग कहते हैं ॥७॥

दीप्त के लक्षण ।

घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिःसरेद्धूम इवेह वायुः ।
नासा प्रदीप्तेव च यस्य जन्तोर्व्याधिं तु तं दीप्तमुदाहरन्ति ॥ ८॥

जिस की नासिका में अतिशय दाह उत्पन्न हो जाय और उसमें से धुवें के समान वायु निकलने लगे एवं जिसकी नाक जल गई सी मालूम पड़े उसे लोग दीप्त नामक रोग कहते हैं ॥ ८ ॥

प्रतीनाह के लक्षण।

उच्छ्वासमार्गं तु कफः सवातो रुन्ध्यात् प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ।

यदि श्वास के मार्ग को वात के साथ मिल कर कफ रोक ले तो उसे लोग प्रतीनाह रोग कहते हैं ।

नासास्राव के लक्षण ।

घ्राणाद्घनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः स्रवेत् स्रावमुदाहरेत्तम् ॥९॥

यदि नाक से गाढ़ा, पीला, सफ़ेद अथवा पतला कफ गिरे तो उसे लोग नासास्राव नामक रोग कहते हैं ॥ ९ ॥

नासाशोष के लक्षण ।

घ्राणाश्रिते स्रोतसि मारुतेन गाढं प्रतप्ते परिशोषिते च ।
कृच्छ्राच्छ्वसेदूर्ध्वमधश्च जन्तुर्यस्मिन् स नासापरिशोष उक्तः॥१०॥

यदि वायु नासिका के स्रोत को अत्यन्त तपा कर सुखा देती तो प्राणी बड़ी कठिनाई के साथ ऊर्ध्वश्वास तथा अधःश्वास लेता है । इसे लोग नासापरिशोष नामक रोग कहते हैं ॥ १० ॥

पीनस के आम पक्वत्व के लक्षण ।

शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्रावस्तनुः स्वरः ।
क्षामः ष्ठीवत्यथाभीक्ष्णमामपीनसलक्षणम् ॥ ११ ॥
आमलिङ्गान्वितः श्लेष्मा घनः खेषु निमज्जति ।
स्वरवर्णविशुद्धिश्च परिपक्वस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

यदि सिर भारी रहे, किसी वस्तु में रुचि न रहे, नाक बराबर बहती जाय, स्वर महीन निकलने लगे, शरीर क्षीण होजाय, बार बार थूकता रहे तो इसे आम पीनस के लक्षण समझना चाहिए ॥ ११ ॥ यदि ऊपर कहे हुए आम पीनसके समस्त लक्षण दीखते रहें, कफ गाढ़ा हो और पानी में डालने से डूब जाय, स्वर तथा वर्ण शुद्ध निकले, ये सब पके पीनस के लक्षण हैं ॥ १२ ॥

प्रतिश्याय की संप्राप्ति ।

संधारणाजीर्णरजोतिभाष्यक्रोधर्तुवैषम्यशिरोभितापैः ।
प्रजागरातिस्वपनाम्बुशीतैरवश्यया मैथुनबाष्पधूमैः ।

संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु ॥१३॥
चयं गता मूर्धनि मारुतादयः पृथक् समस्ताश्च तथैव शोणितम् ।
प्रकुप्यमाणा विविधैः प्रकोपनैस्ततः प्रतिश्यायकरा भवन्ति हि१४

मल-मूत्र के वेग निरोध करने से, अजीर्ण से, नाक में धूलि आदि के भर जाने से, ज्यादा भाषण करने से, क्रोध करने से, ऋतु के परिवर्तन से, सिर में विशेष घाम लगने से, रात में अधिक जागने से, दिन में सोने के कारण, नए पानी से, ठंढे पानी में नहाने से, विशेष मैथुन करने तथा धुएँ के सेवन करने से, अधिक नींद लेने से अथवा मस्तक में दोष इकट्ठे होने से वायु कुपित होकर प्रतिश्याय यानी जुकाम को उत्पन्न कर देता है ॥ १३ ॥ मस्तक में वातादि दोष इकट्ठे होकर अलग अलग या एक मिल कर प्रकोप करते और प्रतिश्याय (जुकाम) को उत्पन्न कर दिया करते हैं ॥ १४ ॥

प्रतिश्याय के पूर्वरूप ।

क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽतिपूर्णता स्तम्भोऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता ।
उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः स्मृताः॥१५

छींक आना, सिरका भारी मालूम होना, देह का भारी मालूम होना और टूटना, रोंगटों का खड़े हो जाना आदि बहुत से उपद्रव तब खड़े हो जाया करते हैं जब कि जुकाम होनेवाला होता है ॥ १५ ॥

वातपित्तादिजन्य प्रतिश्याय के लक्षण ।

आनद्धा पिहिता नासा तनुस्रावप्रसेकिनी ।
गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शङ्खयोस्तथा ॥ १६ ॥
क्षवप्रवृत्तिरत्यर्थं वक्त्रवैरस्यमेव च ।
भवेत् स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्मके ॥ १७ ॥
उष्णः सपीतकः स्रावो घ्राणात् स्रवति पैत्तिके ।
कृशोऽतिपाण्डुः सततो भवेदुष्णाभिपीडितः ॥ १८ ॥

सधूममग्निं सहसा वमतीव स मानवः ।
घ्राणात् कफः कफकृते शीतः पाण्डुः स्रवेद्बहुः ।
शुक्लावभासः शुक्लाक्षो भवेद्गुरुशिरा नरः ॥ १६ ॥
कण्ठताल्वोष्ठशिरसां कण्डूभिरभिपीडितः ।

यदि वातके प्रकोपसे प्रतिश्यायकी उत्पत्ति होती तो नाक मलसे भर कर तन जाती, पतला पतला पानी बहने लगता, गला, तालु और होंठ सूख जाते, दोनों कनपटियाँ टनकने लगतीं और स्वर भर्राकर निकलता है। पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न प्रतिश्याय में गरम और पीला कफ नाक के रास्ते से निकलने लगता है। ऐसी अवस्था में मनुष्य का शरीर दुबला और पीला पड़ जाता है। गरमी से पीड़ित होनेके कारण देह तपती सी रहती है। धुएँ से मिली आगके समान नाकसे वायु निकलने लगती है। यदि कफके प्रकोप से प्रतिश्याय होता तो नाकसे सफेद, ठंढा और अधिक मात्रामें कफ निकलता है, रोगी की आकृति उजली होजाती, आँखें फूल जातीं और सिर भारी होजाता एवं गला, तालु, होंठ तथा सिरमें अतिशय खुजली होने लगती है ॥ १६–१६ ॥

सन्निपातज प्रतिश्याय के लक्षण ।

भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो यस्याकस्मान्निवर्तते ॥२०॥
संपक्को वाऽप्यपक्को वा स सर्वप्रभवः स्मृतः ।

जो प्रतिश्याय बार२ उत्पन्न होकर चाहे पके या कच्चेपन ही में अपने आप शान्त होजाया करे तो उसे सान्निपातज प्रतिश्याय समझना चाहिये॥२०॥

सन्निपातके अनन्तर होनेवाले लक्षण ।

प्रक्लिद्यते पुनर्नासा पुनश्च परिशुष्यति ॥ २१ ॥
पुनरानह्यते वाऽपि पुनर्विव्रियते तथा ।
निःश्वासो वातिदुर्गन्धो नरो गन्धान् न वेत्ति च ॥ २२ ॥
एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात् कृच्छ्रसाधनम् ।

जिस जुकाम के होने पर बराबर कफ बहता रहे या नाक सूख जाया

करे, बार २ नासिका कफसे जकड़ जाय और फिर खुल जाय, नाकसे जो श्वास आए वह दुर्गन्ध से मिला हुआ हो, यदि कोई चीज सूँघे तो सुगन्धि और दुर्गन्धि कुछ न मालूम पड़े तो उसे दुष्ट प्रतिश्याय समझना चाहिए। यह बड़ी कठिनाई से साध्य होने आता है ॥ २१ ॥ २२ ॥

रक्तज प्रतिश्याय के लक्षण ।

रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्तते ॥ २३ ॥
ताम्राक्षश्च भवेज्जन्तुरुरोघातप्रपीडितः ।
दुर्गन्धोच्छ्वासवदनो गन्धानपि न वेत्ति सः ॥२४॥

यदि रक्तके दूषित होनेसे प्रतिश्याय होता तो नाकसे रुधिर गिरने लगता, आँखें लाल होजातीं और छाती दुखने लगती है। श्वास दुर्गन्धित होकर निकलता तथा मुखसे भी दुर्गन्धि आने लगती है और सूँघने पर सुगन्धि दुर्गन्धि कुछ नहीं मालूम पड़तो ॥ २३ ॥ २४ ॥

असाध्यत्व ।

सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः ।
दुष्टतां यान्ति कालेन तदाऽसाध्या भवन्ति हि ॥ २५ ॥

यहाँ ये जितने जुकाम कहे हैं वे सब किसी प्रकार की औषधि करने से निवृत्त नहीं होते और कुछ समय बाद जब बिगड़ जाते हैं तो बिल्कुल असाध्य होजाया करते हैं ॥ २५ ॥

क्रिमिप्रतिश्याय के लक्षण ।

मूर्च्छन्ति चात्र क्रिमयः श्वेताः स्निग्धास्तथाऽणवः ।
क्रिमितो यः शिरोरोगस्तुल्यं तेनास्य लक्षणम् ॥२६॥

इस प्रतिश्याय के पुराने होजाने पर इसमें सफेद चिकने तथा छोटे २ कीड़े पड़ जाया करते हैं। क्रिमि से जायमान शिरोरोग के जो लक्षण पीछे कह आए हैं वे ही यहाँ पर भी दीखते हैं ॥ २६ ॥

प्रतिश्याय से होनेवाले उपद्रव ।

बाधिर्यमान्ध्यमघ्रत्वं घोरांश्च नयनामयान् ।
शोथाग्निसादकासांश्च वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ॥२७॥

जब कि प्रतिश्याय बहुत अधिक बढ़ जाता तो प्राणी कानों से बहरा हो जाता, आँखों से अन्धा और नाकसे किसी प्रकार की सुगन्धि दुर्गन्धि ग्रहण करने में असमर्थ होजाया करता है । इसी तरह नेत्रसे सम्बन्ध रखनेवाले विविध प्रकारके रोग खड़े होजाते हैं । कुछ दिनों बाद देह शोथ जाती, अग्नि मन्द पड़ जाता और खाँसी तथा पीनस आदि उपद्रव उत्पन्न होजाया करते हैं ॥ २७ ॥

नासारोग की संख्या ।

अर्बुदं सप्तधा शोथाश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्विधम् ।
चतुर्विधं रक्तपित्तमुक्तं घ्राणेऽपि तद्विदुः ॥ २८ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने नासारोगनिदानं समाप्तम् ॥ ५८ ॥

इस नासारोग में सात प्रकारके अर्बुद, चार प्रकारके शोथ, चार प्रकारके अर्श, चार प्रकार के पूर्वोक्त रक्त पित्त रोग भी हुआ करते हैं॥२८॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने नासारोगनिदानम् ॥ ५८ ॥

अथ नेत्ररोगनिदानम् ।

निदान

उष्णाभितप्तस्य जले प्रवेशाद्दूरेक्षणात् स्वप्नविपर्ययाच्च ।
स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच्च छर्देर्विघाताद्वमनातियोगात् ॥१॥
द्रवात्तथाऽन्ननिशि सेविताच्च विण्मूत्रवातक्रमनिग्रहाच्च ।
प्रसक्तसंरोदनकोपशोकाच्छिरोऽभिघातादतिमद्यपानात् ॥२॥
तथा ऋतूनां च विपर्ययेण क्लेशाभिघातादतिमैथुनाच्च ।
बाष्पग्रहात् सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकाराञ्जनयन्ति दोषाः॥३॥

ज्यादा देरतक घाममें रहकर तुरन्त ठंढे पानी में कूदकर स्नान कर लेने, किसी दूरस्थ वस्तु को देखने, दिन में सोने और रातको जागने, आँखों में पसीना भर जाने, आँख में धूल आदि पड़जाने, धुआँमें ज्यादा देरतक बैठे रहने, आते हुए वमनके वेग रोकने अथवा अधिक वमन करने, ज्यादातर पतली चीजें खाने पीने, मल, मूत्र तथा अपान वायुके वेग रोकने

ज्यादा रोदन करने, अधिक शोक तथा कोप करने, मस्तकमें कड़ी लगने, अधिक मदिरा पीने तथा ऋतुपरिवर्तन के कारण, किसी प्रकार मानसिक क्लेशवश, ज्यादा स्त्रीप्रसङ्ग करने से, आँसूके वेग रोकने ज्यादा महीन अक्षर आदि देखने के कारण वात, पित्त आदि दोष ने नाना प्रकार के रोगों को उत्पन्न करते हैं ॥ १–३ ॥

अभिष्यन्द के भेद ।

वातात् पित्तात् कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः ।
प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रामयाकरः ॥ ४ ॥

वात, पित्त, कफ, रक्त तथा अभिष्यन्द इनमें प्रत्येक दोष के दू होने पर प्रायः चार चार प्रकार के नेत्ररोग उत्पन्न होते हैं और ये घोर रोग सब प्रकार के नेत्ररोगों के कारण हुआ करते हैं ॥ ४ ॥

वाताभिष्यन्द का रूप ।

निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्षसंघर्षपारुष्यशिरोऽभितापाः ।
विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ।

यदि वातके प्रकोपसे आँखें आतीं तो आँखों में सुई के कोंचने के सम वेदना होती, नेत्र भारी होजाते, रोंगटे खड़े होजाते, आँखोंमें किरकिरी जान पड़ती, आँखों में रूखापन आजाता, मस्तकमें जलनके साथ स पीड़ा होने लगती, नेत्र सूख जाते और ठंढे आँसू गिरने लगते हैं ॥ ५

पैत्तिक अभिष्यन्द के लक्षण ।

दाहप्रपाकौ शिशराभिनन्दा धूमायनं बाष्पसमुच्छ्रयश्च ।
उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥६

पित्तके प्रकोपसे आँखें आतीं तो जलन होती, नेत्र पक जाते, उ यदि कोई ठंढी चीज लगाई जाती तो अच्छी मालूम पड़ती और हमे आँखों से धुआँ सा निकला करता है । ऐसी अवस्था में सूजन नहीं हो केवल आँसू बहते रहते और नेत्र पीले पड़ जाया करते हैं ॥ ६ ॥

कफज के लक्षण ।

उष्णाभिनन्दा गुरुताऽक्षिशोथः कण्डूपदेहावतिशीतता च

स्रावो मुहुः पिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति॥७॥

यदि कफ के प्रकोप से आँखें आतीं तो गरम चीज़ विशेष प्रिय मालूम होती, नेत्र भारी होजाते और सूज आते, खुजली उठती, शरीर में चट-चटाहट सी मालूम होती, आँख ठंढी सी रहती और हमेशा चिकना पानी टपकता रहता है ॥ ७ ॥

रक्ताभिष्यन्द के लक्षण ।

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च नाड्यः समन्तादतिलोहिताश्च ।
पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति॥८॥

रक्त के दोष से यदि आँखें आतीं तो नेत्रों से लाल पानी बहता, नेत्र भी लाल होजाते और नेत्र की वरौनियाँ तथा आस पास की जगहें बिल्कुल लाल रंग की होजाया करती हैं । इनके सिवाय पित्ताभिष्यन्द में जो लक्षण कह आए हैं वे ही इसमें भी रहा करते हैं ॥ ८ ॥

अभिष्यन्द से अधिमन्थ की उत्पत्ति ।

वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम् ।
तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः ॥ ९ ॥

जो मनुष्य आँखें आने पर उसके निवारण का कोई उपाय नहीं करते उनके नेत्रों में तीव्र वेदना होने लगती और अन्त में अधिमन्थ नामक रोग खड़ा होजाया करता है ॥ ९ ॥

सामान्य लक्षण ।

उत्पाट्यत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा ।
शिरसोऽर्धं च तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः ॥ १० ॥

जब कि नेत्रों में ऐसी वेदना हो मानों कोई आँखें निकाले लेता है अथवा सूजा कोंचकर मथ रहा है और आधा सिर फटने सा लगता है तब समझना चाहिए कि अब आँखे आनेवाली हैं ॥ १० ॥

मिथ्याचार से दृष्टिनाश के लक्षण ।

हन्याद्दृष्टिं श्लैष्मिकः सप्तरात्राद्धीमन्थो रक्तजः पञ्चरात्रात् ।
षड्रात्राद्वातिको वै निहन्यात मिथ्याचारात् पैत्तिकः सद्य एव॥११॥

यदि कफ के प्रकोप से अधिमंथ होता तो सात दिनमें आँखें नष्ट जातीं रक्त के दूषित होने पर आँखें आतीं तो पाँच रोज में नेत्र वे होजाते, वात के प्रकोप से आँखे उठतीं तो छ रात में आँख फूट ज और मिथ्याचार किया जाय तथा पित्त के प्रकोप से आँखें आवें तो आँख फूट जाया करती है ॥ ११ ॥

नेत्ररोग के सामनिरामका भेद।

उदीर्णवेदनं नेत्रं रागशोथसमन्वितम् ।
घर्षनिस्तोदशूलाश्रुयुक्तमामान्वितं विदुः ॥ १२ ॥

आँख आने पर जब तक असाधारण वेदना हो, उसमें लाली मौ रहे किरकिराहट बनी रहे, सुई आदि से कोंचने के समान पी होती रहे, आँसू बहता रहे तो समझना चाहिए कि अभी नेत्र का पका नहीं है, कच्चा है ॥ १२ ॥

निराम के लक्षण।

मन्दवेदनता कण्डूः संरम्भाश्रुप्रशान्तता ।
प्रशस्तवर्णता चाक्ष्णोः संपक्वदोषमादिशेत् ॥ १३

जब कि नेत्रों की पीड़ा कम हो जावे, आँखें खुजलाने लगें, सू कम हो जाय, आँसू कम आने लगे, लाली कम होकर नेत्र स होने लग जायँ तो समझना चाहिए कि अब नेत्र का रोग परिपक्व गया है ॥ १३ ॥

सशोथ पाकलिंग के लक्षण।

कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्वोदुम्बरसंनिभः ।
संरम्भी पच्यते यस्तु नेत्रपाकः स शोथजः ।
शोथहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोथजे ॥ १४

यदि नेत्रों में खुजली उठे, सूजन के साथ साथ आँसू बहता रहे, नेत्र प हुइ गूलर के समान पक कर लाल लाल हो जायँ तो उसे शोफज नेत्रर कहना चाहिए। यदि सूजन के सिवाय और समस्त उपद्रव मौजूद रहें तो उसे अशोथज नेत्ररोग जानना चाहिए ॥ १४ ॥

हताधिमन्थ के लक्षण ।

उपेक्षणादक्षि यदाऽधिमन्थो वातात्मकः सादयति प्रसह्य ।
रुजाभिरुग्राभिरसाध्य एष हताधिमन्थः खलु नाम रोगः ॥१५॥

यदि वात के प्रकोप से आँख आती और उसकी कोई चिकित्सा आदि न करके उपेक्षा की जाती तो नेत्रों में असह्य वेदना होने लगती है। ठहर ठहर कर उनमें पीड़ा की मात्रा बढ़ती जाती अन्त में वह असाध्य हताधिमंथ नामक रोग हो जाता है ॥ १५ ॥

वातपर्याय के लक्षण ।

वारंवारं च पर्येति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः ।
रुजश्च विविधास्तीव्राः स ज्ञेयो वातपर्ययः ॥ १६ ॥

यदि वात बार बार भौंहों और नेत्रों में घूमता फिरता रहे जिससे विविध प्रकार की उग्र पीड़ाएँ होती रहें तो उसे वातपर्यय नामक रोग समझना चाहिए ॥ १६ ॥

शुष्काक्षिपाक के लक्षण ।

यत्कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म संदह्यते चाविलदर्शनं यत् ।
सुदारुणं यत् प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि ॥१७॥

यदि नेत्र बिल्कुल बन्द हो जायँ, दारुण वेदना के साथ साथ आँखें रूखी हो जायँ, जलन की मात्रा विशेष रहे अथवा धुँधला सा दिखाई दे, जिसे खोलने में दारुण पीड़ा हो उस नेत्र को समझना चाहिए कि शुष्काक्षिपाक नामक नेत्ररोग ने मार दिया है ॥ १७ ॥

अन्यतोवात के लक्षण ।

यस्यावटुःकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाऽप्यनिलोऽन्यतो वा ।
कुर्याद्रुजं वै भ्रुवि लोचने च तमन्यतोवातमुदाहरन्ति ॥ १८ ॥

जिसकी पलकों, कानों, चौभड़ों, गले की नसों अथवा किसी अन्य स्थान में वायु ठहर जाय और भौंहों तथा नेत्रों में अतिशय पीड़ा देने लगे तो उसे अन्यतोवात नामक नेत्ररोग जानना चाहिए ॥१८॥

अम्लाध्युषित के लक्षण ।

श्यावं लोहितपर्यन्तं सर्वं चाक्षि प्रपच्यते ।
सदाहशोथं सास्रावमम्लाध्युषितमम्लतः ॥ १९ ॥

यदि नेत्र का एक भाग काला हो जाय और उसके आस पास की ज
लाल हो जावें, सारा नेत्र पक उठे, उसमें दाह, शोथ तथा आँसू विद्यमा
रहे तो उसे अम्लाध्युषित नामक नेत्ररोग समझना चाहिए । ख
चीजें खाने से ही इसकी उत्पत्ति होती है इसी लिए इसका अम्लाध्यु
नाम पड़ा ॥ १९ ॥

सिरोत्पात के लक्षण ।

अवेदना वाऽपि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः ।
मुहुर्विरज्यन्ति च याः स तादृग्व्याधिः सिरोत्पात इति प्रदिष्टः ॥

जिस नेत्ररोग के होने पर वेदना हो अथवा विना वेदना के उसकी उत्पा
हो और नेत्र की बरौनियां लाल हो जायँ और कभी कभी हद
ज्यादा नेत्र की लाली बढ़ जाय तो लोग उसे सिरोत्पात नामक रो
कहते हैं ॥ २० ॥

सिराप्रहर्ष के लक्षण ।

मोहात्सिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगस्तु सिराप्रहर्षः ।
ताम्राभमस्रं स्रवति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुं च ॥ २१

यदि सिरोत्पात रोग के होने पर किसी प्रकार की चिकित्सा द्वा
उसकी शान्ति का उपाय न करके उपेक्षा की जाती तो कुछ दिनों बाद व
सिरोत्पात सिराप्रहर्ष का रूप धारण कर लेता है । ऐसी अवस्था
हमेशा उसके नेत्रोंसे लाल रंग का गाढ़ा आँसू बहा करता जिस से वह प्रा
कुछ देख नहीं पाता ॥ २१ ॥

सव्रण शुक्र के लक्षण ।

निमग्नरूपं तु भवेद्धि कृष्णे सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद्वै ।
स्रावं स्रवेदुष्णमतीव यच्च तत् सव्रणं शुक्रमुदाहरन्ति ॥२२॥

यदि नेत्र की काली पुतली में लाल रंग की फूली पड़ कर उसी पुतली में छिपी रहती अथवा पुतली में सुई के समान छेद हो जाता तो उसमें से सदा गरम आँसू बहता रहता है। इसे लोग सत्रण शुक्र रोग कहते हैं ॥ २२ ॥

इस रोग की साध्यता ।

दृष्टेः समीपे न भवेत्तु यच्च न चावगाढं न च संस्रवेद्धि ।
अवेदनं वा न च युग्मशुक्रं तत् सिद्धिमायाति कदाचिदेव ॥२३॥

यदि वह फूली पुतली के समीप न पड़ कर इधर उधर हो और फूली बहुत गाढ़ी न हो तो उसे युग्मशुक्रनामक रोग कहते हैं। यह रोग शायद ही सिद्ध होता हो नहीं तो विशेष कर असाध्य ही होता है ॥ २३ ॥

अव्रण शुक्र के लक्षण ।

स्पन्दात्मकं कृष्णगतं सचोषं शङ्खेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम् ।
वैहायसाभ्रप्रतनुप्रकाशमथाव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥ २४ ॥

यदि आँखें उठने पर फूली काली पुतली में हो, वह अपने नियत स्थान से इधर उधर चलती सी दीखे, उसमें पानी न बहे, शङ्ख, चन्द्रमा तथा कुन्द के समान उसका रंग हो, आकाश बादल से घिरा हुआ मालूम पड़े, उसमें घाव न हो तो इसकी औषधि करे, यह साध्य हो सकता है ॥२४॥

कृच्छ्रसाध्यत्व

गम्भीरजातं बहुलं च शुक्लं चिरोत्थितं चापि वदन्ति कृच्छ्रम् ।
विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा चलं सिरासूक्ष्ममदृष्टिकृच्च ।
द्वित्वग्गतं लोहितमन्ततश्च चिरोत्थितं चापि विवर्जनीयम् ॥२५॥

यदि फूली बड़ी गहराई की जगह छेंके रहे, उसका आकार बड़ा हो, रंग बहुत ही सफेद हो और बहुत पुराना होजाय तो उसे कृच्छ्रसाध्य समझना चाहिए। यदि वह शुक्ररोगवाली फूली बीच से फट जाय, चौतरफा मांस से घिर जाय, चलती फिरती सी मालूम पड़े, सूक्ष्मरूप से नस के पास तक पहुँच जाय, आँखों से कुछ दिखाई न दे, आँख के दो पर्दों तक उसका असर पहुँच जाय, उसमें लालिमा भरी हुई हो, फूली

ज्यादा दिनों की पुरानी होचली हो तो उसकी औषधि न करनी चाहि
क्योंकि वह रोग असाध्य होजाता है ॥ २५ ॥

असाध्यत्व ।

उष्णाश्रुपातः पिडका च नेत्रे यस्मिन् भवेन्मुद्गनिभं च शुक्लं
तदप्यसाध्यं प्रवदन्ति केचिदन्यच्च यत्तित्तिरिपक्षतुल्यम् ॥२६

यदि बराबर गरम आँसू बहता रहे, आँख में मूँग के बराबर फुन
निकल आए तो कुछ जानकार वैद्य गण उसे असाध्य कहते हैं और उ
फूली को भी वे लोग असाध्य बतलाते हैं कि जिसका रंग तित्तिर
पखनों की नाई होगया हो ॥ २६ ॥

अक्षिपाकात्यय के लक्षण ।

श्वेतः समाक्रामति सर्वतो हि दोषेण यस्यासितमण्डलं च
तमक्षिपाकात्ययमक्षिरोगं सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः ॥ २७

जिस प्राणी की सारी काली पुतली को सफेद फूली घेर ले त
उसे लोग अक्षिपाकात्ययनामक अक्षिपाक रोग कहते हैं । तीनों दोषों
प्रकोप से इसकी उत्पत्ति होती इस लिए यह रोग असाध्य मा
गया है ॥ २७ ॥

अजकाजात के लक्षण ।

अजापुरीषप्रतिमो रुजावान् सलोहितो लोहितपिच्छिलास्रः
विगृह्य कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति तच्चाजकाजातमिति व्यवस्येत् ॥२

जिस पुरुष की आँख में बकरी की लेंड़ी के समान पीड़ा से यु
रोग उत्पन्न हो, उसमें लालिमा भरी हो और लाल रंग का चिकन
आँसू बहता रहे, वह रोग सारी काली पुतली को घेर ले और ऊँच
होजाय तो उसे लोग अजकाजात नामक रोग कहते हैं ॥ २८ ॥

प्रथमपटलस्थ दोषों के लक्षण ।

प्रथमे पटले दोषा यस्य दृष्ट्यां व्यवस्थिताः ।
अव्यक्तानि सरूपाणि कदाचिदथ पश्यति ॥ २९ ॥

जिस प्राणी के प्रथम पटल (पर्दे) में दोष विद्यमान होता उसे अने

प्रकार के रूप दिखाई देते हैं । यदि पहले पर्दे में वात दोष रहता तो भ्रमर के सदृश काला अथवा लाल या नीला रंग दिखाई देता, पित्त रहता तो सब पीला ही पीला दिखाई देता, कफ होता तो सब उजला दीखता, रक्त का दोष होता तो लाल ही लाल दिखाई देता एवं सन्निपात का दोष होता तो कई मिले जुले रंग दीखते हैं ॥ २९ ॥

द्वितीय पटलगत दोषों के लक्षण ।

दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते ।
मक्षिकामशकांश्चापि जालकानि च पश्यति ॥ ३० ॥
मण्डलानि पताकांश्च मरीचीन् कुण्डलानि च ।
परिप्लवांश्च विविधान् वर्षमभ्रं तमांसि च ॥ ३१ ॥
दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते स समीपतः ।
समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् ॥ ३२ ॥
यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीपाशं न पश्यति ।

यदि दोष नेत्र के दूसरे पर्दे तक पहुँच जाते तो उस की आँखें विह्वल हो जातीं और उसे मक्खी, मच्छड़ तथा केश समूह के समान दिखाई देने लगता है । उस रोगी की आँखों के सामने मण्डल, पताका, किरणें और कुण्डल आदि वस्तुओं के समान कितनी ही चंचल वस्तुएँ तथा वर्षा, बादल तथा अन्धकार आदि दिखाई पड़ता है । दूर की चीज़ समीप मालूम होती और और समीप की चीज़ दूर झलकती जान पड़ती है । वह व्यक्ति बहुत यत्न करके भी सुई में तागा नहीं डाल सकता क्योंकि सुईका छेद उसे भली प्रकार दीखता ही नहीं है ॥ ३०-३२ ॥

तृतीयपटलगत दोषों के लक्षण ।

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते ॥ ३३ ॥
महान्त्यपि च रूपाणि छादितानीव चाम्बरैः ।
कर्णनासाक्षिहीनानि विकृतानीव पश्यति ॥ ३४ ॥
यथादोषं च रज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसि ।

यदि दोष तीसरे पर्दे तक पहुँच जाते तो प्राणी ऊपर नीचे कुछ भी नहीं देख पाता, बड़ी बड़ी चीजें भी बादल से ढकी सी मालूम पड़ती हैं। उसके सामने का मनुष्य कान, नाक और आँख आदि से विहीन मालूम होता है। जिस बलवान् दोष से उसकी दृष्टि ढँक जाती उसी के अनुसार उसे दीखता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

ऊपर नीचे तथा और प्रदेशोंमे स्थित दोषों के लक्षण।

अधः स्थिते समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते ॥ ३५ ॥
पार्श्वस्थिते तथा दोषे पार्श्वस्थं नैव पश्यति।
समन्ततः स्थिते दोषे संकुलानीव पश्यति ॥ ३६ ॥
दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्ध्रस्वं च पश्यति।
द्विधा स्थिते द्विधा पश्येद्बहुधा चानवस्थिते ॥ ३७ ॥
दोषे दृष्ट्याश्रिते तिर्यक् स एकं मन्यते द्विधा।

यदि दोष दृष्टि के निचले भाग में रहता तो समीप की वस्तु तथा ऊपर रहता तो दूर की चीजें नहीं दीखतीं, बगल में दोष रहता तो बगल की चीजें मण्डलाकार दिखाई पड़ती हैं। दृष्टिमध्य में दोष होता तो बड़ी चीजें छोटी दीखतीं यदि दृष्टि में दो जगह दोष रहता तो प्रत्येक वस्तु दुहरी दीखती, यदि दोष किसी एक जगह न रुककर चलता फिरता रहे तो एक ही वस्तु कई प्रकार की दीखती है यदि टेढ़े तौर पर दोष रहता तो सारी चीजें दो मालूम होती हैं ॥ ३५–३७ ॥

चतुर्थ पटलगत दोषों के लक्षण।

तिमिराख्यः स वै दोषश्चतुर्थं पटलं गतः ॥ ३८ ॥
रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनाशमतः परम्।
अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे ॥ ३९ ॥
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावन्तरिक्षे च विद्युतः।
निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णून्यथ पश्यति ॥ ४० ॥
स एव लिङ्गनाशस्तु नीलिका काचसंज्ञितः।

यदि दोष दृष्टि के चौथे पर्दे में पहुँचता तो उसकी तिमिरसंज्ञा होती है। यदि दोष चारों ओर से दृष्टि को घेर लेता तो लिंगनाश नामक रोग होता है। यदि यह महारोग इतना न बढ़जाय कि चारों ओर अन्धेरा ही अन्धेरा दीखे तो सूर्य चन्द्रमा नक्षत्र और बिजली आदि स्वच्छ तेजोमय तथा सुन्दर मालूम होते हैं। इसी लिंगनाश रोग को नीलिका तथा काचरोग भी कहते हैं॥ ३८-४०॥

दोषविशेषसे रूपविशेष दर्शन।

वातेन चापि रूपाणि भ्रमन्तीव च पश्यति॥ ४१॥
आविलान्यरुणाभानि व्याविद्धानीव मानवः।
पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गुणान्॥ ४२॥
नृत्यतश्चैव शिखिनः सर्वं नीलं च पश्यति।
कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च॥ ४३॥
सलिलप्लावितानीव परीजाड्यानि मानवः।
पश्येद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च॥ ४४॥
स सितान्यपि कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः।
सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानीव पश्यति॥ ४५॥
बहुधा च द्विधा वापि सर्वाण्येव समन्ततः।
हीनाधिकाङ्गान्यपि तु ज्योतींष्यपि च भूयसा॥ ४६॥

वात के प्रकोप से उत्पन्न लिंगनाश रोग में सब चीजें घूमती सी मालूम पड़तीं और उनका स्वरूप मटमैला, लाल तथा कुछ टेढ़ा बेढ़ा दीखता है। पित्त के प्रकोप से नेत्ररोग होता तो सूर्य, खद्योत (जुगनू) इन्द्रधनुष, बिजली तथा नाचते हुए मयूर आदि समस्त वस्तुयें नीले रंग की दिखाई देती हैं। कफ के प्रकोप से उत्पन्न रोग में मनुष्य संसार की सारी वस्तुओं को चिकनी, उज्ज्वल, पानी से भीगी तथा जड़रूप में देखता है। रक्त के विकार से उत्पन्न नेत्ररोग में सब चीजें लाल, अन्धकारमयी तथा चित्र

विचित्र वर्ण की काली पीली रूप में दिखाई देती हैं। सन्निपात से जायम नेत्ररोग में सब चीजें अनेक वर्ण की, उछलती-कूदती और एक ही वस्तु खण्ड में दिखाई देती है। उसी प्रकार कोई मनुष्य सामने आता तो किसी अंग से हीन, अधिक अंगवाला तथा चमकताहुआ दीखता है ॥४१-

परिम्लायि तिमिर के लक्षण ।

पित्तं कुर्यात् परिम्लायि मूर्च्छितं पित्ततेजसा ।
पीता दिशस्तु खद्योतान् भास्करं चापि पश्यति ॥४
विकीर्यमाणान् खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव वा ।

यदि पित्तरक्त के तेज से मिल जाता तो परिम्लायि नामक रोग उत्पन्न करता है इस से समस्त दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा आदि प्रकाशमान चीजें पीली दीखतीं और वृक्षों पर सर्वदा जुगनू से चमकते हुए दिख देते हैं ॥ ४७ ॥

षड्विधलिंगनाश ।

वक्ष्यामि षड्विधं रागैर्लिङ्गनाशमतः परम् ॥ ४८ ।

अब रोगी के रंग के अनुसार छ प्रकार लिङ्ग नाश रोग कहेंगे ॥४

वातादिरोगों के देश ।

रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात्
कफात् सितः शोणितजः सरक्तः समस्तदोषप्रभवो विचित्रः॥४

वात से जायमान लिंगनाश रोग लाल वर्ण का होता अत एव उ रोगी को सारी चीजें लाल ही लाल दिखाई देती हैं। कफ से जायमा रोग सफेद होता और रक्त के प्रकोप से जायमान-रोग का वर्ण लाल हो इस लिए सब लाल ही लाल दीखता है। सन्निपात से उत्पन्न रोग विचित्र वर्ण होता इस लिए सब विचित्र वर्ण का दिखाई देता है ॥ ४९ ।

वातिकरोगका विशिष्ट लक्षण ।

अरुणं मण्डलं दृष्ट्यां स्थूलकाचारुणप्रभम् ।

वायु के दोष से उत्पन्न दृष्टिरोग में मोटे काँच के समान लाल वर्ण मण्डल दिखाई देता है ।

परिम्लायिका विशिष्ट लक्षण ।

परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लायि नीलं च मण्डलम्॥५०॥
दोषक्षयात् स्वयं तत्र कदाचित् स्यात्तु दर्शनम् ।

—अथवा मटमैला और नीला रंग दीखता एवं दोष के नाश हो जाने पर जिसका अधिक दोष रह जाता वही दिखाई देता है ॥ ५० ॥

विशेष विवरण ।

अरुणं मण्डलं वाताच्चञ्चलं परुषं तथा ॥ ५१ ॥
पित्तान्मण्डलमानीलं कांस्याभं पीतमेव च ।
श्लेष्मणा बहुलं पीतं शङ्खकुन्देन्दुपाण्डुरम् ॥ ५२ ॥
चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवाम्भसः ।
मृज्यमाने च नयने मण्डलं तद्विसर्पति ॥ ५३ ॥
प्रवालपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम् ।
दृष्टिरागो भवेच्चित्रो लिङ्गनाशे त्रिदोषजे ।
यथास्वं दोषलिङ्गानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि ॥ ५४ ॥

पित्त से जायमान मण्डल नील, कांस्यवर्णका तथा पीला रंग होता है। कफ के दोष से उत्पन्न रोग बहुत चिकना तथा शंख, कुन्द और चन्द्रमा के समान उज्ज्वलवर्ण का होता है। पुरइन के पत्ते पर पड़े हुए जल की बूँदों की तरह बार बार मण्डल बाँध कर आँखों से पानी बहा करता या इधर उधर डोलता फिरता है। रक्त के दोष से उत्पन्न लिङ्गनाश नामक रोग में प्रवाल तथा कमलदल के समान लाल मण्डल नेत्रों में दीखने लगता है। तीनों दोष अर्थात् सन्निपात से जायमान लिङ्गनाश रोग में विविध प्रकार का मण्डल दिखाई देने लगता है। इस रोग में दोषों के अनुसार प्रत्येक लक्षण दिखाई देते हैं ॥ ५१–५४ ॥

वक्ष्यमाण विकारों के लक्षण ।

षड् लिङ्गनाशाः षडिमे च रोगा दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव वाच्याः ।

छ लिङ्गनाश रोग एवं छ दृष्टि के आश्रित लिङ्गनाश रोग दोनों कर कुल बारह तरह के लिङ्गनाश रोग होते हैं।

पित्तविदग्धदृष्टिलिङ्ग के लक्षण।

पित्तेन दुष्टेन सदा तु दृष्टिः पीता भवेद्यस्य नरस्य किञ्चित्॥
पीतानि रूपाणि च तेन पश्येत् स वै नरः पित्तविदग्धदृष्टिः
प्राप्ते तृतीयं पटलं तु दोषे दिवा न पश्येन्निशि चेक्षते सः॥५६
रात्रौ च शीतानुगृहीतदृष्टिः पित्ताल्पभावादपि तानि पश्येत्

यदि पित्त के दोष से नेत्ररोग होता तो आँखें पीली होजातीं संसार की समस्त वस्तुयें पीली ही पीली दिखाई देती हैं। इसे लोग पि विदग्धदृष्टि नामक नेत्ररोग कहते हैं। यदि नेत्ररोगी के दोष आँख तीसरे पर्दे तक पहुँच जाते तो वह दिन में नहीं देखता किन्तु रात में दे है क्योंकि रात्रि में आँखें शीतल होजातीं और पित्त का वेग कम होज है। इसी लिए रात्रि को ज्यादा दिखाई देता है॥ ५५॥ ५६॥

श्लेष्मविदग्ध के लक्षण।

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि तु मन्यते सः॥५
त्रिषु स्थितोऽल्पः पटलेषु दोषो नक्तान्ध्यमापादयति प्रसह्य।
दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिः पश्येत्तु रूपाणि कफाल्पभावात्॥

उसी प्रकार जिसकी आँखें कफ से विदग्ध होजातीं तो उसे सफ़ेद ही सफ़ेद दीखता है। जब कफ का दोष पहुँचते पहुँचते नेत्र तीसरे पर्दे तक पहुँच जाता तो वह प्राणी रात में नहीं देख पाता और इसे रात्र्यन्ध (रतौंधी) रोगी कहते हैं। वह दिन में सूर्य की कृपा से देखता क्योंकि उस समय कफ की मात्रा कम रहती है॥ ५७॥ ५८॥

धूमदर्शी के लक्षण।

शोकज्वरायासशिरोभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः।
धूम्रांस्तथा पश्यति सर्वभावान् स धूमदर्शीति नरः प्रदिष्टः॥५

किसी तरह के शोक, ज्वर, अतिशय परिश्रम तथा मस्तक में वि

धूप लगने से जिसकी आँखें खराब होतीं उसे दुनिया की सब चीजें धूमिल रंग की दीखतीं और उसको लोग धूमदर्शी रोगी कहते हैं ॥ ५९ ॥

ह्रस्वजाड्य के लक्षण ।

यो ह्रस्वजाड्यो दिवसेषु कृच्छ्राद्ध्रस्वानि रूपाणि च तेन पश्येत्।

जिस पुरुष को ह्रस्वजाड्य नामक दृष्टिरोग होजाता वह दिन में बड़ी कठिनाई से सब चीजों को चाहे वे बड़ी ही क्यों न हों छोटी दीखती हैं ।

नकुलान्ध्य के लक्षण ।

विद्योतते तस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत् ॥ ६० ॥
चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्येत् स वै विकारो नकुलान्ध्यसंज्ञः।

जिसके नेत्र अनेक प्रकार के दोषों से न्योले के समान दीखने लगें और दिन में चित्र विचित्र रंग की चीजें दीखें तो उस रोग की नकुलान्ध्य संज्ञा है ॥ ६० ॥

गंभीरिका के लक्षण ।

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा संकोचमभ्यन्तरतस्तु याति ॥ ६१ ॥
रुजावगाढा च तमक्षिरोगं गम्भीरिकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः।

वात के दोष से जिसकी आँख एक विचित्र रूप की होकर भीतर को सिकुड़ जाय, उसमें अतिशय वेदना हो तो उसे अच्छी प्रकार जाननेवाले वैद्यगण गम्भीरिका रोग कहते हैं ॥ ६१ ॥

आगन्तुक नेत्रविकार के लक्षण ।

बाह्यौ पुनर्द्वाविह संप्रदिष्टौ निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च ॥ ६२ ॥
निमित्ततस्तत्र शिरोऽभितापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यन्दनिदर्शनः सः।
सुरर्षिगन्धर्वमहोरगाणां संदर्शनेनापि च भास्करस्य ॥ ६३ ॥
हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य यस्य स लिङ्गनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः।
तत्राक्षि विस्पष्टमिवावभाति वैदूर्यवर्णा विमला च दृष्टिः ॥ ६४ ॥

बाह्य दृष्टिरोग दो प्रकार के होते हैं-एक निमित्तज और दूसरा

अनिमित्तज । उनमें जो निमित्त से होता वह सिर में धूप लगने आँखें उठ आने के कारण होता है । जो नेत्ररोग देवता, ऋषि, तथा महासर्पों और सूर्य की ओर देखने से होता वह अनिमित्तज कहा है। इस के होने पर आँखें वैदूर्यमणिके समान साफ और निर्मल दी हैं ॥ ६२-६४ ॥

प्रस्तार्यर्म के लक्षण ।

प्रस्तार्यर्म तनुस्तीर्णं श्यावं रक्तनिभं सिते ।

यदि नेत्र की पुतली के सफेद हिस्से में पतला, लम्बा, काला त लालिमा लिए हुए कुछ मांस का अंश निकला दिखाई दे तो उसे लो प्रस्तार्यर्म रोग कहते हैं ।

शुक्लार्म के लक्षण ।

सश्वेतं मृदु शुक्लार्म शुक्ले तद्वर्धते चिरात् ॥ ६५ ॥

यदि नेत्र में सफेद और मुलायम मसा बात की बात में बढ़ आए तो उसे लोग शुक्लार्म नामक रोग कहते हैं ॥ ६५ ॥

रक्तार्म के लक्षण ।

पद्माभं मृदु रक्तार्म यन्मांसं चीयते सिते ।

यदि पुतली के सफेद हिस्से में कमलदल के समान लाल और मुलायम मांस बढ़ आए तो उसे लोग रक्तार्म नामक रोग कहते हैं ॥

अधिमांसार्म के लक्षण ।

पृथु मृद्वधिमांसार्म बहलं च यकृन्निभम् ॥

यदि नेत्रके उज्ज्वल भागमें यकृत् यानी कलेजे की तरह कुछ लाल और काला मिलाहुआ कोमल मांस निकल आए तो उसे लोग अधिमांसार्म रोग कहते हैं ।

स्नाय्वर्म के लक्षण ।

स्थिरं प्रस्तारि मांसाढ्यं शुष्कं स्नाय्वर्म पञ्चमम् ॥ ६६ ॥

जो खूब लम्बा चौड़ा स्थिर और सूखा मसा आँखके सफेद भागमें निकल आए तो उसे लोग स्नाय्वर्म नामक रोग कहते हैं ॥ ६६ ॥

शुक्तिका के लक्षण ।

श्यावाः स्युः पिशितनिभाश्च बिन्दवो ये
शुक्त्याभाः सितनियताः स शुक्तिसंज्ञः ।

यदि शुक्तिके समान चमकते हुए मांसके माफिक वर्णवाले बूँद कुछ कालिमा लिएहुए उत्पन्न हों तो उन्हें लोग शुक्तिरोग कहते हैं ।

अर्जुन के लक्षण ।

एको यः शशरुधिरोपमश्च बिन्दुः
शुक्लस्थो भवति तमर्जुनं वदन्ति ॥ ६७ ॥

यदि नेत्र के श्वेत भाग में खरगोश के रुधिर समान केवल एक बूँद निकल आए तो उसे लोग अर्जुन नामक रोग कहते हैं ॥ ६७ ॥

पिष्टक के लक्षण ।

श्लेष्ममारुतकोपेन शुक्ले पिष्टं समुन्नतम् ।
पिष्टवत् पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसंनिभम् ॥ ६८ ॥

यदि आँख के सफेद भाग में कफ तथा वात के प्रकोप से पीठी के समान कुछ मांस निकल आए और मैले आइने की तरह उस का रंग हो तो उसे लोग पिष्टक रोग कहते हैं ॥ ६८ ॥

सिराजाल के लक्षण ।

जालाभः कठिनसिरो महान् सरक्तः
संतानः स्मृत इह जालसंज्ञितस्तु ।

यदि जाल की तरह कठिन नसें आँखों में तन जायँ और उनका लाल रंग हो तो उसे लोग सिराजाल नामक रोग कहते हैं ।

सिराज पिडका के लक्षण ।

शुक्लस्थः सितपिडकाः सिरावृता या-
स्ता ब्रूयादसितसमीपजाः सिराः स्युः ।

यदि नेत्र की काली पुतली के समीप सफेद भाग में नसों से घिरी हुई उज्ज्वल वर्ण की फुन्सियाँ निकल आएँ तो उसे सिराज रोग कहते हैं ॥

बलासग्रथित के लक्षण ।

कांस्याभो मृदुरथ वारिबिन्दुकल्पो
विज्ञेयो नयनसिते बलाससंज्ञः ॥ ६९ ॥

यदि नेत्र के उज्ज्वल भाग में जलबिन्दु के समान कांस के रंग का बिन्दु निकल आता तो उसे बलास रोग जानना चाहिए ॥ ६९ ॥

पूयालसाख्य के लक्षण ।

पक्कः शोथः सन्धिजो यः सतोदः स्रवेत् पूयं पूति पूयालसाख्यः ।

यदि सफेद और काली पुतली की सन्धि में एक गाँठ निकल आए वह पके फूटे, कोचने के समान पीड़ा हो और उस में से दुर्गन्धमय पीब बहा करे तो उसे लोग पूयालस नामक रोग कहते हैं ॥

श्लेष्मोपनाह के लक्षण ।

ग्रन्थिर्नाल्पो दृष्टिसन्धावपाकी कण्डूप्रायो नीरुजस्तूपनाहः॥७०॥

यदि काली पुतली और उज्ज्वल भाग की सन्धि में एक बड़ी सी गाँठ निकल आए वह पके नहीं केवल खुजलाती रहे तो उसे लोग उपनाह नामक रोग कहते हैं ॥ ७० ॥

चारों प्रकारके स्रावों के लक्षण ।

गत्वा सन्धीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः स्रावान् लक्षणैः स्वैरुपेतान् ।
तं हि स्रावं नेत्रनाडीति चैके तस्या लिङ्गं कीर्तयिष्ये चतुर्धा॥७१॥

वात, पित्त और कफ ये दोष आँसू के मार्गसे नेत्र की सन्धियों तक पहुँच जाते और वहाँ अपने अपने लक्षणों के अनुसार पदार्थों को टपकाते हैं । उसे कुछ लोग स्राव रोग एवं कोई कोई नेत्रनाडी नामक रोग कहते हैं । उनके चार प्रकार लक्षण होते हैं, उन्हें कहूंगा ॥ ७१ ॥

पूयास्राव के लक्षण ।

पाकात् सन्धौ संस्रवेद्यस्तु पूयं पूयास्रावोऽसौ गदः सर्वजस्तु ।

यदि नेत्र की सन्धि में फोड़ा हो और उस में से पीब बहे तो उसे लोग पूयास्राव नामक रोग कहते हैं । यह तीनों दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होता है ।

श्लेष्मस्राव के लक्षण ।

श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं यः स्रवेत्तु श्लेष्मास्रावोऽसौ विकारो मतस्तु।७२।

जिस के पाका में से श्वेत, सान्द्र तथा चिकना पीब बहे और पीड़ा हो तो उसे लोग श्लेष्मस्राव नामक रोग कहते हैं ॥ ७२ ॥

रक्तस्राव के लक्षण ।

रक्तस्रावः शोणितोत्थो विकारः स्रवेदुष्णं तत्र रक्तं प्रभूतम् ।

रुधिर के विकार से नेत्र में जो पाका होता इसमें बहुधा गरम रक्त बहा करता है । इसे लोग रक्तस्राव रोग कहते हैं ॥

पित्तस्राव के लक्षण ।

हरिद्राभं पीतमुष्णं जलाभं पित्तात्स्रावः संस्रवेत् सन्धिमध्यात्।७३।

आँख की सन्धि में उत्पन्न पाका से यदि हल्दी के समान पीले रंग का गरम पानी बहे तो उसे लोग पित्तस्राव नामक रोग कहते हैं ॥ ७३ ॥

पर्वणी तथा अलजी के लक्षण ।

ताम्रा तन्वी दाहशूलोपपन्ना
रक्ताज्ज्ञेया पर्वणी वृत्तशोथा ।
जाता सन्धौ कृष्णशुक्लेऽलजी स्या-
त्तस्मिन्नेव ख्यापिता पूर्वलिङ्गैः ॥ ७४ ॥

यदि सन्धि में रक्त के प्रकोप से लाल, पतली, दाह तथा शूल से युक्त गोल गोल शोथ हो तो उसे लोग पर्वणी नामक रोग कहते हैं । यदि उसी काले और उजले भाग की सन्धि में पूर्वकथित लक्षणों के अनुसार फुन्सी निकल आती तो उसे लोग अलजी नामक रोग कहते हैं ॥ ७४ ॥

क्रिमिग्रन्थि के लक्षण ।

क्रिमिग्रन्थिर्वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कण्डूं कुर्युः क्रिमयः सन्धिजाताः ।
नानारूपा वर्त्मशुक्लान्तसन्धौ चरन्त्यन्तर्लोचनं दूषयन्तः ॥७५॥

यदि ऊपर तथा नीचे की बरौनी में एक प्रकार के छोटे २ कीड़े उत्पन्न हो जाते और नेत्रों में खुजलाहट उत्पन्न करते और नेत्र को

अनेक प्रकार से दूषित करते हुए इधर उधर घूमते रहते तो लोग इसे क्रिमि-ग्रन्थि नामक रोग कहते हैं ॥ ७५ ॥

उत्सङ्गपिडका के लक्षण ।

अभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यतो वर्त्मनश्च या ।
सोत्सङ्गोत्सङ्गपिडका सर्वजा स्थूलकण्डुरा ॥ ७६ ॥

बाहर बरौनी के ऊपर भीतर को मुख किए यदि लाल रङ्गकी ऊँची फुन्सी निकल आए तो उसे लोग स्थूलकण्डुरा कहते हैं । यह रोग तीनों दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होता और इसमें जोरों के साथ खुजली उठती है ॥७६॥

कुम्भिका के लक्षण ।

वर्त्मान्ते पिडकाध्माता भिद्यन्ते च स्रवन्ति च ।
कुम्भीकाबीजप्रतिमाः कुम्भीकाः सन्निपातजाः ॥७७॥

यदि बरौनी के किनारे फूली हुई फुन्सी निकले और फूट कर बहने लगे तो इसे लोग कुम्भिका नामक रोग कहते हैं । इसमें भी वात-पित्त-कफ ये तीनों दोष कुपित रहते हैं । कुम्भी के बीज समान इसका आकार रहता इसी लिए इसका कुम्भिका नाम पड़ा ॥ ७७ ॥

पोथकी के लक्षण ।

स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसंनिभाः ।
रुजावत्यश्च पिडकाः पोथक्य इति कीर्तिताः ॥ ७८ ॥

यदि लाल सरसों के समान बड़ी २, बहने वाली, खुजली से युक्त, वेदनासहित फुन्सी निकल आए तो उसको पोथकी नामक पिडका कहते हैं ॥ ७८ ॥

वर्त्मशर्करा के लक्षण ।

पिडका या खरस्थूलसूक्ष्माभिरभिसंवृता ।
वर्त्मस्था शर्करा नाम स रोगो वर्त्मदूषकः ॥ ७९ ॥

यदि नेत्र की बरौनी के ऊपर एक रूखी और बड़ी सी फुन्सी छोटी २ फुंसियों से घिरी हुई निकले तो इसे लोग वर्त्मशर्करा नामक रोग कहते हैं । यह रोग बरौनी को दूषित कर डालता है ॥ ७९ ॥

अर्शोवर्त्म के लक्षण ।

एर्वारुबीजप्रतिमाः पिडका मन्दवेदनाः ।
श्लक्ष्णाः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते ॥८०॥

यदि पलक के ऊपर ककड़ी के बीज के समान साधारण वेदना-वाली छोटी छोटी फुन्सियाँ निकल आएँ तो लोग इसे अर्शोवर्त्म नामक रोग कहते हैं । ये फुन्सियाँ चिकनी और खुरखुरी होती हैं ॥ ८० ॥

शुष्कार्श के लक्षण ।

दीर्घाङ्कुरः खरः स्तब्धो दारुणोऽभ्यन्तरोद्भवः ।
व्याधिरेषोऽभिविख्यातः शुष्कार्शो नाम नामतः ॥८१॥

यदि पलक के ऊपर लम्बे लम्बे अंकुर की तरह खरा तथा कड़ा और दारुण फोड़ा भीतर से निकल आए तो इसे लोग शुष्कार्श नामक रोग कहते हैं ॥ ८१ ॥

अञ्जननासिका के लक्षण ।

दाहतोदवती ताम्रा पिडका वर्त्मसंभवा ।
मृद्वी मन्दरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साऽञ्जननामिका ॥ ८२ ॥

पलकों पर यदि दाह तथा कोंचने के समान साधारण पीड़ा से युक्त लाल रंग की कोमल पिरकियाँ निकल आतीं तो उन्हें अञ्जननासिका रोग कहते हैं ॥ ८२ ॥

बहुलवर्त्म के लक्षण ।

वर्त्मोपचीयते यस्य पिडकाभिः समन्ततः ।
सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्बहुलवर्त्म तत् ॥ ८३ ॥

जिसकी बरौनी में पलक के रंग से मिलती जुलती बहुत सी फुंसियां निकल आएँ तो इनकी बहुलवर्त्म संज्ञा होती है ॥ ८३ ॥

वर्त्मबन्धक के लक्षण ।

कण्डूमताऽल्पतोदेन वर्त्मशोथेन यो नरः ।
न सं छादयेदक्षि यत्रासौ वर्त्मबन्धकः ॥ ८४ ॥

यदि खुजलाहट और साधारण वेदना से भरी फुंसियों से सारी आँ घिर आयें तो इसे लोग वर्त्मबन्धक रोग कहते हैं ॥ ८४ ॥

क्लिष्टवर्त्म के लक्षण ।

मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव च ।
अकस्माच्च भवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्मेति तद्विदुः ॥ ८५ ॥

यदि बरौनी में किसी प्रकार की फुंसी आदि न निकले किन्तु थोड़ी पीड़ा के साथ पलक एकाएक बिल्कुल लाल हो जाय तो उसे क्लिष्टवर्त नामक रोग कहते हैं ॥ ८५ ॥

वर्त्मकर्दम के लक्षण ।

क्लिष्टं पुनः पित्तयुतं शोणितं विदहेद्यदा ।
ततः क्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमः ॥ ८६ ॥

उसी क्लिष्टवर्त्मा रोग में यदि पित्त के प्रकोप से वह लाली जल ज और मामूली तौर से पिचपिचाने लगे तो उसे लोग वर्त्मकर्दम ना रोग कहते हैं ॥ ८६ ॥

श्याववर्त्म के लक्षण ।

यद्वर्त्म बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम् ।
तदाहुः श्याववर्त्मेति वर्त्मरोगविशारदाः ॥ ८७ ॥

यदि बरौनी के ऊपर निकली हुई फुंसियाँ काले रंगकी, फूली भ साधारण पीड़ासम्पन्न हों तो उसे नेत्र रोग के जाननेवाले चतुर वैद्यग श्याववर्त्मा नामक रोग कहते हैं ॥ ८७ ॥

प्रक्लिन्नवर्त्म के लक्षण ।

अरुजं बाह्यतः शूनं वर्त्म यस्य नरस्य हि ।
प्रक्लिन्नवर्त्म तद्विद्यात् क्लिन्नमत्यर्थमन्ततः ॥ ८८

जिसकी पलक के ऊपरी भाग में वेदनाविहीन शोथ हो जाय त बरौनी कीचड़ आदि से सनी भई गीली बनी रहे तो वह प्रक्लिन्नवर्त्मना रोग कहा जाता है ॥ ८८ ॥

अपरिक्लिन्न के लक्षण ।

यस्य धौतान्यधौतानि संबध्यन्ते पुनः पुनः ।
वर्त्मान्यपरिपक्कानि विद्यादक्लिन्नवर्त्म तत् ॥ ८९ ॥

जिसकी बरौनी पुनः पुनः धोने पर भी कीचड़ से सन जाया करे तथा पलक बिल्कुल ही पक जाय तो वह अक्लिन्नवर्त्म नामक रोग कहलाता है ॥ ८९ ॥

वातहतवर्त्म के लक्षण ।

विमुक्तसन्धि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य न मील्यते ।
एतद्वातहतं वर्त्म जानीयादक्षिचिन्तकः ॥ ९० ॥

जिस प्राणी के नेत्रों की सन्धियाँ कुछ हट बढ़ जायँ इस कारण आँखें मुंद न सकें तो नेत्ररोग पर विचार करनेवाले वैद्य को चाहिये कि वह इसे हतवर्त्म नामक रोग समझे ॥ ९० ॥

अर्बुद के लक्षण ।

वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् ।
आचक्षीतार्बुदमिति सरक्तमविलम्बितम् ॥ ९१ ॥

यदि पलक के भीतरी हिस्से में वेदनारहित लाल और विषम गाँठ पड़ जाय तो इसे अर्बुद रोग कहना चाहिए ॥ ९१ ॥

निमेष के लक्षण ।

निमेषिणीः सिरा वायुः प्रविष्टो सन्धिसंश्रयाः ।
प्रचालयति वर्त्मानि निमेषं नाम तद्विदुः ॥ ९२ ॥

यदि पलक को समेटने और उभाड़नेवाली वायु पलक की नस में आकर रुकजाय इस लिए पलकों का खुलना तथा बन्द होना अधिकता से जारी होजाय तो इसे लोग निमेषरोग कहते हैं ॥ ९२ ॥

शोणितार्श के लक्षण ।

यः स्थितो वर्त्ममध्ये तु लोहितो मृदुरङ्कुरः ।
तद्रक्तजं शोणितार्शश्छिन्नं छिन्नं प्रवर्धते ॥ ९३ ॥

यदि नेत्र की बरौनी पर लाल वर्ण के कोमल २ अंकुर निकल आ तो उसे रक्त के प्रकोप से उत्पन्न शोणितार्श नामक रोग कहना चाहिए। ये अंकुर बार बार काटने पर भी बढ़ जाया करते हैं ॥ ६३ ॥

लगण के लक्षण।

अपाकी कठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवोऽरुजः।
लगणो नाम स व्याधिर्लिङ्गतः परिकीर्तितः ॥ ६४ ॥

यदि नेत्र की बरौनी में कठिन, मोटी २ और पीड़ायुक्त गाँठ निक आए, उसमें खुजली विशेष उठे और वह ग्रन्थि चिकनी तथा बेर बराबर हो तो उसे लोग लगण नामक रोग जानें ॥ ६४ ॥

बिसवर्त्म के लक्षण।

त्रयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि वर्त्मनोः।
प्रस्रवन्त्यन्तरुदकं बिसवद्बिसवर्त्म तत् ॥ ६५ ॥

नेत्र के ऊपर नीचेवाली दोनों बरौनियों के बाहरी भाग में वात-पित्त कफ ये तीनों दोष कुपित होकर शोथ उत्पन्न करदें फिर उसमें अनेक छि कर के सूत्र के समान जल की धार बहाने लगें तो लोग उसे बिसवर नामक रोग कहते हैं ॥ ६५ ॥

कुंचन के लक्षण।

वाताद्या वर्त्मसंकोचं जनयन्ति मला यदा।
तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुञ्चनं नाम तद्विदुः ॥ ६६ ॥

यदि वातादिक तीनों दोष कुपित होकर पलकों को बिल्कुल समे लें इस कारण प्राणी कुछ देख न सके तो लोग इसे कुञ्चन नामक रो कहते हैं ॥ ६६ ॥

पक्ष्मकोप के लक्षण।

प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्यक्षि विशन्ति हि।
घृष्यन्त्यक्षि मुहुस्तानि संरम्भं जनयन्ति च ॥ ६७
असिते सितभागे च मूलकोषात् पतन्त्यपि।

पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः ॥ ९८ ॥

वात के द्वारा यदि पलकें बार बार मुँजकर घिसें और आँखों के भीतर घुसजायँ तो इससे सूजन हो आती है, ये सूजन चाहे नेत्र की पुतली के सफेद भाग में हो अथवा काले हिस्से में धीरे धीरे यह बरौनी की जड़ में घुसती जाती है इसे लोग पक्ष्मकोप नामक रोग कहते हैं॥९७॥९८॥

पक्ष्मशात के लक्षण ।

वर्त्मपक्ष्माशयगतं पित्तं रोमाणि शातयेत् ।
कण्डूं दाहं च कुरुते पक्ष्मशातं तमादिशेत् ॥ ९९ ॥
नव सन्ध्याश्रयास्तेषु वर्त्मजास्त्वेकविंशतिः ।
शुक्लभागे दशैकश्च चत्वारः कृष्णभागजाः ॥ १०० ॥
सर्वाश्रयाः सप्तदश दृष्टिजा द्वादशैव तु ।
बाह्यजौ द्वौ समाख्यातौ रोगौ परमदारुणौ ॥ १०१ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने नेत्ररोगनिदानं समाप्तम् ॥ ५९ ॥

बरौनी तथा पलकों में पहुँच कर दूषित पित्त बरौनियों को छोटी करके गिरा दिया करता है इससे खुजली और दाह होने लगती है। इसे लोग पक्ष्मशात नामक रोग कहते हैं ॥ ९९ ॥ काली और सफेद पुतलियों की सन्धि में ९, बरौनियों में २१, पुतली के श्वेतभाग में ११, काले भाग में ४, सारे नेत्र में १७, दृष्टि में १२ एवं नेत्र के हिस्से भर में २ प्रकार के नेत्ररोग हुआकरते हैं ॥ ९९ ॥ १०० ॥ ॥ १०१ ॥

इति श्रीरामतेजपाण्डेयविरचितमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते
माधवनिदाने नेत्ररोगनिदानम् ॥ ५९ ॥

अथ शिरोरोगनिदानम् ।

शिरोरोग के भेद व संख्या ।

शिरोरोगास्तु जायन्ते वातपित्तकफैस्त्रिभिः ।
सन्निपातेन रक्तेन क्षयेण क्रिमिभिस्तथा ॥

सूर्यावर्तानन्तवाताऽर्धावभेदकशङ्खकैः ॥ १ ॥

वात-पित्त और कफ इन तीनों से तीन प्रकार के, सान्निपात, रक्त, क्षय और क्रिमि इनसे चारप्रकार के, सूर्यावर्त, अनन्तवात, अर्धभेदक तथा शङ्खक ये सब मिलाकर११प्रकार के शिरोरोग हुआ करते हैं ॥ १ ॥

वातिक शिरोरोग के लक्षण ।

यस्यानिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम् ।
बन्धोपतापैः प्रशमश्च यत्र शिरोऽभितापः स समीरणेन ॥ २ ॥

जिस प्राणी के सिर में बिना किसी कारण पीड़ा होने लगे और रात्रि में विशेष दर्द हो, बाँधने तथा सेंकने से शान्त होजाय तो उसे वातज शिरोरोग जानना चाहिए ॥ २ ॥

पित्तज शिरोरोग के लक्षण ।

यस्योष्णमङ्गारचितं यथैव भवेच्छिरो धूप्यति चाक्षिनासम् ।
शीतेन रात्रौ च भवेच्छमश्च शिरोऽभितापः स तु पित्तकोपात् ॥३॥

जिस का माथा अंगारे के समान गरम होजाय, आँखों और नाक में भी उसी प्रकार जलन होने लगे, किसी ठण्डी चीज़ के लगाने तथा रात्रिके समय आप से आप शान्त होजाय तो उसे पित्तज शिरोरोग समझना चाहिए ॥ ३ ॥

श्लेष्मज के लक्षण ।

शिरो भवेद्यस्य कफोपदिग्धं गुरु प्रतिष्टब्धमथो हिमं च ।
शूनाक्षिकूटं वदनं च यस्य शिरोऽभितापः स कफप्रकोपात् ॥४॥

कफ के प्रकोप से जिस का माथा दुखता उसका सिर भारी रहता, किसी बन्धन से बँधा हुआ सा जान पड़ता और पर्याप्त ठंडक रहती साथ ही नेत्र और मुख शोथ जाया करते हैं ॥ ४ ॥

सान्निपातिक के लक्षण ।

शिरोऽभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिङ्गानि समुद्भवन्ति ।

सन्निपात से जायमान शिरोरोग में तीनों दोषों के लक्षण दीखते हैं ।

रक्तज के लक्षण ।

रक्तात्मकः पित्तसमानलिङ्गः स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च ॥५॥

रक्त के प्रकोप से उत्पन्न शिरोरोग में ऊपर कहे हुए पित्तज शिरोरोग के समान ही सब लक्षण दीखते हैं। इस में विशेषता केवल इतनी होती है कि मारे दर्द के मस्तक छुआ नहीं जाता॥ ५ ॥

क्षयज के लक्षण ।

असृग्वसाश्लेष्मसमीरणानां शिरोगतानामिह संक्षयेण ।
क्षयप्रवृत्तः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ।
संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ॥ ६ ॥

रक्त, वसा (चर्बी), कफ जो मस्तक में सर्वदा रहा करते हैं वे यदि नष्ट होजायँ तो मस्तक में बड़ी पीड़ा होने लगती, छींक आती, माथा जलने लगता और असह्य वेदना होती है। पसीना अधिक आता और कै होता है। धुआँ का नस्य लेने तथा रुधिर निकालने से पीड़ा की मात्रा और भी बढ़ जाया करती है॥ ६ ॥

क्रिमिज के लक्षण ।

निस्तुद्यते यस्य शिरोतिमात्रं सम्भक्ष्यमाणं स्फुरतीव चान्तः ।
घ्राणाच्च गच्छेत् सलिलं सपूयं शिरोऽभितापः क्रिमिभिः स घोरः॥७॥

जिस प्राणी के मस्तक में सुई से कोंचने के समान पीड़ा हो और ऐसा जान पड़े मानों कोई माथे को खाए जाता है और नाक से पीब मिला हुआ रुधिर बहे तो समझ लेना चाहिए कि क्रिमियों के कारण यह भयानक शिरोरोग उत्पन्न हुआ है॥ ७ ॥

सूर्यावर्त के लक्षण ।

सूर्योदयं या प्रति मन्दमन्दमक्षिभ्रुवं रुक् समुपैति गाढा ।
विवर्धते चांशुमता सहैव सूर्यापवृत्तौ विनिवर्तते च ।
सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं सूर्यापवर्तं तमुदाहरन्ति ॥ ८ ॥

यदि सूर्योदय होने के साथ जैसे जैसे सूर्य ऊपर को आएँ वैसे वैसे

मस्तक की पीड़ा बढ़ती जाय और दोपहर के बाद जैसे जैसे सूर्य नीचे को जाय और वैसे वैसे उस की पीड़ा भी घटती जाय, कभी२ कोई ठंढी या गरम चीज लगाने से शान्ति मिले तो उसे सन्निपात से जायमान सूर्यावर्त या सूर्यापवृत्त नामक रोग समझना चाहिए ॥ ८ ॥

अनन्तवात के लक्षण ।

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां संपीड्य घाटासु रुजां सुतीव्राम्
कुर्वन्ति योऽक्षिभ्रुवि शङ्खदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ॥
गण्डस्य पार्श्वे तु करोति कम्पं हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान् ।
अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥१०

वात-पित्त-कफ ये तीनों दोष गले को घोंट कर अतिशय वेदना कर देते हैं ऐसी अवस्था में आँखों, भौहों और कनपटियों में बड़ी वेदना होने लगती है, गण्डस्थल के पास फरफराहट होती, दाँत चौभड़ जकड़ जाती तथा आँखों में अनेक प्रकार के उपद्रव खड़े हो जाया करते हैं। इसे तीनों दोषों के प्रकोप से उत्पन्न अनन्तवात नामक शिर रोग कहते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

अर्धावभेद के लक्षण ।

रूक्षाशनात्यध्यशनप्राग्वातावश्यमैथुनैः ।
वेगसंधारणायासव्यायामैः कुपितोऽनिलः ॥ ११ ॥
केवलः सकफो वाऽर्धं गृहीत्वा शिरसो बली ।
मन्याभ्रूशङ्खकर्णाक्षिललाटार्धेऽतिवेदनाम् ॥ १२ ॥
शस्त्रारणिनिभां कुर्यात्तीव्रां सोऽर्धावभेदकः ।
नयनं वाऽथवा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ॥ १३ ॥

अधिकांश रूखे सूखे भोजन करने, पेट भरे रहने पर भी भोजन करने, पुरवाई हवा का सेवन करने, अधिक मैथुन करने, मलमूत्र आदि का वेग रोकने, अधिक परिश्रम तथा व्यायाम करनेसे अकेला अथवा कफ से मिलकर वायु कुपित हो जाता और सिर के आधे हिस्से को जक.

कर गर्दन, कनपटी, कान, आँख तथा ललाट के अर्धभाग में अत्यन्त वेदना करने लगता है । इस हालत में ऐसा मालूम होता है कि जैसे कोई कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी के समान माथे को चीरे डालता हो इसे लोग अर्धावभेदक शिरोरोग कहते हैं । यह जब बहुत बढ़ जाता तो जिस ओर दर्द होती उस ओर के नेत्र तथा कान को नष्ट कर देता है ॥ ११-१३ ॥

शंखक के लक्षण ।

रक्तपित्तानिला दुष्टाः शङ्खदेशे विमूर्च्छिताः ।
तीव्ररुग्दाहरागं हि शोथं कुर्वन्ति दारुणम् ॥ १४ ॥
स शिरो विषवद्वेगी निरुन्ध्याशु गलं तथा ।
त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शङ्खको नामतः परम् ॥ १५ ॥
त्र्यहाज्जीवति भैषज्यं प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ १६ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने शिरोरोगनिदानं समाप्तम् ॥ ६० ॥

जब कि पित्त, रक्त तथा वात दुष्ट होकर कनपटी में डट जाते तो तीव्र वेदना, दाह, रक्तिमा तथा दारुण सूजन को उत्पन्न कर देते हैं । यह शिरोरोग विष के समान अपना असर दिखाता हुआ सिर को जकड़ कर वात की वात में गला रूँध लिया करता है इस लिए केवल तीन दिन में यह प्राणी के प्राणों को हर लेता है । इसे लोग शङ्खक नामक शिरोरोग कहते हैं । इसके होने पर रोगी के जीने की अवधि केवल तीन दिन की रहती है इस कारण खूब सोच विचार कर किसी अच्छे वैद्य द्वारा इसकी चिकित्सा करानी चाहिए ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने शिरोरोगनिदानम् ॥ ६० ॥

अथासृग्दरनिदानम् ।

प्रदररोग के निदान ।

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च ।
यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च ।

तं श्लेष्मपित्तानिलसंनिपातैश्चतुष्प्रकारं प्रदरं वदन्ति

प्रकृति के विरुद्ध भोजन करने, मद्य पीने, भोजन करने पर भी करने, गर्भ गिर जाने, अतिशय मैथुन करने, अधिक रास्ता चलने, शोक करने, ज्यादा कृशता आ जाने, किसी बड़े बोझ को उठाने दिन में सोने के कारण असृग्दर (प्रदर) नामक रोग की उत्पत्ति है। यह रोग वात-पित्त कफ तथा सन्निपात इन चारों के योग से प्रकार का होता है ॥ १ ॥

सामान्यरूप।

असृग्दरं भवेत् सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम्।

प्रायः हर प्रकार के प्रदर में शरीर दुखता, योनि से रुधिर शरीर ऐंठता तथा हाथ पैर फूल जाया करते हैं।

अतिवृत्ति के उपद्रव।

तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं श्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा।
दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः॥

जब यह रोग खूब बढ़ जाता तो शरीर दुर्बल हो जाता, थ· मालूम पड़ती, जब तब मूर्छा आ जाती, प्राणी मत्त हो प्यास विशेष लगती, दाह होती, रोगी अनाप सनाप बकने लगता, पीला पड़ जाता और तन्द्रा आने लगती है। यह सब वात के प्रको उत्पन्न प्रदर के लक्षण हैं ॥ २ ॥

श्लैष्मिकादिभेदके विशेष लक्षण तथा असाध्यत्व।

आमं सपिच्छप्रतिमं सपाण्डु पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु
सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तार्तियुक्तं भृशवेगि पित्तात्
रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं वातार्ति वातात् पिशितोदकाभ
सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्जप्रकाशं कुणपं त्रिदोषात् ॥ ४
तं चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा न तत्र कुर्वीत भिषक् चिकित्सा

शश्वत् स्रवन्तीमास्रावं तृष्णादाहज्वरान्विताम् ।
क्षीणरक्तां दुर्बलां च तामसाध्यां विनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥

कफ के प्रकुपित होने पर जो प्रदर होता उसमें आम के समान चिकना सफेद माड़ की तरह मल बहा करता है । पित्त के प्रकोप से उत्पन्न प्रदर में पीला, नीला, काला, लाल, गरम, पित्त के रंग से मिलता जुलता और बड़े वेग के साथ विकार निकलता है ॥ ३ ॥ वात के प्रकोप से उत्पन्न प्रदर में रूखा, लाल, फेन से मिला भया, थोड़ा थोड़ा तथा मांसधोवन के समान विकार बहा करता है ॥ ४ ॥ मधु, घी तथा हरिताल के रंग का तथा मज्जा के रंग से मिलता जुलता विकार जिस प्रदर से निकलता हो वैद्य विद्या को जाननेवाले चतुर वैद्यों को चाहिये कि उसे असाध्य प्रदर रोग समझें और उसकी चिकित्सा न करें ॥ ५–६ ॥

विशुद्धार्तव के लक्षण ।

मासान्निष्पिच्छदाहार्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च ।
नैवातिबहुलात्यल्पमार्दवं शुद्धमादिशेत् ॥ ७ ॥
शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम् ।
तदार्तवं प्रशंसन्ति यच्चाप्सु न विरज्यते ॥ ८ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदानेऽसृग्दरनिदानं समाप्तम् ॥ ६१ ॥

जो ठीक महीना भर पर चिकनाई दाह तथा पीड़ा से रहित पाँच दिन पर्यन्त न अधिक न कम रुधिर गिरे इसे शुद्ध आर्तव (मासिकधर्म) समझना चाहिए । इसी तरह यदि खरगोश के रक्त समान अथवा मेहावर तथा लाह की तरह रंगवाला हो इसे भी शुद्ध आर्तव समझना चाहिए । इस प्रकार के रुधिर का विन्दु यदि कपड़े पर गिर जाता तो पानी से धो देने पर साफ हो जाया करता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने असृग्दरनिदानम् ॥ ६१ ॥

अथ योनिरोगनिदानम् ।

योनिरोग की संख्या ।

विंशतिर्व्यापदो योनौ निर्दिष्टा रोगसंग्रहे ।
मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्तवेन च ॥ १ ॥
जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाच्च शृणु ताः पृथक् ।

स्त्रियोंके मिथ्या आहार बिहार करने तथा आर्तवके दूषित होजा बीस प्रकारके रोग हुआ करते हैं । कभी कभी बीजदोषसे तथा भा भी कई तरहके योनिरोग हो जाया करते हैं उन्हें अलग बतलाताहूँ, सुन

वातिक योनिरोग के लक्षण ।

सा फेनिलमुदावर्ता रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति ॥ २ ॥
वन्ध्यां नष्टार्तवां विद्याद्विप्लुतां नित्यवेदनाम् ।
परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मेण रुग्भृशम् ॥ ३ ॥
वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता ।
चतसृष्वपि चाद्यासु भवन्त्यनिलवेदनाः ॥ ४ ॥

जो बड़ी कठिनाईसे फेनिल रजको निकालती है उसे लोग नामकी योनि कहते हैं । जिसका मासिकधर्म दूषित होगया हो यानी समयसे न हो और हमेशा पीड़ा हुआ करे उसको वन्ध्यायोनि कहते जिसमें सर्वदा पीड़ा हुआ करे उसे विप्लुता नामक योनि कहते हैं । मैथुन करते समय बड़ी वेदना हो उसे परिप्लुता योनि कहते हैं कर्कश, कठिन, शूल तथा कोंचनेकी सी पीडासे युक्त हो उसे नामक योनि कहते हैं । ऊपर जो उदावर्ता, वन्ध्या, विप्लुता तथा प नामकी चार योनियाँ कह आएहैं, उनमें सदा वातज पीड़ा बनी रहती है।

पैत्तिक योनिरोग के लक्षण ।

सदाहं क्षीयते रक्तं यस्यां सा लोहितक्षया ।
सवातमुद्गिरेद्बीजं वामिनी रजसा युतम् ॥ ५ ॥

प्रस्रंसिनी स्रंसते च क्षोभिता दुष्प्रजायिनी ।
स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंक्षयात् ॥६॥
अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता ।
चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥७॥

जिसमेंसे दाहके साथ रुधिर बहता है उसे लोग लोहितक्षया नामक योनि कहते हैं । जिसमेंसे रजके साथ साथ बीज गिरता रहे उसे लोग वामिनी नामक योनि कहते हैं । जिस योनिसे बचेदानी बाहर निकल आया करे उसे प्रस्रंसिनी कहते हैं । जिसमेंसे सर्वदा रुधिर बहता रहे इस कारण गर्भ रुक न सके उसको लोग पुत्रघ्नी नामकी योनि कहते हैं । जिसमें अतिशय दाह, पाक तथा ज्वर बनारहे उसको पित्तला योनि कहते हैं । इनमें ऊपर कही हुई लोहितक्षया, वामिनी, प्रस्रंसिनी तथा पुत्रघ्नी इन चारों योनियोंमें पित्तके लक्षणोंकी ही प्रधानता रहती है ॥ ५-७ ॥

श्लैष्मिक योनिरोग के लक्षण ।

अत्यानन्दा न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति ।
कर्णिन्यां कर्णिका योनौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते ॥८॥
मैथुनेऽचरणा पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते ।
बहुशश्चातिचरणा तयोर्बीजं न बिन्दति ॥९॥
श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूग्रस्ताऽतिशीतला ।
चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्मलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥१०॥

अतिशय वेगके साथ मैथुन करने पर भी जो न तृप्त होने आए उसे अत्यानन्दा नामक योनि कहतेहैं । जिसकी योनिमें कफ तथा रक्तसे कमल गट्टेका झुमका सा बन जाय उसे कर्णिका नामक योनि कहते हैं । मैथुन करानेके प्रथमही जिसमेंसे बीज टपकने लगे उसे अतिचरणा नामक योनि कहते है । मैथुन करनेके अनन्तर जिसमेंसे स्त्रीपुरुष दोनोंका बीज अधिक मात्रामें निकल आए उसे अतिचरणा नामक योनि कहते हैं । जिस योनिमें चिकनापन, खुजलाहट एवं ठण्ढक की मात्रा विशेष रहती है उसे श्लेष्म-

लायोनि कहते हैं। ऊपर कही हुई चारों प्रकारकी योनिमें श्लेष्मज लक्षणों की ही प्रधानता रहती है ॥ ८-१० ॥

सान्निपातिक योनिरोग के लक्षण।

अनार्तवाऽस्तनी षण्ढी खरस्पर्शा च मैथुने।
अतिकायगृहीतायास्तरुण्यास्त्वण्डली भवेत् ॥ ११ ॥
विवृता च महायोनिः सूचीवक्त्राऽतिसंवृता।
सर्वलिङ्गसमुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा ॥ १२ ॥
चतसृष्वपि चाद्यासु सर्वलिङ्गोच्छ्रयो भवेत्।
पञ्चासाध्या भवन्तीह योनयः सर्वदोषजाः ॥ १३ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने योनिव्यापन्निदानं समाप्तम् ॥ ६२ ॥

जिस स्त्री को मासिकधर्म नहीं होता, स्तन नहीं रहते, योनि खुरखुरी सी मालूम पड़ती है उसे षण्ढी कहते हैं। बड़े और मोटे लिङ्गसे मैथुन करने पर जिसकी योनिसे एक प्रकारका अण्डा सा निकल आता उसको अण्डिनी कहते हैं। जो योनि बड़ी लम्बी चौड़ी हो उसे विवृता कहते हैं। जो योनि बहुत ही संकीर्ण हो उसे सूचीवक्त्रा कहते है। जिसमें वात-पित्त कफ इन तीनों दोषोंके लक्षण दिखाई दें उसे सान्निपातिनी योनि कहते हैं। ऊपर कही हुई षण्ढी, अण्डिनी, विवृता तथा सूचीवक्त्रा इन चारों प्रकार की योनियों में तीनों दोषों के लक्षण मौजूद रहते हैं अतएव ये चारों तथा पाँचवीं सान्निपातिनी ही हैं। ये सब के सब असाध्य मानी गई हैं। इनकी चिकित्सा करनी व्यर्थ है ॥ ११-१३ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने योनिरोगनिदानम् ॥ ६५ ॥

अथ योनिकन्दनिदानम्।

योनिकन्द के निदान।

दिवास्वप्नादतिक्रोधाद्व्यायामादतिमैथुनात्।
क्षताच्च नखदन्ताद्यैर्वाताद्याः कुपिता यदा ॥ १ ॥

पूयशोणितसंकाशं लिकुचाकृतिसंनिभम् ।
जनयन्ति यदा योनौ नाम्ना कन्दः स योनिजः ॥ २ ॥

दिनमें सोने, अधिक क्रोध करने, ज्यादा कसरत करने, अतिशय मैथुन करने, और नखदन्तादिसे किसी प्रकारका घाव लगनेके कारण वातपित्तादि दोष कुपित होकर पीब तथा रुधिरके समान अथवा बड़हरके फल की तरह मांसका एक लोथड़ा सा योनिसे निकालते हैं उसे योनिकन्द नामक रोग कहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

वातजादि भेद से योनिकन्द के रूप ।

रूक्षं विवर्णं स्फुटितं वातिकं तं विनिर्दिशेत् ।
दाहरागज्वरयुतं विद्यात् पित्तात्मकं तु तम् ॥ ३ ॥
नीलपुष्पप्रतीकाशं कण्डूमन्तं कफात्मकम् ।
सर्वलिङ्गसमायुक्तं सन्निपातात्मकं विदुः ॥ ४ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने योनिकन्दनिदानं समाप्तम् ॥ ६३ ॥

जो योनिकन्द रोग रूखा, विवर्ण, फूटा फटा हो उसे वातज योनिकन्द रोग कहते हैं । जिसमें दाह राग तथा ज्वर बना रहे उसको पित्तात्मक योनिकन्द समझना चाहिए । जो नीलपुष्पके समान खुजलाहटसे युक्त हो उसे कफात्मक योनिकन्द समझना चाहिए। जिसमें वात-पित्त तथा कफ इन तीनों दोषों के लक्षण दिखाईदें उसको सन्निपातज योनिकन्द रोग समझना चाहिए ॥ ३ ॥ ४ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने योनिकन्दरोगनिदानम् ॥ ६३ ॥

अथ मूढगर्भनिदानम् ।

निदान ।

भयाभिघातात्तीक्ष्णोष्णपानाशननिषेवणात् ।
गर्भे पतति रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत् ॥ १ ॥

भयके कारण, किसी प्रकारकी चोट लगनेसे, तीखी तथा गरम चीजें

खाने पीनेसे गर्भ गिर जाता और असह्य वेदना होती तथा शूलके साथ रक्त गिरने लगता है ॥ १ ॥

मूढगर्भ का कालभेद ।

आचतुर्थात्ततो मासात्प्रस्रवेद्गर्भविद्रवः ।
ततः स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चमषष्ठयोः ॥ २ ॥

चार महीनेका गर्भ रहता अथवा इसके अन्तर्गत कोई महीं रहता तो रक्त ही रक्तका स्राव होता है । पाँचवें और छठें महीनेमें होता तो सशरीर गर्भस्राव हुआ करता है ॥ २ ॥

असमयमें गर्भ गिरनेका कारण तथा दृष्टान्त ।

गर्भोऽभिघातविषमाशनपीडनाद्यैः
पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन ।

किसी तरहकी चोट लगने, खाले, ऊँचे आसन पर बैठने-उठने जोरोंसे मलदेने पर गर्भ क्षणमात्रमें उसी तरह गिरजाता है जैसे-पका फल टपक पड़ता है ।

प्रसवोचित काल का मूढ़गर्भ ।

मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं
शूलं च योनिजठरादिषु मूत्रसङ्गम् ॥ ३ ॥

वायु जिस गर्भको मूढ़ (टेढ़ा-बेढ़ा) कर देता तो योनि तथा आदिमें शूल उठने लगता और पेशावका उतरना बन्द होजाताहै ॥

गर्भ की आठ विशिष्ट गति ।

भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भः
संख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम् ।
द्वारं निरुध्य शिरसा जठरेण कश्चित्
कश्चिच्छरीरपरिवर्तितकुब्जदेहः ॥ ४ ॥
एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन
तिर्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः ।

पार्श्वापवृत्तगतिरेति तथैव कश्चि-
दित्यष्टधा गतिरियं ह्यपरा चतुर्धा ॥ ५ ॥

उपर्युक्त रीतिसे वायुके द्वारा टेढ़ा हुआ गर्भ दस मासके बाद अनेक प्रकारसे योनिके मुखपर आयाकरता है । कोई मूढ गर्भ शिरसे योनिके द्वारको बन्दकर देता, कोई पेटसे रास्ता रूँध लेता, कोई गर्भ शरीर को दुहरा कर एक प्रकारका कूबड़ सा निकालकर उसके द्वारा मार्गको रोक लिया करता है । कोई गर्भ एक बाहुसे, कोई दोनों हाथोंसे, कोई शरीर को टेढ़ा करके, कोई नीचा मुख करके, कोई करवट बदलकर योनिद्वारको रूँध लेता है । यह आठ प्रकारके मूढगर्भ होते हैं । इनके अतिरिक्त चार प्रकार और भी हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

चारप्रकार के गतिविशेष ।

संकीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ बीज-
स्तेषूर्ध्वबाहुचरणैः शिरसा च योनिम् ।
सङ्गी च यो भवति कीलकवत् स कीलो
दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरं स हि कायसङ्गी ।
गच्छेद्भुजद्वयशिराः स च बीजकाख्यो
योनौ स्थितः स परिघः परिघेण तुल्यः ॥ ६ ॥

उनमें पहला संकीलक, दूसरा प्रतिखुर, तीसरा परिघ, चौथा बीज है । इनमेंसे जो गर्भ हाथ पैर उपर को उठाए हुए सिरसे योनिके मार्गको रोक ले उसे संकीलक मूढगर्भ कहते हैं। जिस गर्भके पैर बाहर निकल आएँ किन्तु शरीर भीतर ही अड़जाय उसको प्रतिखुर नामक गर्भ कहते हैं । जिसमें दोना हाथ तथा सिर बाहर निकला दिखाई दे उसे बीजक गर्भ कहते हैं । जो परिघके समान योनिमें आकर अड़जाय उसको परिघ नामक गर्भ कहते हैं ॥ ६ ॥

असाध्य मूढगर्भ तथा गर्भिणीके लक्षण ।

अपविद्धशिरा या तु शीताङ्गी निरपत्रपा ।
नीलोद्भूतसिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा ॥ ७ ॥

जिस किसी गर्भिणी नारीके बच्चेका मुँह नीचे की ओर होगया अङ्ग ठंढे हो गए हों, मारे दर्दके लज्जाका भी संवरण न कर पाए, शरीर नसें नीले रङ्गकी होकर फूल आई हों उस स्त्रीका गर्भवाला बच्चा मरजा और वह स्वयं भी मरजाती है ॥ ७ ॥

मृतगर्भ के लक्षण ।

गर्भास्पन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता ।
भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूनताऽन्तर्मृते शिशौ ॥ ८ ॥

जिस स्त्री के गर्भ में ही बच्चा मर जाता उसके गर्भ का हिल डोलना बन्द हो जाता, प्रसवकाल की वेदना भी नहीं होती, शरीर नीला तथा पीला हो जाता, श्वास से दुर्गन्धि आने लगती और पेट ब बर फूलता चला आता है ॥ ८ ॥

मरण के लक्षण ।

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः ।
गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च निपीडितः ॥ ९

जब कि स्त्री अपने मानसिक दुःख अथवा आनेवाली पीड़ाओं पीडित होती तो अनेक प्रकार की व्याधियों से पीडित होकर गर्भ का ब पेट में ही मर जाता है ॥ ९ ॥

असाध्य गर्भिणी के लक्षण ।

योनिसंवरणं सङ्गः कुक्षौ मक्कल्ल एव च ।
हन्युः स्त्रियं मूढगर्भो यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ १० ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने मूढगर्भनिदानं समाप्तम् ॥ ६४ ॥

यदि योनि सिकुड़ जाती, कोख में शूल उठने लगता या मक्(१ नामक रोग हो जाता अथवा मूढ़गर्भ हो जाता तो ये रोग तथा ऊ बताई व्याधियाँ उस स्त्री को मार ही डालती हैं ॥ १० ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने गर्भिणीरोगनिदानम् ॥ ६४ ॥

---

(१) वायुः प्रकुपितः कुर्यात् संरुध्य रुधिरं स्रुतम् ।
सूतायाः हृच्छिरोबस्तिशूलं मक्कल्लसंज्ञकम् ॥ १ ॥ इति ग्रन्थान्तरे ।

अथ सूतिकारोगनिदानम् ।

सूतिकारोग के लक्षण ।

अङ्गमर्दो ज्वरः कम्पः पिपासा गुरुगात्रता ।
शोथः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ॥ १ ॥

शरीर के अंग प्रत्यंग टूटने लगें, ज्वर आए, कँपकपी आ जाया करे, प्यास लगे, शरीर भारी मालूम हो, सूजन हो आए, शूल उठने लगे, दस्त आती रहे ये सब सूतिका रोग के लक्षण हुआ करते हैं ॥ १ ॥

निदान ।

मिथ्योपचारात् संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात् ।
सूतिकायाश्च ये रोगा जायन्ते दारुणास्तु ते ॥ २ ॥

मिथ्या आहार विहार करने, दोषों को उत्पन्न करनेवाले अन्न खाने, ठीक समय से भोजन न करने तथा भोजन करने के ऊपर भी भोजन करने से जिस सूतिका रोग की उत्पत्ति होती वह बड़ा ही दारुण रोग होता है ॥ २ ॥

कफज तथा वातज सूतिका के लक्षण ।

ज्वरातीसारशोथाश्च शूलानाहबलक्षयाः ।
तन्द्रारुचिप्रसेकाद्याः कफवातामयोद्भवाः ॥ ३ ॥

कफ तथा वात के प्रकोप से जिस सूतिका रोग की उत्पत्ति होती उस में ज्वर, अतीसार, शूल, पेट का तनना, शारीरिक बल का नष्ट हो जाना, झपकी आते रहना, किसी वस्तु में रुचि न रहना, मुख में पानी भरना, इतने उत्पात हुआ करते हैं ॥ ३ ॥

कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमांसबलाग्नितः ।
ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥ ४ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने सूतिकारोगनिदानं समाप्तम् ॥ ६४ ॥

यदि सूतिका रोगवाली स्त्री की औदर्य अग्नि, मांस तथा बल क्षीण

हो गया हो तो वे रोग कृच्छ्रसाध्य हुआ करते हैं उनमें जो सूतिका के ना
से विख्यात हैं वे सूतिका रोग हैं बाकी ज्वर अतिसार आदि इस रोग
उपद्रव हैं ॥ ४ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने सूतिकारोगनिदानम् ॥ ६५ ।

अथ स्तनरोगनिदानम् ।

स्तनरोग की संप्राप्ति तथा लक्षण ।

सक्षीरौ वाऽप्यदुग्धौ वा प्राप्य दोषः स्तनौ स्त्रियाः
प्रदूष्य मांसरुधिरं स्तनरोगाय कल्पते ॥ १ ॥
पञ्चानामपि तेषां हि रक्तजं विद्रधिं विना ।
लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ २ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने स्तनरोगनिदानं समाप्तम् ॥ ६६ ॥

स्त्रियों के दुधार अथवा दुग्धविहीन स्तनों में प्राप्त होकर वातादि दो
मांस तथा रुधिर को दूषित कर के पाँच प्रकार के स्तनरोगों को उत्पन्न क
देते हैं। कहीं कहीं के लोग इसे थन्हैल भी कहते हैं। इन पाँचों स्तनरोगों
में रक्तज विद्रधि के अतिरिक्त समस्त विद्रधियों के समान लक्ष
के दिखाई देते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने स्तनरोगनिदानम् ॥ ६६ ॥

अथ स्तन्यदुष्टिनिदानम् ।

निदान ।

गुरुभिर्विविधैरन्नैर्दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम् ।
क्षीरं मातुः कुमारस्य नानारोगाय कल्पते ॥ १ ॥

विविध प्रकार के भारी और दूषित अन्नों के खाने से धात्री (धाई
का दूध दूषित हो जाता है जिससे बच्चों के अनेक प्रकार के रोग उत्प
हो जाया करते हैं ॥ १ ॥

स्तन्यदुष्टि के लक्षण ।

कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम् ।
कट्वम्ललवणं पीतराजीमत् पित्तसंज्ञितम् ॥ २ ॥

वात के प्रकोप से दूषित दुग्ध कसैला, पानी के ऊपर तैरनेवाला होता है। पित्त से दूषित दुग्ध कडुवा, खट्टा, नुनखार होता और उसमें पीली लकीरें पड़ जाया करती हैं ॥ २ ॥

कफदुष्टं घनं तोये निमज्जति सपिच्छिलम् ।
द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं विद्यात् सर्वलिङ्गं त्रिदोषजम् ॥ ३ ॥

जिस स्त्री का स्तन्य कफ के प्रकोप से दूषित होता उसका दूध गाढ़ा तथा चिकना होता और पानी में डालने से डूब जाता है । जिस स्तन्यरोग में दो दोषों के लक्षण दीखें वह द्वन्द्वज एवं तीन दोषोंवाला सान्निपातिक रोग कहलाता है ॥ ३ ॥

अविकृतस्तन्य के लक्षण ।

अदुष्टं चाम्बुनिक्षिप्तमेकीभवति पाण्डुरम् ।
मधुरं चाविवर्णं च प्रसन्नं तत् प्रशस्यते ॥ ४ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने स्तन्यदुष्टिनिदानं समाप्तम् ॥ ६७ ॥

जो दूध पानी में डालने से उसमें मिलजाता, बिल्कुल सफेद रंग होता, उसमें मीठापन रहता और रंग ज्यों का त्यों बना रहता है उसे लोग शुद्ध दूध कहते हैं ॥ ४ ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने स्तन्यदुष्टिनिदानम् ॥ ६७ ॥

अथ बालरोगनिदानम् ।

निदान

(त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्तनः ।
स्वास्थ्यान्ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसंभवः ॥)

(बच्चे तीन प्रकार के होते हैं–एक वे जो केवल दूध पीकर रहते हैं,

दूसरे वे जो अन्न खाते हैं और तीसरे वे जो दूध तथा अन्न दो-
आधार पर रहते हैं। यदि दूध एवं अन्न शुद्ध रहता तब बच्चे स्वस्थ
किन्तु उनके दूषित होने से बच्चों के शरीर में विविध प्रकार के रोग उ
होजाया करते हैं।)

वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन् वातगदातुरः।
क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः॥ १

वात से दूषित दूध पीने के कारण वातसम्बन्धी रोगों से बालक
होता है इस लिए उसकी आवाज़ धीमी होजाती, अंग दुबले-पतले
जाते और मल-मूत्र तथा अपान वायु आदि बँध जाते हैं॥ १॥

स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान्।
तृष्णालुरुष्णसर्वाङ्गः पित्तदुष्टं पयः पिबन्॥ २॥
कफदुष्टं पिबन् क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान्।
निद्रान्वितो जडः शूनशुक्लाक्षश्छर्दनः शिशुः॥ ३
द्वन्द्वजे द्वन्द्वजं रूपं सर्वजे सर्वलक्षणम्।

पित्तसे दूषित दुग्ध को पीने से बच्चे के पसीना अधिक आता, पत
दस्त आती, कामला तथा पित्तरोग होता, प्यास अधिक लगती अ
शरीर के सारे अंग काले पड़ जाते हैं॥ २॥ कफसे दूषित दूध पी
वाले बच्चे के लार अधिक टपकती एवं कफसे सम्बन्ध रखनेवाले बहुत
रोग होजाते हैं। बच्चे को नींद अधिक आती, बिल्कुल जड़ प्रकृति
होजाता मुँह और आँखें सूज आतीं और कै अधिक होता है। द्वन्द्वज
दो दोषों के लक्षण दीखते सान्निपातिक रोग में तीनों दोषों के लक्ष
दीखते हैं॥ ३॥

बच्चे के रोग जानने के उपाय।

शिशोस्तीव्रामतीव्रां च रोदनाल्लक्षयेद्रुजम्॥ ४॥
स यं स्पृशेद्भृशं देशं यत्र च स्पर्शनाक्षमः।
तत्र विद्याद्रुजं मूर्ध्नि रुजं चाक्षिनिमीलनात्॥ ५॥

कोष्ठे विबन्धवमथुस्तनदंशान्त्रकूजनैः ।
आध्मानपृष्ठनमनजठरोन्नमनैरपि ॥ ६ ॥
बस्तौ गुह्ये च विण्मूत्रसंगत्रासदिगीक्षणैः ।
स्रोतांस्यङ्गानि सन्धींश्च पश्येद्यत्नान्मुहुर्मुहुः ॥ ७ ॥

बालक के रोदन से ही उसके रोगकी तीव्रता और अतीव्रता जाननी चाहिए । वह जिस अंग को अधिक छुए और जिस स्थान का स्पर्श करे उसके उसी स्थान पर पीड़ा जाननी चाहिए । यदि बच्चा हमेशा आँखें बन्द किए रहे तो उसके सिर में पीड़ा समझनी, यदि मल ठीक से न उतरता हो, बार बार कै किया करता हो, दूध पिलाते समय स्तनमें दाँत से काट लेता हो अथवा उसकी अँतड़ियाँ घुलघुलाती रहें तो उसके कोठों में पीड़ा समझनी चाहिए । यदि पेट फूल आए, पीठ झुक जाय, बार बार पेट को फुलाया और पचकाया करे तो पेट में पीड़ा जाननी चाहिए । जो बालक भयभीत होकर इधर उधर देखता रहे तो उसके मलमूत्रस्थान में पीड़ा समझनी चाहिए । वैद्य को उचित है कि वह बच्चे की प्रत्येक नसों और शरीर की सन्धियों को बार बार बड़े यत्न से देखे तब रोग का निश्चय करे ॥ ४–७ ॥

कुकूणक तथा वर्त्मरोग ।

कुकूणकः क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि।
जायते तेन तन्नेत्रं कण्डूरं च स्रवेन्मुहुः ॥ ८ ॥
शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासावघर्षणम् ।
शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न वर्त्मोन्मीलनक्षमः ॥ ९ ॥

दूध के ही दोष से बच्चों की बरौनी में कुकूणक (कुथुरू) रोग हो जाता है । इस के होने पर नेत्र में कलबली ज्यादा उठती और बार बार नेत्रों से पानी बहता रहता है । ऐसी अवस्था में बच्चा ललाट, आँखें तथा नासिका को रगड़ता है । वह न तो प्रकाश की ओर देख पाता न न आँखों की पलक ही खोल सकता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

पारिगर्भिक के लक्षण ।

मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तन्यं प्रायः पिबन्नपि ।
कासाग्निसादवमथुतन्द्राकार्श्यारुचिभ्रमैः ॥ १० ॥
युज्यते कोष्ठवृद्ध्या च तमाहुः पारिगर्भिकम् ।
रोगं परिभवाख्यं च युञ्ज्यात्तत्राग्निदीपनम् ॥ ११

प्रायः गर्भवती माता का दूध पीता हुआ बच्चा खाँसी, मन्दाग्नि वमन, तन्द्रा, दुर्बलता, अरुचि और चक्कर इन रोगों को प्राप्त करता इस के सिवाय उस बच्चे का पेट भी बढ़ जाता है। इस रोग की पारिगर्भिक तथा परिभव सञ्ज्ञा है। इस रोग के होने पर ऐसी दवा चाहिए जिस से मन्दाग्निता नष्ट होकर अग्नि प्रज्वलित हो उठे ॥१०॥

तालुकण्टक के लक्षण ।

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम् ।
तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ॥ १२ ।
तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात् पानं शकृद्द्रवम् ।
तृडक्षिकण्ठास्यरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः ॥ १३ ।

जब कि बच्चे के तालु व मांस में कफ कुपित होता तो तालुक रोग को उत्पन्न करता है। इसके होने पर तालुप्रदेश का ऊपरी नीचा हो जाता ऐसा और मालूम होता है कि तालु कट कर जाता है। स्तन के दूध से भी उसे द्वेष हो जाता और बड़ी कठिना दूध पीता है। मल पतला गिरता, प्यास विशेष लगती, गला औ सूख जाता, ग्रीवा भारी हो जाती और कभी कभी वमन भी हो करता है ॥ १२–१३ ॥

महापद्म के लक्षण ।

विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो बस्तिशीर्षजः ।
पद्मवर्णो महापद्मनामा दोषत्रयोद्भवः ॥ १४ ॥
शङ्खाभ्यां हृदयं याति हृदयाद्वा गुदं व्रजेत् ।

यदि बच्चों के मस्तक तथा वस्तिस्थान में विसर्परोग होता तो वह उनके प्राण ही ले लेता है। इसका कमलके समान वर्ण रहता इसी लिए लोग इसे महापद्म नामक रोग कहते हैं । इस में वात-पित्त तथा कफ इन तीनों दोषों का प्रकोप हुआ करता है । यह कनपटी से उठ कर हृदय में जाता और वहाँ से गुदा तक चला जाता है ॥ १४ ॥

अन्य दो विकार ।

क्षुद्ररोगे च कथिते त्वजगल्ल्यहिपूतने ॥ १५ ॥

पीछे जो क्षुद्ररोगनिदान में अजगल्ली तथा अहिपूतन रोग कह आए हैं वे बच्चों के भी होते हैं ॥ १५ ॥

अन्य विकारों के सम्बन्ध में विचार ।

ज्वराद्या व्याधयः सर्वे महतां ये पुरेरिताः ।
बालदेहेऽपि ते तद्वद्विज्ञेयाः कुशलैः सदा ॥ १६ ॥

इस के अतिरिक्त ज्वर आदि रोग जो बड़ों के लिए कह आए हैं उन्हें बालरोगों में भी उसी प्रकार भयङ्कर समझना चाहिए ॥ १६ ॥

स्कन्दादिग्रहों के सामान्य लक्षण ।

क्षणादुद्विजते बालः क्षणात्त्रस्यति रोदिति ।
नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव वा ॥ १७ ॥
ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान् खादेत् कूजति जृम्भते ।
भ्रुवौ क्षिपति दन्तौष्ठं फेनं वमति चासकृत् ॥ १८ ॥
क्षामोऽति निशि जागर्ति शूनाक्षो भिन्नविट्स्वरः ।
मांसशोणितगन्धिश्च न चाश्नाति यथा पुरा ॥ १९ ॥
सामान्यं ग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ।

यदि बच्चा क्षण क्षण भर में ऊबने, घबड़ाने और रोने लगे, अपने शरीर को तथा धाई को नख एवं दाँतों से नोचने लगे, बराबर ऊपर की ओर निहारता रहे, दाँत कटकटाए, कराहता रहे, जँभाई ले, भौं, होठ, दाँत आदि को नचाया करे रात को अधिक जागे, अङ्ग प्रत्यङ्ग शोथ आएँ, पतली

दस्त हो, आवाज़ फटी सी आए, उस के शरीर से मांस तथा रक्त की दुर्गन्धि आए जैसा पहले (रोग न होने के समय) खाता था वैसा न खाय, ये सब सामान्यग्रहजुष्ट बच्चों के लक्षण हुआ करते हैं ॥१७-१९॥

विशेष लक्षण ।

एकनेत्रस्य गात्रस्य स्रवः स्पन्दनकम्पनम् ॥ २० ॥
ऊर्ध्वं दृष्ट्या निरीक्षेत वक्रास्यो रक्तगन्धिकः ।
दन्तान् खादति वित्रस्तः स्तन्यं नैवाभिनन्दति ॥२१॥
स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदनं चाल्पमेव च ।

यदि बच्चों के केवल एक नेत्र से या एक अङ्ग से पानी बहे अथवा फड़के, आधी दृष्टि से देखे, मुँह टेढ़ा हो गया हो और रक्त की सी दुर्गन्धि आती हो, दाँत कटकटाता रहे, शरीर शिथिल हो गया हो, दूध भी पसन्द न आए और कभी कभी थोड़ा सा रो दिया करे, ये सब स्कन्द-ग्रहजुष्ट बच्चों के लक्षण है ॥ २० ॥ २१ ॥

स्कन्दापस्मार के लक्षण ।

नष्टसंज्ञो वमेत् फेनं संज्ञावानतिरोदिति ।
पूयशोणितगन्धित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥२२॥

यदि बच्चा अपनी सुधि बुधि भूल कर फेन का वमन करे और जब होश आए तो ज़ोरों के साथ रोने लगे एवं पीब तथा शोणित की दुर्गन्धि आए तो यह सब स्कन्दापस्मार के लक्षण हैं ॥ २२ ॥

शकुना के लक्षण ।

स्रस्ताङ्गो भयचकितो विहङ्गगन्धिः
सास्रावव्रणपरिपीडितः समन्तात् ।
स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकै-
र्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या ॥ २३ ॥

यदि बच्चा भय से चकित हो जाय, उसके प्रत्येक अंग ढीले पड़ जायँ, मांस खानेवाले पक्षियों के समान दुर्गन्धि आने लगे, शरीर भर

में बहते हुए फोड़े निकल आएँ, फफोलों से सारी देह भर जाय और उन फफोलों के फूटने पर दाहयुक्त घाव निकल आए तो लोग उसे शकुनीरोग कहते हैं ॥ २३ ॥

रेवती तथा पूतनादि ग्रहों के लक्षण ।

व्रणैः स्फोटैश्चितं गात्रं पङ्कगन्धं स्रवेदसृक् ।
भिन्नवर्चा ज्वरी दाही रेवतीग्रहलक्षणम् ॥ २४ ॥
अतीसारो ज्वरस्तृष्णा तिर्यक्प्रेक्षणरोदनम् ।
नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नो ग्रस्तः पूतनया शिशुः ॥ २५ ॥
छर्दिः कासो ज्वरस्तृष्णा वसागन्धोऽतिरोदनम् ।
स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च अन्धपूतनया भवेत् ॥ २६ ॥
वेपते कासते क्षीणो नेत्ररोगो विगन्धिता ।
छर्द्यतीसारयुक्तश्च शीतपूतनया शिशुः ॥ २७ ॥
प्रसन्नवर्णवदनः सिराभिरभिसंवृतः ।
मूत्रगन्धी च बह्वाशी मुखमण्डिकया भवेत् ॥ २८ ॥
छर्दिस्पन्दनकण्ठास्यशोषमूर्च्छाविगन्धिताः ।
ऊर्ध्वं पश्येद्दशेद्दन्तान् नैगमेयग्रहं वदेत् ॥ २९ ॥
प्रस्तब्धाक्षः स्तनद्वेषी मुह्यते चानिशं मुहुः ।
तं बालमचिराद्धन्ति ग्रहः संपूर्णलक्षणः ॥ ३० ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने बालरोगनिदानं समाप्तम् ॥ ६८ ॥

यदि बच्चे का समस्त शरीर व्रण तथा फफोलों से भर जाय, कीचड़ के गंध की तरह रुधिर गिरे, पतली दस्त हो, ज्वर आया करे, शरीर में दाह विशेष हो ये सब रेवतीग्रह के लक्षण हैं । यदि बच्चे के अतीसार हो, ज्वर बना रहे, प्यास लगे, तिरछा ताके और रोए, नींद न आए, तबीयत हमेशा उद्विग्न रहे ये सब पूतनाग्रहग्रस्त के लक्षण हैं । वमन होना, खाँसी आते रहना, ज्वर आना, प्यास लगना, वसा की तरह दुर्गन्ध

आना, बच्चे का अधिक रोते रहना, दूध न पीना, अतिसार का जारी रहना, ये सब अन्धपूतनाग्रस्त बालक के लक्षण हैं । कँपकँपी आना, खाँसी आते रहना, शरीर का दुर्बल हो जाना, आँख में भी कोई रोग उत्पन्न हो जाना, किसी प्रकार की सुगन्धि–दुर्गन्धि का न आना, वमन तथा अतीसार का जारी रहना, ये लक्षण शीतपूतनाग्रस्त बच्चे के हैं। मुख की कान्ति तथा मुख का प्रसन्न रहना, चारों ओर नसों से जकड़ जाना, मूत्र के समान दुर्गन्धि आना, अधिक भोजन करना ये सब मुखमण्डिकाग्रस्त बच्चे के लक्षण हैं । वमन, अंगों का फड़कना, कण्ठ का सूखना, मूर्च्छा आना, किसी प्रकार की गन्धि न आना ये लक्षण मौजूद हों, बच्चा बराबर ऊपर की ओर निहारता रहे और दाँत कटकटाये ये सब नैगमेयग्रहग्रस्त बच्चे के लक्षण जानने चाहिए । यदि बच्चे की आँखें बिलकुल स्थिर हो जायँ, दूध पीने की इच्छा न करे, बार बार बेहोशी आ जाया करे तो ऐसे सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त बच्चे को ग्रह बहुत ही शीघ्र समाप्त कर दिया करता है॥ २४–३० ॥

इति श्रीमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने बालरोगनिदानम् ॥ ६८ ॥

अथ विषरोगनिदानम् ।

विषके भेद ।

स्थावरं जङ्गमं चैव द्विविधं विषमुच्यते ।
मूलाद्यात्मकमाद्यं स्यात् परं सर्पादिसंभवम् ॥ १ ॥

स्थावर तथा जंगम ये दो प्रकार के विष होते हैं । उनमें स्थावर विष दो प्रकार के होते हैं-पहला स्थावर विष वनस्पतियों की जड़ आदि से उत्पन्न होता और दूसरा जंगम सर्पादिकों से उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

विष के सामान्य लक्षण ।

निद्रां तन्द्रां क्लमं दाहमपाकं लोमहर्षणम् ।
शोथं चैवातिसारं च जङ्गमं कुरुते विषम् ॥ २ ॥

निद्रा, तन्द्रा, ग्लानि, दाह, पाक का अभाव, रोंगटे खड़े हो जाना,

विषवाले स्थान पर सूजन होना इत्यादि उपद्रवों को जंगम विष उत्पन्न करता है ॥ २ ॥

स्थावर विषके लक्षण।

स्थावरं च ज्वरं हिक्कां दन्तहर्षं गलग्रहम्।
फेनच्छर्द्यरुचिश्वासं मूर्च्छां च कुरुते भृशम् ॥ ३ ॥

हिचकी, ज्वर, दाँतों का खट्टे हो जाना, गला रुँध जाना, फेन का वमन होना, किसी वस्तु में रुचि न रहना, मूर्च्छा आना, श्वास का वेग बढ़ना ये समस्त उपद्रव स्थावर विष से जायमान होते हैं ॥ ३ ॥

विषदाता के लक्षण।

इङ्गितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः।
जानीयाद्विषदातारमेभिर्लिङ्गैश्च बुद्धिमान् ॥ ४ ॥
न ददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षुर्मोहमेति च।
अपार्थं बहु संकीर्णं भाषते चापि मूढवत् ॥ ५ ॥
हसत्यकस्मात् स्फोटयत्यङ्गुलीर्विलिखेन्महीम्।
वेपथुश्चास्य भवति त्रस्तश्चान्योन्यमीक्षते ॥ ६ ॥
विवर्णवक्त्रो ध्यानश्च नखैः किंचिच्छिनत्त्यपि।
आलभेतासनं दीनः करेण च शिरोरुहम् ॥ ७ ॥
वर्तते विपरीतं च विषदाता विचेतनः।

इंगितज्ञ (देशकाल को समझनेवाले) वैद्य को चाहिए कि मनुष्यों के वचन, चेष्टा तथा मुख की विकृति और निम्नलिखित लक्षणों से विष देनेवाले को पहचाने जिसको विष दिया गया है उससे कोई बात पूछी जाय और वह उसका उत्तर न दे या कुछ कहना चाहे इतने ही में मूर्छा आ जाय, बोले तो मूर्ख के समान व्यर्थ की बातें बके, विना किसी कारण के हँसने लगे, तालियाँ बजाने लगे, उँगली से ज़मीन खोदने लगे, शरीर में कम्प आए तथा घबड़ा कर

इधर उधर ताकने लगे, मुँह की आभा उतर जाय, कभी कभी सोचने लगे, नाखून से कुछ कुतरता रहे, बिलकुल दीन होकर कई जाय, हाथ से केश को बार बार पकड़ कर नोचे, इस प्रकार के जिसमें मौजूद हों तो समझना चाहिए कि इसने विष खा लिया है॥४

प्रमाद से उपयुक्त मूलादि विषों के लक्षण ।

उद्वेष्टनं मूलविषैः प्रलापो मोह एव च ॥ ८ ॥
जृम्भणं वेपनं श्वासो मोहः पत्रविषेण तु ।
मुष्कशोथः फलविषैर्दाहोऽन्नद्वेष एव च ॥ ९ ॥
भवेत् पुष्पविषैश्छर्दिराध्मानं श्वास एव च ।
त्वक्सारनिर्यासविषैरुपयुक्तैर्भवन्ति हि ॥ १० ॥
आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्यशिरोरुक्कफसंस्रवाः ।
फेनागमः क्षीरविषैर्विड्भेदो गुरुगात्रता ॥ ११ ॥
हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि ।
प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत् ॥

बार बार यदि कोई हाथ पैर फटकारे, अनाप सनाप बकने लगे, तब बेहोश हो जाय तो जानना चाहिए कि इसके किसी विषैले वृक्ष की आदि लग गई है । जँभाई विशेष ले, काँपने लगे, श्वास जोरों से यह समझना चाहिए कि इसने किसी विषैले वृक्ष की पत्तियाँ खाई जब कि मुँह सूज आए, दाह हो, कुछ खाने की इच्छा न रहे तो स लेना चाहिए कि इस व्यक्ति ने किसी विषैले वृक्ष के फल खाए हैं। प्रकार यदि कोई मनुष्य विषैले वृक्ष के फूल खाता तो वमन होता, पेट फूल और श्वास जोरों से चलने लगता है । यदि कोई किसी विषैले वृक्ष छाल का रस पीता तो मुँह से दुर्गन्धि आने लगती, शरीर रूखा हो सिर में पीड़ा होने लगती और जोरों से कफ गिरने लगता है । यदि दुग्धमय विष का सेवन करता तो मुँह से फेन गिरने लगता, पतली होती और शरीर भारी हो जाता है । यदि किसी प्रकारका धातसम

विष सेवन किया जाता तो हृदय में पीड़ा होने लगती, मूर्च्छा आती और तालु में जलन होती है। ये जितने भी विष बतलाए हैं वे सब समय पाकर प्राणी के प्राण लेनेवाले हैं। ऐसा जानना चाहिए ॥ ८-१२ ॥

विषलिप्त शस्त्रहत के लक्षण ।

सद्यः क्षतं पच्यते यस्य जन्तोः स्रवेद्रक्तं पच्यते चाप्यभीक्ष्णम् ।
कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थपूति क्षतान्मांसं शीर्यते चापि यस्य॥१३॥
तृष्णा मूर्च्छा ज्वरदाहौ च यस्य दिग्धाहतं तं पुरुषं व्यवस्येत् ।
लिङ्गान्येतान्येव कुर्यादमित्रैर्व्रणे विषं यस्य दत्तं प्रमादात् ॥१४॥
सपीतं गृहधूमाभं पुरीषं योऽतिसार्यते ।
फेनमुद्वमते चापि विषपीतं तमादिशेत् ॥ १५ ॥

यदि घाव लगते ही पक जाय, बराबर रक्त गिरता जाय, हमेशा पकता फूटता रहे, घाव बिल्कुल काला पड़ जाय, पचपचाता रहे, अत्यन्त दुर्गन्धि निकले, घाव में से कट कट कर मांस के टुकड़े निकलते जायँ, प्यास विशेष लगे, मूर्च्छा आजाय और ज्वर तथा दाह बनी रहे तो यह समझना चाहिए कि इस व्यक्ति के किसी विषलिप्त शस्त्र से घाव हुआ है। उसी तरह यदि कोई शत्रु किसी साधारण घाव में ज़हर की पट्टी आदि बँधवा देता तो भी ये ही लक्षण होते हैं। जिसके पीले धुएँ के वर्ण की पतली दस्त होती और बार बार फेन का वमन होता तो जानना चाहिए कि इस ने विषपान कर लिया है ॥ १३-१५ ॥

सर्पों के भेद ।

वातपित्तकफात्मानो भोगिमण्डलिराजिलाः ।
यथाक्रमं समाख्याता द्व्यन्तरा द्वन्द्वरूपिणः ॥१६॥

वात, पित्त तथा कफ इन तीनों दोषों के अनुसार भोगी, मण्डली तथा राजिल ये तीन प्रकार के सर्प होते हैं। इन में भोगी (काला सर्प) वातप्रकृति का, मण्डली (चितकबुला) पित्तप्रकृति का और मण्डली कफप्रकृति का होता है। इनके अतिरिक्त जितने सर्प होते वे सब द्वन्द्व-प्रकृति के होते हैं ॥ १६ ॥

सर्पादिकों के काटने पर वातादि के लक्षण।

दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकारकृत्।
पीतो मण्डलिजः शोथो मृदुः पित्तविकारवान्॥१७
राजिलोत्थो भवेद्दंशः स्थिरशोथश्च पिच्छिलः।
पाण्डुः स्निग्धोऽतिसान्द्रासृक् सर्वश्लेष्मविकारकृत्॥१

यदि भोगी यानी काला सर्प काटता तो उसके समस्त विकार व प्रकृतिके होते हैं और जिस जगह काटता है वह जगह काली पड़जाती है यदि मण्डली साँप काटता तो दंशकी जगह पीली पड़ जाती, मुलायम सूजन हो आती और पित्तप्रकृतिके समस्त विकार हुआ करते हैं। रा सर्पके काटने पर दंशकी जगह पर चिकना सा स्थिर शोथ होजाता, जगह पाण्डुवर्णकी होजाती, बहुत ही गाढ़ा रक्त बहता और समस्त वि कफप्रकृतिके होते हैं॥ १७॥ १८॥

विशिष्ट देशकाल में सर्पदष्ट के लक्षण।

अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसन्ध्यासु चतुष्पथेषु।
याम्ये च दष्टाः परिवर्जनीया ऋक्षे सिरामर्मसु ये च दष्टाः॥१

यदि पीपल वृक्ष, देवालय, श्मशान तथा विमौटेकी जगह पर, सन् समयमें, चौरास्ते पर, भरणी नक्षत्रमें, किसी नस पर या मर्मस्थान पर काट ले तो उसका परित्याग कर देना चाहिए क्योंकि यह असाध्यहै॥१

गरमी पाने से सर्पों का विष दूना होजाता है।

दर्वीकराणां विषमाशुघाति सर्वाणि चोष्णे द्विगुणीभवन्ति

काले साँपका विष तुरन्त प्राणीके प्राण ले लेता है और सब प्रक सर्पोंका विष गर्मी पाकर दूना होजाया करता है।

इन से सर्पका विष आशुघाती बनजाता है।

अजीर्णपित्तातपपीडितेषु बालेषु वृद्धेषु बुभुक्षितेषु॥ २०
क्षीणक्षते मेहिनि कुष्ठयुक्ते रूक्षेऽबले गर्भवतीषु चापि।

अजीर्णरोगग्रस्त, पित्तप्रकृतिवाले, आतपसे दुःखी, बालक,

क्षुधातुर, क्षीणकाय, जिसके घाव लग गया हो, प्रमेहरोगी, कुष्ठरोगग्रस्त, इनको तथा निर्बल स्त्रीको यदि साँप काटलेता तो अवश्यही मर जाया करते हैं ॥२०॥

असाध्य सर्पविष ।

शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमेति राज्यो लताभिश्च न संभवन्ति॥२१॥
शीताभिरद्भिश्च न रोमहर्षो विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् ।
जिह्मं मुखं यस्य च केशशातो नासावसादश्च सकण्ठभङ्गः ॥२२॥
कृष्णः सरक्तः श्वयथुश्च दंशे हन्वोः स्थिरत्वं च विवर्जनीयः ।
वर्तिर्घना यस्य निरेति वक्त्राद्रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य ॥२३॥
दंष्ट्रानिपाताश्चतुरश्च यस्य तं चापि वैद्यः परिवर्जयेच्च ।
उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं वाऽप्यथवा विवर्णम् ॥ २४ ॥
सारिष्टमत्यर्थमवेगिनं च ज्ञात्वा नरं कर्म न तत्र कुर्यात् ।

सर्प काटनेके पश्चात् छुरे आदिसे काट कर रुधिर निकालना चाहे किन्तु काटने पर न निकले, चाबुक मारने पर बर्ती न पड़े, ठंढे पानीसे नहलाने पर यदि रोंगटे न खड़े हों तो उस विषाभिभूत प्राणीका परित्याग कर देना चाहिए । जिस विषपीडित मनुष्यका मुँह टेढ़ा होजाय, केश गिर पड़ें, नाक टेढ़ी होजाय, आवाज भर्रा जाय, दंशस्थानपर लाल तथा काले रंग का शोथ हो आए और चौभड़ बैठजाय तो उस विषाभिभूत प्राणी का भी त्याग कर देना चाहिए । जिसके मुखसे गाढ़ा थूँक बत्तीके समान बन कर निकला करे, मुख तथा गुदा इन दोनों मार्गोंसे रुधिर बहता रहे और जिसके दंशस्थान पर चार दाँतों के घाव हों उस विषाभिभूत प्राणी की भी चिकित्सा न करनी चाहिए । जो प्राणी सर्पके विषसे उन्मत्त हो गया हो, ज्वर आदि अनेक उपद्रव खड़े होगए हों, आवाज बन्द होगयीहो, मुखकी आकृति बिगड़ गयी हो, कोई विशेष अरिष्ट दिखाई पड़ रहा हो, मलमूत्रका वेग रुक गया हो तो उसकी चिकित्सा न करके परित्याग कर देना चाहिए ॥ २१–२४ ॥

दूषीविषका निदान ।

जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा ॥२५॥

स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति ।

बहुत दिनों का पुराना, विषको नष्ट करनेवाली औषधियों से संधित, दावाग्नि, वात तथा आतपसे सुखाया हुआ, जिसका स्वभाव त गुण बदल गया हो ऐसे विषको लोग दूषीविष कहते हैं ॥ २५ ॥

दूषीविष के लक्षण ।

वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत् कफान्वितं वर्षगणानुबन्धि॥२

तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो वैगन्ध्यवैरस्ययुतः पिपासी ।

मूर्च्छां भ्रमं गद्गदवाग्वमिं च विचेष्टमानोऽरतिमाप्नुयाद्वा ॥ २७

कफसे मिलने पर दूषीविषका बल थोड़े होनेके कारण वह किसीके मारता नहीं एक वर्षमें केवल एक बार जोर करता है उस समय उ प्राणी की दस्त पतली होती, वर्ण बदलजाता, शरीर से एक विचित्र प्रक की गन्ध आने लगती, मुखका स्वाद विगड़ जाता, प्यास विशेष लगती मूर्च्छा आती, चक्कर आने लगता, वाणी गद्गद हो जाती, वमन होता औ इधर उधरके व्यर्थ कामों को करनेमें उसे बड़ा मजा आता है ॥२६॥२७॥

स्थानविशेष से दूषीविष के लक्षण ।

आमशयस्थे कफवातरोगी पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ।

भवेत् समुद्ध्वस्तशिरोरुहाङ्गो विलूनपक्षस्तु यथा विहङ्गः॥२८॥

जिस का विष आमाशय तक पहुँचजाता तो कफज तथा वातज रोगोंक उत्पत्ति होती, पक्वाशयमें विषके रहने पर वातज और पित्तज रोगों उत्पत्ति होती, ऐसी अवस्था में रोगीके सब बाल गिर जाते जिससे व पखना नोचे भए पक्षीके समान दीखने लगता है ॥ २८ ॥

रसादिधातुगत दूषीविषके लक्षण ।

स्थितं रसादिष्वथवा यथोक्तान् करोति धातुप्रभवान् विकारान् ।

कोपं च शीतानिलदुर्दिनेषु यात्याशु पूर्वं शृणु तस्य रूपम्॥२९॥

यदि रसादिक धातुओं तक विष पहुंच जाता तो धातुसे उत्पन्न हो ले अनेक रोग खड़े होजाया करते हैं जिस दिन अधिक ठंढक पड़ती

हवा जोरोंके साथ चलती या पानी बरसता तो वह उदरस्थ दूषीविष कुपित होजाता है ॥ २९ ॥

पूर्वरूप।

निद्रागुरुत्वं च विजृम्भणं च विश्लेषहर्षावथवाऽङ्गमर्दम्।

इसके कुपित होने पर नींद विशेष आती, शरीर भारी मालूम होता, जँभुआई विशेष आती अङ्ग टूटते और रोंगटे खड़े होजाते हैं।

दूषीविष के उपद्रव।

ततः करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मण्डलकोठजन्म॥ ३० ॥
मांसक्षयं पादकरप्रशोथं मूर्च्छां तथा छर्दिमथातिसारम्।
दूषीविषं श्वासतृषाज्वरांश्च कुर्यात् प्रवृद्धिं जठरस्य चापि ॥३१॥
उन्मादमन्यज्जनयेत्तथाऽन्यदानाहमन्यत्क्षपयेच्च शुक्रम्।
गाद्गद्यमन्यज्जनयेच्च कुष्ठं तांस्तान्विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥३२॥

भोजन का न पचना, अरुचि होना, अङ्गमें कुष्ठके चकत्ते पड़ना, मांस का क्षय होना, हाथ पैरका सूजना, मूर्च्छा वमन तथा अतीसारका होना और श्वास, प्यास, ज्वरकी अधिकता आदि उपद्रव इस दूषीविषसे उत्पन्न होते हैं। इनके सिवाय पेट भी फूल आया करता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥ वह दूषीविष कई प्रकारका होता उसमें कोई उन्माद करता, कोई पेटको तानता, कोई वीर्यको नष्ट करके प्राणी को नपुंसक बना देता, कोई वाणी गद्गद कर देता और कोई कुष्ठको उत्पन्न करता इस तरह नाना प्रकारके उपद्रव खड़े कर दिया करता है ॥ ३२ ॥

दूषीविषकी निरुक्ति।

दूषितं देशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः।
यस्मात् संदूषयेद्धातून् तस्माद्दूषीविषं स्मृतम् ॥३३॥
साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोत्थितम्।
दूषीविषमसाध्यं स्यात् क्षीणस्याहितसेविनः॥ ३४ ॥

देश, काल, अन्न, दिनमें शयन करने आदिके कारण दूषित (रुग्ण)

पुरुषके रसादि धातुओंको दूषित कर देता इसीसे इसका दूषीविष नाम पड़ा है ॥ ३३ ॥ यदि समझदार मनुष्य इस दूषीविषका तुरन्त कोई प्रतीकार करता तो यह साध्य होजाता, जब साल भरका पुराना होजाता तो याप्य होता और क्षीण पुरुष तथा अपथ्यकारी व्यक्तिके लिये तो यह हमेशा असाध्य हुआ करता है ॥ ३४ ॥

अन्य विष ।

सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदं रजो नानाङ्गजान् मलान् ।
शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान् प्रयच्छन्त्यन्नमिश्रितान् ॥ ३५ ॥
तैः स्यात् पाण्डुः कृशोऽल्पाग्निर्गरश्चास्योपजायते ।
मर्मप्रधमनाध्मानं हस्तयोः शोथलक्षणम् ॥ ३६ ॥
जठरं ग्रहणीदोषो यक्ष्मा गुल्मक्षयो ज्वरः ।
एवंविधस्य चान्यस्य व्याधेर्लिङ्गानि दर्शयेत् ॥ ३७ ॥

यदि कोई स्त्री अपने सौभाग्यके लिए अपना पसीना, ऋतुधर्मका रज, शत्रुका दिया गया विष अन्न आदिमें मिलाकर खिला देती तो पतिका शरीर पीला पड़ जाता, दुर्बल होजाता, अग्नि मन्द पड़ जाती, ज्वर आने लगता, मर्मस्थानों में पीड़ा होने लगती, पेट फूल आता, हाथोंमें सूजन आजाती, उदरसम्बन्धी अनेक उपद्रव खड़े होजाते, ग्रहणीरोग हो जाता, यक्ष्म, गुल्म, क्षय तथा ज्वर भी आने लगता है। इसी प्रकार और भी अनेक रोगोंके लक्षण दीखने लगते हैं ॥ ३५–३७ ॥

लूता की उत्पत्ति तथा संख्या ।

यस्माल्लूनं तृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदबिन्दवः ।
तस्माल्लूतास्तु भाष्यन्ते संख्यया ताश्च षोडश ॥३८॥

जब कि विश्वामित्र वशिष्ठसे कामधेनुको जबर्दस्ती छीननेके लिए उतारू हुए थे तो वशिष्ठ मारे क्रोधके तमतमा उठे और उनकी आँखोंसे आँ की बूँदें गिरने लगीं। वे बूँदें पास ही काट कर रक्खे हुए तृणके उपर पड़ीं जिस से वे तृण जहरीले होगए और उनका लूता नाम पड़ गया। वे लूताँ सोलह प्रकार की होती हैं ॥ ३८ ॥

सामान्य दंशलक्षण तथा आठप्रकार के दूषीविष ।

ताभिर्दष्टे दंशकोथः प्रवृत्तिः क्षतजस्य च ।
ज्वरो दाहोऽतिसारश्च गदाः स्युश्च त्रिदोषजाः ॥३९॥
पिडका विविधाकारा मण्डलानि महान्ति च ।
शोथा महा मृदवो रक्ताः श्यावाश्चलास्तथा ॥ ४० ॥
सामान्यं सर्वलूतानामेतद्दंशस्य लक्षणम् ।
दंशमध्ये तु यत् कृष्णं श्यावं वा जालकाचितम् ॥ ४१ ॥
ऊर्ध्वाकृति भृशं पाकं क्लेदशोथज्वरान्वितम् ।
दूषीविषाभिर्लूताभिस्तद्दष्टमिति निर्दिशेत् ॥ ४२ ॥

इन लूताओं के काटने पर यदि घाव हो तो सड़जाता, उसमें से रुधिर बहने लगता, ज्वर, दाह, अतिसार तथा त्रिदोषसे उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकार के रोग खड़े होजाते हैं । अनेक तरहकी फुंसियां निकल आतीं, बड़े २ चकत्ते पड़जाते, जोरों से कोमल २ सूजन हो आती, खून का रङ्ग काला होजाता और वे चकत्ते धीरे धीरे फैलते जाते हैं ये साधारणतया लूताओं के लक्षण बतलाएहैं । यदि दंशस्थानके बीचमें काला अथवा तामड़ेके रङ्गका चिह्न होजाय, उसके ऊपर जाल सा घिर जाय, ऊपर की तरफ उसका मुख हो, बहुत बुरी तरह पक गया हो इससे पचपचाता और पीब बहता रहे, उसमें शोथ बना रहे और ज्वर भी आजाया करे तो उसे दूषीविष नामक लूताओं का काटा हुआ समझना चाहिए॥३९-४२॥

प्राणनाशकलूता के लक्षण ।

"सर्पाणामेव विण्मूत्रशवकोथसमुद्भवाः ।
दूषीविषाः प्राणहरा इति संक्षेपतो मताः ॥"
शोथाः श्वेताः सिता रक्ताः पीता वा पिडका ज्वरः ।
प्राणान्तिकाश्च जायन्ते श्वासहिक्काशिरोग्रहाः ॥४३॥

सर्पोंके मल-मूत्र तथा मरे सर्पके शवसे उत्पन्न दूषीविष लूता प्राणियों
प्राण लेनेवाली होती है । यह साधारण नियम है । इसके होने पर शो
सफेद, काले, लाल, पीले रंग के होते और फुंसियोंके साथ साथ ज
आते लगता है । इनके अतिरिक्त प्राणान्त करानेवाली दाह, हिक्का अ
सिरकी पीडा आदि रोग उत्पन्न होजाया करते हैं ॥ ४३ ॥

आखुदूषीविषके लक्षण ।

आदंशाच्छोणितं पाण्डुमण्डलानि ज्वरोऽरुचिः ।
लोमहर्षश्च दाहश्चाप्याखुदूषीविषार्दिते ॥ ४४ ॥

यदि किसीको विषैला चूहा काटलेता तो पाण्डुरङ्ग का रुधिर बहत
शरीरमें जगह जगह चकत्ते पड़ जाते, ज्वर आने लगता, किसी वस
रुचि नहीं रहती, रोंगटे खड़े होजाते और शरीरमें दाह होती रहती है॥

असाध्य आखुविष ।

मूर्च्छाङ्गशोथवैवर्ण्यक्लेदशब्दाश्रुतिज्वराः ।
शिरोगुरुत्वं लालासृक्छर्दिश्चासाध्यमूषिकैः ॥ ४५

मूर्च्छा आना, अङ्गका शोथ आना, आकृति बिगड़ जाना, इमे
शरीरका भीगा रहना, कम सुनाई पड़ना, ज्वर आते रहना, सिर भा
रहना, लार तथा रुधिर से मिला हुआ वमन होना, ये लक्षण तब दी
हैं जब असाध्य मूषक विष शरीरमें व्याप्त होजाता है ॥ ४५ ॥

कृकलासदष्ट के लक्षण ।

कार्ष्ण्यं श्यावत्वमथवा नानावर्णत्वमेव वा ।
मोहोऽथ वर्चसो भेदो दष्टे स्यात् कृकलासकैः ॥ ४६

अङ्ग काला पड़ जाना, नीला एवं विविध प्रकार का वर्ण होजा
चक्कर आना तथा अतीसार का उत्पन्न होजाना ये उपद्रव तब होते हैं
कृकलास (गिरगिट) काटलेता है ॥ ४६ ॥

वृश्चिकविष के लक्षण ।

दहत्यग्निरिवादौ च भिनत्तीवोर्ध्वमाशु च ।
वृश्चिकस्य विषं याति दंशे पश्चात्तु तिष्ठति ॥ ४७ ॥

दष्टोऽसाध्यश्च हृद्घ्राणरसनोपहतो नरः ।
मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनार्तो जहात्यसून् ॥ ४८ ॥

बिच्छूके डंक मारते ही उस स्थान पर आगिसे जलनेके समान जलन मालूम होती इसके अनन्तर जान पड़ता है मानो अङ्गोंको फाड़ता हुआ विष ऊपर चढ़ा जा रहा है, किन्तु थोड़े ही समयके बाद वह उतर कर उसी स्थान पर आजाता है जहाँ कि बिच्छूने डंक मारा था । यदि हृदय, नासिका तथा जीभमें बिच्छू डंक मारता तो उस स्थानका मांस गल कर गिर पड़ता और वह प्राणी मारे वेदनाके मरजाता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

कणभदष्ट के लक्षण ।

विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरश्छर्दिरथापि वा ।
लक्षणं कणभैर्दष्टे दंशश्चैवावसीदति ॥ ४९ ॥

कणभ (एक प्रकारका कीड़ा) के काटने पर उसका विष फैलता, वह स्थान सूज आता, शूल उठने लगता, ज्वर और वमन होता एवं जिस जगह वह कीड़ा काटता है वह स्थान सड़ जाया करता है ॥ ४९ ॥

उच्चिटिंगदष्ट के लक्षण ।

हृष्टलोमोच्चिटिङ्गेन स्तब्धलिङ्गो भृशार्तिमान् ।
दष्टः शीतोदकेनेव सिक्तान्यङ्गानि मन्यते ॥ ५० ॥

यदि उच्चिटिंग नामक कीड़ा काट लेता तो रोंगटे खड़े होजाते, लिंगकी नसें ढीली पड़जातीं और अतिशय वेदना होती है । इसके काटने पर ऐसा मालूम होता है मानो किसीने ठंढे पानीसे नहला दिया है ॥ ५० ॥

मण्डूकदष्ट के लक्षण ।

एकदंष्ट्रार्दितः शूनः सरुजः पीतकः सतृट् ।
छर्दिर्निद्रा च सविषैर्मण्डूकैर्दष्टलक्षणम् ॥ ५१ ॥

एकदंष्ट्रा (मेढक) के काटनेसे उस स्थान पर पीड़ाके साथ सूजन हो आती, उसका रङ्ग पीला होता और उस प्राणीको प्यास विशेष लगती, वमन होता एवं नींद अधिक आती है ॥ ५१ ॥

सविषमत्स्यदंश के लक्षण ।

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युर्दाहं शोथं रुजं तथा ।
कण्डूं शोथं ज्वरं मूर्च्छां सविषास्तु जलौकसः ॥५२

यदि विषैली मछलियाँ काट लेतीं तो दाह, शोथ तथा पीड़ा होती है यदि विषैली जोंक काट लेती तो खुजली, शोष, ज्वर तथा मूर्च्छा आजा करती है ॥ ५२ ॥

गृहगोधिकादष्ट के लक्षण ।

विदाहं श्वयथुं तोदं स्वेदं च गृहगोधिका ।

विषैले गोहके काटने से अत्यन्त दाह, शोथ, कोंचनेके समान पी होती और पसीना आने लगता है ।

शतपदीदष्ट के लक्षण ।

दंशे स्वेदं रुजं दाहं कुर्याच्छतपदीविषम् ॥ ५३ ।

यदि शतपदी (खनखजूर) काट लेती तो पसीना आता; पीड़ा हो और दाह होने लगती है ॥ ५३ ॥

मशकदष्ट के लक्षण ।

कण्डूमान् मशकैरीषच्छोथः स्यान्मन्दवेदनः ।
असाध्यकीटसदृशमसाध्यं मशकक्षतम् ॥ ५४ ॥

मच्छड़ोंके काटनेसे थोड़ी सी सूजनके साथ साथ मन्द वेदना होती यदि जंगलों और पर्वतों पर रहनेवाले ज़हरीले मच्छड़ काटते तो पीछे असा कीड़ों के काटने के जो लक्षण कह आए हैं वे ही यहाँ भी सम- चाहिए ॥ ५४ ॥

मक्षिकादष्ट के लक्षण ।

सद्यः प्रस्राविणी श्यावा दाहमूर्च्छाज्वरान्विता ।
पिडका मक्षिकादंशे तासां तु स्थगिकाऽसुहृत् ॥ ५५

यदि विषैली मधुमक्खियाँ काटतीं तो तुरन्त उसमें से रुधिर ब लगता, दाह, मूर्च्छा एवं ज्वर के साथ साथ दंशस्थान पर नीले रंग

छोटी २ फुंसियाँ निकल आती हैं। उन मक्खियों के बीच में एक प्रकार स्थविका हो जाती जो प्राणी का प्राण हरनेवाली होती है ॥ ५५ ॥

चतुष्पादष्ट के लक्षण ।

चतुष्पद्भिर्द्विपद्भिश्च नखदन्तविषं च यत् ।
शूयते पच्यते वापि स्रवति ज्वरयत्यपि ॥ ५६ ॥

चार पैरवाले या दो पैरवाले जानवर यदि किसी को नख मार दें या दाँतों से काट खायँ तो वह स्थान सूज आता, पक जाता, फूट कर बहने लगता और ज्वर को उत्पन्न कर दिया करता है ॥ ५६ ॥

प्रशान्तदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकामं सममूत्रविट्कम् ।
प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥ ५७ ॥

इति श्रीमाधवकरविरचिते माधवनिदाने विषनिदानं समाप्तम् ॥ ६९ ॥

जब कि प्राणी के वातादि दोष शान्त होजायँ, रसादि धातु प्रकृतिस्थ होजायँ, अन्न खाने की इच्छा हो, मल-मूत्र अच्छी तरह से हो, उस प्राणी का वर्ण, इन्द्रियाँ, चित्त तथा चेष्टा प्रसन्न मालूम हों तो वैद्य को चाहिए कि उस प्राणी को विषविकार से विमुक्त समझे ॥ ५७ ॥

इति श्रीगोण्डामण्डलान्तर्गतशिसईग्रामवासिकाशीप्रवासि पं० रामदत्तसूनु-रामतेज पाण्डेयविरचितमञ्जुलाख्यभाषाटीकासहिते माधवनिदाने विषनिदानम् समाप्तम् ॥ ६९ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

अथ विषयानुक्रमणिका ।

उन्माद, अपस्मार, वातरोग, वात-रक्त, ऊरुस्तम्भ आमवात, शूल, पक्तिज-शूल, आनाह, उदावर्त, गुल्मरोग, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरी, प्रमेह, मधुमेह, पिडका, मेद, उदर, शोथ, वृद्धि, गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थि, अर्बुद, श्लीपद, विद्रधि, व्रणशोथ, भग्ननाडिका, भगन्दर, उपदंश, शूकदोष, त्वग्रोग, शीतपित्त, उदर्द, कोठ, अम्लपित्त, विसर्प, विस्फोट, रोमान्त्य, मसूरिका, क्षुद्ररोग, मुखरोग, कर्णरोग, नासारोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, स्त्रीरोग, बालरोग, और विषरोग इस ग्रंथ में श्रीमाधवकरने इतने रोगों का संग्रह किया है ॥ १–६ ॥

परिशिष्टांशः ।

अलर्कविषनिदानम् ।

बावले कुत्ते के लक्षण ।

शुनः श्लेष्मोल्वणा दोषाः संज्ञां संज्ञावहाश्रिताः ।
मुष्णन्तः कुर्वते क्षोभं धातूनामतिदारुणम् ॥ १ ॥
लालावानन्धबधिरः सर्वतः सोऽभिधावति ।
स्रस्तपुच्छहनुस्कन्धः शिरोदुःखी नताननः ॥ २ ॥

कफादि दोष संज्ञाको वहन करनेवाले स्रोतों में प्रविष्ट होकर उसकी सुधि बुधि नष्ट कर देते और उसके रसादि धातुओं को दूषित कर दिया करते हैं। ऐसी अवस्था में वह लार टपकाता हुआ अंधा और बहिरा होकर इधर उधर दौड़ता रहता है। उसकी पूँछ सीधी होजाती, कंधा ढीला हो जाता एवं शिर के दुःख से वह हमेशा माथा झुकाए रहता है ॥ १ ॥ २ ॥

बावला कुत्ता काटने के लक्षण ।

दंशस्तेन विदष्टस्य सुप्तः कृष्णं क्षरत्यसृक् ।
हृच्छिरोरुग्ज्वरः स्तम्भस्तृष्णा मूर्च्छोद्भवेन च ॥ ३ ॥

बावले कुत्ते के काटने से दंशस्थान की जगह शून्य होजाती, उस से काले रंग का रुधिर बहने लगता, हृदय और सिर में वेदना हे लगती, ज्वर आजाता, अंग जकड़ जाते, मूर्च्छा आती एवं प्यास जो से लगती है ॥ ३ ॥

अनेनाऽन्येऽपि बोद्धव्या व्यालदंष्ट्राप्रहारिणः ।
शृगालाश्वतराश्वर्क्षद्वीपव्याघ्रवृकादयः ॥ ४ ॥

इसी प्रकार और भी दाँत से प्रहार करनेवाले व्याल, सियार, खच्चर घोड़ा, भालू, चीता, व्याघ्र तथा भेड़िया आदि के काटने पर भी ये ही लक्षण हुआ करते हैं ॥ ४ ॥

सविष और निर्विष दंश के लक्षण ।

कण्डूनिस्तोदवैवर्ण्यसुप्तिक्लेदभ्रमज्वराः ।
विदाहरागरुक्पाकशोफग्रंथिविकुंचनम् ॥ ५ ॥
दंशावदरणं स्फोटाः कर्णिकामण्डलानि च ।
सर्वत्र सविषे लिंगं विपरीतं तु निर्विषे ॥ ६ ॥

जितने भी विषमय दंश होते हैं उन में खुजली उठती, कोंचने की सी पीड़ा होती, दंशस्थान का रंग बदल जाता, वह स्थान सुन्न होजाता, पसीना आता, ज्वर, भ्रम, दाह, रक्तिमा, दर्द, पाक, शोथ और ग्रंथि पड़ जाना, काटने की जगह पर लगे दाँत का उभड़ आना, फुंसियाँ निकल आना कर्णिका का मण्डल बन जाना आदि उपद्रव होते हैं । इनके विपरीत लक्षण जिस में दीखें उन्हें निर्विष दंश के लक्षण समझना चाहिए ॥ ५॥६ ॥

असाध्य लक्षण ।

दष्टो येन तु तच्चेष्टां कुरुते कुर्वन् विनश्यति ।
पश्यंस्तमेव चाकस्मादादर्शसलिलादिषु ॥ ७ ॥

जिस प्राणी को जो जानवर काटे वह यदि उसी जानवर के समान भूँकने, चिल्लाने या उछलने—कूदने लगे और शीशा तथा जल आदि में भी उसी का प्रतिबिंब दिखाई दे तो वह प्राणी मरजाता है ॥ ७ ॥

जलसंत्रास के लक्षण ।

योऽद्भ्यस्त्रस्येद्दष्टोऽपि शूकसंस्पर्शदर्शनैः ।
जलसंत्रासनामानं दष्टं तमपि वर्जयेत् ॥ ८ ॥

जो प्राणी जल के शूक, स्पर्श तथा दर्शन से डरे उसे जलसंत्रास दष्टरोगी कहते हैं ऐसे रोगी का भी परित्याग कर देना चाहिए ॥ ८ ॥

पिपीलिकादंश के लक्षण ।

पिपीलिका स्थूलशीर्षा संवाहिका ब्राह्मणिकां-
गुलिका कापिलिका चित्रवर्णेति षट् ।
ताभिर्दष्टे दंशे श्वयथुरग्निस्पर्शवद्दाहशोफौ भवतः ॥ ९ ॥

पिपीलिका (चींटियाँ), छ प्रकार की होती हैं:—स्थूलशीर्षा, संवाहिका, ब्राह्मणिका, अंगुलिका, कापिलिका और चित्रवर्णा । यदि ये काटतीं तो उस जगह सूजन होती, अग्नि से जल जाने के समान दाह होती और शोथ हो आता है ॥ ९ ॥ (वाग्भट्ट से संकलित)

इति अलर्कादिविषनिदानम् ।

अथ क्लैब्यरोगनिदानम् ।

क्लैब्य के सामान्य लक्षण ।

संकल्पप्रवणो नित्यं प्रियां वश्यामथापि वा ।
न याति लिंगशैथिल्यात्कदाचिद्याति वा पुमान् ॥ १ ॥
श्वासार्तः स्विन्नगात्रांसो मोघसंकल्पचेष्टितः ।
म्लानशिश्नश्च निर्बीजः स्यादेतत्क्लैब्यलक्षणम् ॥ २ ॥

जिस किसी नारी पर आसक्त होकर रात दिन उसीको सोचा करे वह अथवा अपनी स्त्री अपने पास आए किन्तु लिंग की शिथिलता के कारण हमेशा भोग न कर सके और यदि कभी करे भी तो ज़ोरों से श्वास चलने लगे, पसीने से सारा शरीर भीग जाय, सोचे बहुत लेकिन कर कुछ भी

न पाए, लिंग शिथिल होजाय ये सब साधारणतया नपुंसकत्व लक्षण हैं ॥ १ ॥ २ ॥

आसेक्य नपुंसक के लक्षण ।

पित्रोरत्यल्पवीर्यत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत् ।
स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥ ३ ॥

माता के अल्पवीर्य से जिस पुत्र की उत्पत्ति होती वह आसेक नामक नपुसंक कहलाता है। यदि वह दूसरे पुरुष के वीर्य का प्राशन कर तब उस की इन्द्रिय में शक्ति आती है । इसी को कुछ लोग मुखयोनि कहते हैं ॥ ३ ॥

सौगन्धिक नपुंसक के लक्षण ।

यः पूतियोनौ जायेत स सौगन्धिकसंज्ञितः ।
स योनिशेफसोर्गंधमाघ्राय लभते बलम् ॥ ४ ॥

जो पुत्र दुष्टयोनि से उत्पन्न होता उसे सौगान्धिक नपुंसक कहते वह किसी स्त्री की योनि तथा किसी पुरुष के लिङ्ग को सूँघने से पुं को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

महाषण्ढ के लक्षण ।

यो भार्यायामृतौ मोहादंगनेव प्रवर्तते ।
ततः स्त्रीचेष्टिताकारो जायते षण्ढसंज्ञितः ॥ ५ ॥

जो पुरुष मोहवश रजस्वला स्त्री के साथ स्त्रीवत् यानी स्वयं स्त्री तरह नीचे लेट कर ऊपर स्त्री को लेटाकर विपरीत मैथुन करता तो उ जो पुत्र होता वह स्त्री के समान चेष्टावाला नपुंसक महाषण्ढ कहला है ॥ ५ ॥

नारीषण्ढ के लक्षण ।

ऋतौ पुरुषवद्वापि प्रवर्तेतांगना यदि ।
तत्र कन्या भवेद्यातु सा भवेन्नरचेष्टिता ॥ ६ ॥

ऋतुधर्म के समय स्त्री पुरुषकी तरह ऊपर लेट कर मैथुन करा

बल से कन्या की उत्पत्ति होती तो वह पुरुष के समान आचरणवाली होती है । मतलब यह कि उसके सन्तान उत्पन्न करनेवाली शक्ति नहीं रहती, वह जन्मभर बाँझ रह कर जीवन बिताती है ॥ ६ ॥

उक्त कथन का सारांश ।

आसेक्यश्च सुगंधी च कुंभिकश्चेर्ष्यकस्तथा ।
सरेतसस्त्वमी ज्ञेया अशुक्रः षण्ढसंज्ञितः ॥ ७ ॥

ऊपर कहे हुए आसेक्य, सुगन्धी, कुम्भिक तथा ईर्ष्यक ये चार प्रकार के नपुंसक सरेतस होते हैं यानी इनके वीर्य होता है । लेकिन षण्ढ नामक नपुंसक वीर्यविहीन होता है ॥ ७ ॥

इति क्लैब्यनिदानम् ।

अथ स्नायुकरोगनिदानम् ।

शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत् ।
भिनत्ति तं क्षते तत्र सोष्मस्नायुं विशोष्य च ॥ १ ॥
कुर्यात्तन्तुनिभं जीवं वृत्तं श्वेतद्युतिं बहिः ।
शनैः शनैः क्षताद्यातिच्छेदात् कोपमुपैति च ॥ २ ॥
तत्पाताच्छोफशान्तिः स्यात् पुनः स्थानान्तरे भवेत् ।
स स्नायुकेति विख्यातः क्रियोक्ता तु विसर्पवत् ॥ ३ ॥

शरीर की शाखाओं अर्थात् हाथ पैर आदि में वातपित्तादि दोष कुपित होकर विसर्प के समान छोटी छोटी फुंसियाँ उत्पन्न कर देते हैं, जब वे फूट जातीं तो उस स्थान की गरम नस को सुखाकर सफेद २ सूत के समान गोलाकार जीवों को उत्पन्न करते हैं । वे कीड़े धीरे धीरे घाव के बाहर निकलने लगते और यदि किसी प्रकार फोड़ दिए जाते तो इस रोग की मात्रा और भी बढ़ जाती है । यदि आप से आप शनैः शनैः उसमें से सब जीव निकल जाते तो वे फुंसियाँ स्वयं शान्त होजाती हैं। इसी